श्रीयोगवाशिष्ठ

निर्वाण प्रकरण

(२००-२८९)

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

निर्वाण प्रकरण (२००- २८९)........1

अनुक्रम........1

जलरूपवर्णन........6

चिद्रूप वर्णन........8

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादन 10
आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णन 12
अन्तरोपाख्यानवर्णन 16
अन्तरोपा० वर्णन 19
मुक्तसंज्ञा वर्णन 21
जीवन्मुक्तव्यवहार 24
परमार्थरूप वर्णन 26
नास्तिकवादी निराकरण 28
परमउपदेश वर्णन 31
निर्वाण प्रकरण 33
सर्वपदार्थभाव वर्णन 37
जाग्रत््स्वप्नैकताप्रतिपादन 42
जगन्निर्वाण वर्णन 45
कारणकार्याभाव वर्णन 47
भावप्रतिपादन 48
विपश्चित््समुद्रप्राप्तिर्नाम 49
जीवन्मुक्तलक्षण वर्णन 52
विपश्चिदुपाख्यान वर्णन 59
विपश्चिच्छरीरप्राप्तिर्नाम 62
बटधानोपाख्यान वर्णन 65
विपश्चितत््कथा वर्णन 67

www.tantrik-astrologer.in

महाशववृत्तान्त वर्णन 69
स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णन 70
मच्छरव्याध वर्णन 72
हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलय वर्णन 74
हृदयान्तरप्रलयाग्निकदाह वर्णन 79
कर्मनिर्णय 81
महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेश 84
कार्यकारणाकारणनिर्णय 88
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति विचार 90
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति वर्णन 91
सुषुप्ति वर्णन 93
सुषुप्तिवर्णन 95
स्वप्ननिर्णय 96
स्वप्न विचार 99
रात्रिसंवाद 101
निर्वाण प्रकरण 104
यथार्थोपदेश 105
भविष्यत्कथा वर्णन 106
सिद्धनिर्वाण वर्णन 109
निर्वाण प्रकरण 112
स्वर्गनरकप्रारब्ध वर्णन 115
www.tantrik-astrologer.in

निर्वाणोपदेश 118

निर्वाण प्रकरण 121

इन्द्रिययज्ञवर्णन..123

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादन 126

जाग्रत्‌स्वप्नप्रतिपादन 127

निर्वाण प्रकरण 128

निर्वाण प्रकरण 131

शालभजनकोपदेश..133

जीवन्मुक्त लक्षणवर्णन..136

जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णन 138

द्वैतैकता�ाभाववर्णन 140

स्मृत्यभावजगत्‌परमाकाश वर्णन 142

ब्रह्मजगदेकताप्रति0 नाम 144

ब्रह्मगीतापरमनिर्वाण वर्णन..146

परमार्थगीता वर्णन..148

ब्रह्माण्डोपाख्यान..150

ब्रह्मगीता वर्णन 152

इन्द्राख्यानवर्णन 154

सर्वब्रह्म प्रतिपादन..157

ब्रह्मगीतागौर्युद्यान वर्णन 158

ब्राह्मणकथा वर्णन..161

www.tantrik-astrologer.in

ब्राह्मणभविष्यत् वर्णन 163

निर्वाण प्रकरण 166

कुन्ददन्तविश्रामप्राप्ति 169

ब्रह्मप्रतिपादन 170

जीवसंसार वर्णन 175

सर्वब्रह्मरूप प्रतिपादन 178

विद्यावादबोधोपदेश 179

रामविश्रान्ति वर्णन 185

रामविश्रांतिवर्णन 186

रामविश्रान्तिवर्णन 187

रामविश्रान्तिवर्णन 189

चिन्तामणिप्राप्ति 191

गुरुशास्त्रोंपमा वर्णनं 192

विश्रामप्रकटीकरण 194

निर्वाणवर्णन 199

चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादन 201

जगद्भाववर्णन 203

प्रश्नवर्णन 205

प्रश्नोत्तरवर्णन 207

निर्वाण प्रकरण 209

राजप्रश्नो▯वर्णन 211

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण 214

मोक्षोपायवर्णन..218

जलरूपवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमको जो धारणा से पृथ्वी का अनुभव हुआ और उसमें जगत् हुआ वह संकल्परूप था व मन से उपजा था अथवा आधिभौतिक था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी सब जगत् संकल्परूप है और आधिभौतिक की नाईं भासता है परन्तु केवल चिदाकाश अपने आपमें स्थित है । वह चिदाकाश मैं हूँ, न कदाचित् उपजा हूँ और न नाश होऊँगा, सर्वदा अद्वैत अचैत्य, चिन्मात्ररूप हूँ । उसके संकल्प का नाम मन है, आभास का नाम संकल्प है और उसी का नाम ब्रह्मा और इच्छा है, उसी में जगत् स्थित है सो आकाशरूप है–कुछ बना नहीं हे रामजी! जिसको सत्य और असत्य कहते हो वह शुभ–अशुभरूप जगत् मन में स्थित है और सर्वआकार निराकाररूप हैं, भ्रान्ति से पिण्डाकार भासते हैं । जैसे स्वप्न में शुभ- अशुभ पदार्थ भासते हैं सो निराकार हैं पर भ्रान्ति से पिण्डाकार भासते हैं तैसे ही वे जगत् भी निराकार हैं पर भ्रम से पिण्डाकार भासते हैं और विचार किये से शून्य हो जाते हैं । जैसे मनोराज से आकार रचित है, तैसे ही हमारे आकार आत्मा–स्वरूप से कुछ उपजे नहीं । जैसे मृत्तिका में बालक नानाप्रकार की सेना रचते हैं और उस मृत्तिका का उनको भिन्न–भिन्न भाव निश्चय होता है, तैसे ही अद्वैत आत्मा में मनरूपी बालक ने जगत् कल्पा है वास्तव में कुछ नहीं–आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है । जैसे मृगतृष्णा का जल ही नहीं तो उसमें डूबा किसे कहिये, तैसे ही मन आप आभासरूप है तो उसका रचा जगत् कैसे सत् हो? हे रामजी! सब चिदाकाशरूप है–दूसरा कुछ बना नहीं । आत्मरूप आकाश में मनरूपी नीलता है सो अविचार सिद्ध है और विचार किये से नीलता कुछ वस्तु नहीं । जैसे दीपक के विद्यमान होने से अन्धकार नहीं रहता, तैसे ही विचार किये से मन और मन की रचना जगत् नहीं रहता । मन का निर्वाण करना ही परमशान्ति है और कोई उपाय नहीं । हे रामजी! जितने क्षोभ हैं, उनका कर्त्ता मन है और सम्पूर्ण शब्द अर्थ कल्पना मन से उठती है–मन के निर्वाण हुए कोई नहीं रहती । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आप अनन्त ब्रह्माण्ड की ���ृथ्वी होकर स्थित हुए सो कुछ और रूप भी हुए अथवा न हुए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मरूपी जो जाग्रत् है उसमें मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ । मैं चैतन्य था और जड़ की नाईं स्थित हुआ–वास्तव में मैं जगत् न था केवल चिदाकाश था जिसमें न कुछ नाना है, न अनाना है; न अस्ति है, न नास्ति है, और जिसमें अहं–त्वं–इदं का अभाव है । वह केवल परम चिदाकाश है जो आकाश से भी निर्मल चिदाकाश है और जो है सो सर्व शब्द ब्रह्म है । जगत् के होते भी वह अरूप है, क्योंकि कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना–केवल आत्मा का चमत्कार है । हे रामजी! जहाँ जहाँ पदार्थ सत्ता है वहाँ वहाँ जगत् वस्तु है । सर्वदा काल, सर्वकार, सब पदार्थों का स्पन्द ब्रह्म है, जहाँ ब्रह्मसत्ता है वहाँ जगत् है । इस प्रकार मैंने अनन्त ब्रह्माण्ड को देखा । जब मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ तो जब जल की धारणा की तब जलरूप होकर फैला और वृक���ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, डाल तमाल और पत्रों

www.tantrik-astrologer.in

में रस होकर स्थित हुआ, थम्भे में मैं ही बल हुआ और समुद्र हुआ; नदियों के प्रवाह होकर मैं ही बहने लगा और उसमें गड़ गड़ करने लगा और तरंग बुद्बुदे फेन को फैलाकर विलास किया, ओस के कणके होकर मैं ही स्थित हुआ, आकाश में मेघ होकर बरसता और प्राणियों को तृप्त करने लगा । उनमें रुधिर आदि रस होकर मैं ही स्थित हुआ और उनकी नाड़ियों में मथन करके आप ही प्रवेश किया । जैसी नाड़ी होती है तैसा तैसा रस होकर मैं स्थित हुआ । रस, बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब नाड़ियों में मैं ही स्थित हुआ । सर्व प्राणियों की जिह्वा के अग्रभाग में रस होकर मैं स्थित हुआ और अपने आपका आपसे स्वादु को ग्रहण करने लगा- 576 और हिमालय में बरफ होकर स्थित हुआ । हे रामजी! मैं चैतन्य होके जड़ की नाईं स्थित् हुआ, बीज होकर मैंने ही उत्पन्न किया और प्रलय के मेघ होकर मैंने ही नाश किया । इस प्रकार जल होकर स्थावर, जंगम सर्वजगत् में स्थित हुआ और सदा अपने आपमें स्थित होकर अपने स्वरूप को न त्यागा । जैसे स्वप्न में जगत् अनुभवरूप है और अनहोता भासता है, तैसे ही मैं जलरूप होकर जगत् को धारता भया । हे रामजी! नाना प्रकार के स्थानों में मैं स्थित हुआ, फूलों की शय्या पर चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता रहा, गन्ध होकर फूलों में स्थित हुआ और मेघ होकर आकाश में बिचरा और ऐसी वर्षा की कि पर्वतों पर वेग से प्रवाह चलने लगा और मैं कणके कणके होके समुद्र और नदी में बिचरा । यह प्रतिभा चिद्अणु में मुझको हुई ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे�ान्तरोपाख्याने जलरूपवर्णनंनाम द्विशताधिकप्रथमस्सर्गः ||201||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चिद्रूप वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जल के अनन्तर मैंने तेज की भावना की अर्थात् तेज धारा, तब मुझमें इतने अंग उदय हुए-चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि-और इनसे जगत् की क्रिया सिद्ध होने लगी । जैसे राजा के अंग अनुचर और हरकारे होते हैं तैसे ही तमरूपी चोर को दीपक रूपी हरकारे मारने लगे आकाशरूपी जो मैं था इसमें मेरे कण्ठ में तारावलीरूपी माला पड़ी थी । सूर्य होकर मैं जल को सोखता और दशों दिशाओं को प्रकाशता रहा । आकाश जो ऊर्ध्वता से श्याम भासता है वह मेरे निकट प्रकाशमान होता था, सब जगत् में मैं ही फूल रहा था और जहाँ मैं रहूँ तहाँ से तम का अभाव हो जावे । चन्द्रमा और सूर्यरूपी डब्बा है जिससे दिन, रात और काल, वर्षरूपी अनेक रत्न सर्वदा निकलते रहते हैं । राजसी, सात्विकी और तामसी क्रियारूपी कमलिनी का मैं सूर्य हुआ और सर्वदेवताओं और पितरों को तृप्त करता रहा । यज्ञ की अग्नि और रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाश पदार्थ हैं उसमें प्रकाश मैं ही हुआ । प्राणों के भीतर मैं स्थित हुआ और प्राण अपान के क्षोभ से अन्न को पचाने लगा । जैसे आत्मा के प्रकाश से रूप, अवलोक और मनस्कार प्रकाशते हैं,तैसे ही सब पदार्थ मेरे प्रकाश से प्रकाशित होने लगे, क्योंकि मैं तेजरूप था-मानो चैतन्यसत्ता का दूसरा भाई हूँ । जैसे सर्वपदार्थ आत्मा से सिद्ध होते हैं, तैसे ही मुझसे सिद्ध होने लगे । हे रामजी! राजों में तेज और सिद्धों में वीर्य में ही था, बलरूप होकर जगत् को मैं ही पुष्ट करता था, बड़वाग्नि दाहकशक्ति होकर जगत् को मैं ही नष्ट करता था और तेजवानों में तेज, बलवानों में बल मैं ही था । तले भी मैं था, मध्य भी मैं ही था और चन्द्रमा सूर्य से रहित जो स्थान हैं उनमें भी मैं ही था । अग्निरूपी दीपक और चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रों से मध्यमण्डल में स्पष्ट मैं देखता था । हे रामजी! इस प्रकार तेजरूप होकर भीतर बाहर जंगम पदार्थों में स्थित हुआ पर जब बोधदृष्टि से देखूँ तब सर्व आत्मा ही का भान हो और जब अन्त वाहक दृष्टि से आपको विराट्रूप जानूँ कि सर्वजगत् में मैं ही फैल रहा हूँ ।और सर्व पदार्थ मेरे ही अंग हैं । निदान तेजवानों में तेज और क्रोधवानों में क्रोध यतियों में यती और अजीत मैं हुआ और सर्व और मेरी ही जय है, क्योंकि जय उसकी होती है जिसमें बल और तेज होता है- सो बल मैं हूँ और तेज भी मैं हूँ इससे मेरी जय है । हे रामजी! सुवर्ण और रत्नमणि में जो प्रकाश और रूप है सो मैं हुआ । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! इस प्रकार जो आप जगत् की क्रिया अनुभव करने लगे कि जलरूप होकर अग्नि को बुझाना और अग्नि होकर जल को जलाना इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर इष्ट अनिष्ट से होती रहीं उनको तुमने सुख दुःख से अनुभव किया व न किया सो मेरे बोध के निमित्त कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे चैतन्य पुरुष स्वप्ने में पर्वत वृक्ष, देह इन्द्रियों और नाना प्रकार के जड़पदार्थ देखते हैं जो वास्तव में उनमें नहीं हैं, केवल अनुभवरूप हैं परन्तु निद्रादोष से वे उन्हें द्वैत की नाईं जानते हैं और उनका राग-द्वेष अपने में मानते हैं, यथार्थ में द्रष्टा ही दृश्यरूप होकर स्थित होता है परन्तु निद्रादोष से नहीं जान सकता और जब जागता है तब स्वप्न की सब सृष्टि को अपना आपही जानता है, तैसे ही यह जगत् अपने स्वरूप में नहीं, जब बोध स्वरूप में जागोगे तब पदार्थ भावना जाती रहेगी और सब जगत् बोध स्वरूप भासेगा । हे रामजी! जिस पुरुष को देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित अखण्ड सत्ता उदय हुई है उसको ज्ञानी कहते हैं । जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करता है तब जगत् आत्मस्वरूप ही भासता है । जिस पुरुष को स्वप्न की सृष्टि में पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं और उसको पत्थर, जल और अग्नि में प्रवेश करने से भी खेद नहीं होता । हे रामजी! मैं जो

www.tantrik-astrologer.in

आकाश में उड़ता फिरा और आकाश को भी लाँघकर ब्रह्माण्ड के खप्पर पर फिरा हूँ सो अन्तवाहक शरीर से ही फिरा हूँ । जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्त होता है उसको कोई आवरण नहीं रोक सकता क्योंकि सब उसके सब उसके अंग होते हैं । मुझको शुद्ध आत्मा में स्वप्ना हुआ था पर पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ इससे सब जगत् मुझको अपना स्वरूप ही भासता रहा और अपने संकल्प से कल्पे हुए अपने ही अंग भासते थे । जैसे कोई मनोराज से अग्नि का समुद्र रचे और उसमें स्नान करे तो वह भी होता है, क्योंकि उसको खेद नहीं होता सब अपने संकल्प में ही उसको भासते हैं । अन्तवाहक शरीर से विराट सबको अपना आप देखता है तैसे ही सब जगत् मुझको अपना आप भासता था तो खेद कैसे हो? जैसे स्वप्न में पर्वत, नदियाँ और अग्नि देखता है सो वही रूप है और आप भी एक आकार धारण करके बन जाता है और पूर्व का स्वरूप उसकी परिच्छिन्नता से भूल जाता है और रागद्वेष से जलता है । मैंने तत्त्वरूप बन के आपको जड़ रूप देखा और चैतन्यरूप भी देखा इस प्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न हुआ तब मैं विराट्‌्रूप सबको अपना अंग ही देखता रहा इससे मुझे खेद कैसे होता? खेद तब होता है जब अपना स्वरूप भूलता है और परिच्छिन्न सा बन जाता है, पर मैं तो बोधवान् रहा कि मैंने स्पन्द से सब रूप धारे हैं । हे राम जी! जिसको यह निश्चय है उसको दुःख कहाँ? सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं सो मैंने अपने में ऐसे देखे जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब भासता है । जिसको यह दृष्टि हो उसको दुःख कहाँ है? हे रामजी! जिसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त होती है वह पाताल और आकाश में जाने को समर्थ होता है और जहाँ प्रवेश किया चाहें वहाँ जा सकता है, क्योंकि सृष्टि संकल्पमात्र है । हे रामजी! और कुछ बनी नहीं आत्मा का किञ्चन ही सृष्टिरूप होकर भासता है । हे रामजी! यह सृष्टि सब ब्रह्मस्वरूप है । हमको तो सदा ऐसे ही भासती है । जब तुम जागोगे तब तुमको भी ऐसे ही भासेगी । तुम भी अब जागे हो । उस प्रकार मैं अग्नि होकर स्थित हुआ कि जिसकी शिखा से कालख निकलती थी । प्रकाश में ही हुआ और अपने चिद्स्वरूप अनुभव में मुझको जगत् भासे उसमें मैं स्थित हुआ । अन्धकार और उलूकादि भी मेरे प्रकाश से प्रकाशते हैं और भावरूप पदार्थ भी मैं अपने में जानता भया, क्योंकि भाव रूप पदार्थ तब भासते हैं जब उनका रूप होता है, सो रूपवान् पदार्थ मैं ही था इस कारण सब मेरे ही में सिद्ध होते थे । इस प्रकार मुझको यह प्रतिभा हुई ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे�न्तरोपाख्यानचिद्रूप वर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वितीयस्सर्गः ।।202।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने पवन की धारणा का अभ्यास किया तब पवनरूप होकर विचरने लगा और कमल के फूलों और वृक्षों को हिलाने लगा । तारों और नक्षत्रों का आधारभूत हुआ वे मेरे आदार पर फिरने लगे । चन्द्रमा और सूर्य के चलानेवाला भी मैं ही हुआ और समुद्र और नदियों के प्रवाह मेरी ही शक्ति से चलते रहे मन का बड़ा वेग भी मैं ही हुआ और प्राणियों में मेरा निवास हुआ म��ं ही प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान पञ्चरूप होकर स्थित हुआ और सब नाड़ियों में मेरा निवास हुआ । सब नाड़ियों को रस अपना-अपना भाग मैं ही पहुँचाता रहा और हलना, चलना, बोलना, लेना, देना सब मुझही से सिद्ध होता था निदान सर्वपदार्थों में स्पर्शशक्ति मैं ही हुआ और सर्वशब्द मेरे ही से सिद्ध होते थे । क्रियारूपी बुन्द का मेघ हुआ, आकाशरूपी गृह में मेरा निवास था और दशों दिशा सब मेरे में ही फुरी थीं । देवताओं को गन्ध से मैं ही सुख देता था और दीपक को मैं ही प्रज्वलित करता था । पक्षियों में मेरा सदा निवास था । जैसे अग्नि में उष्णता रहती है तैसे ही सबके सुखाने और हरियावल करनेवाला मैं ही हूँ । हे रामजी! इस प्रकार मैं पवन होकर स्थित हुआ इसलिये रूप, अवलोक और मन स्कार सर्व पदार्थ मैं ही हुआ और चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु ,रुद्र, वरुण, कुबेर और यम आदिक जगत् होकर मैं ही स्थित हुआ । पञ्चभूतों के भीतर और बाहर भी मैं था, प्राण-अपान के क्षोभ से दुःख होता है सो मैं ही साकार निराकाररूप हूँ और रक्त पीत श्यामरंग पदार्थ सब मैं ही हूँ । पञ्चभूत जो चिदअणु फुरे हैं सो उसी का रूप हैं जैसे स्वप्न की सृष्टि सब अपना ही रूप होती है-इतर कुछ नहीं होती । हाड़, माँस, पृथ्वी होकर भूतों में स्थित हुआ और वायुरूप प्राण, अग्नि रूप समिधा और आकाशरूप अवकाश भया हूँ । इस प्रकार मैं सर्व में स्थित भया । मैं भी चैतन्यरूप था और वे तत्त्व भी चैतन्यवपु थे । जैसे स्वप्न में जगत् आकाशरूप हैं । हे रामजी! सर्वकाल, सर्वकार सर्व का सर्वात्मा स्थित है दूसरा कुछ नहीं! आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित हैं इससे भिन्न जानना भ्रान्तिमात्र है । यह दृष्टि ज्ञानवान् की है पर जो असम्यक्दर्शी है उनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं । इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण जगत् अपने में ही देखा । हे रामजी! मैं ब्रह्मरूप था इससे उसमें जगत् होते दृष्टि आये और जो मैं ब्रह्म से इतर होता तो एकतृण भी न उत्पन्न होता । मैं जो ब्रह्म रूप था इससे सृष्टि उत्पन्न होती है । हे रामजी! जब मैंने बोधदृष्टि से देखा तब आत्मा से भिन्न कुछ न दीखा और जब अन्तवाहक दृष्टि से देखा तब स्पन्द के कारण अणु अणु में सृष्टि भासी! जैसे जहाँ चन्दन का अणु होता है वहाँ सुगन्ध भी होती है, तैसे ही जहाँ जहाँ तत्त्व के अणु हैं वहाँ वहाँ सृष्टि भी है । हे रामजी! एक अणु में अनन्त सृष्टि मुझको भासी । जैसे एक पुरुष शयन करता है और उसको स्वप्नमें सृष्टि भासती है और फिर स्वप्न से स्वप्नान्तर की सृष्टि देखता है तो एक ही जीव में बहुत भासते हैं, तैसे ही एक अणु से अनेक सृष्टि होती हैं । हे रामजी! जो सृष्टि है तो आभास रूप है और आभास अधिष्ठान के आश्रय होता है । सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है जो देश और काल के परिच्छेद से रहित अखण्ड अद्वैत सत्ता है । इसी से कहा है कि अणु-अणु में सृष्टि है, क्योंकि कोई अणु भिन्न नहीं, ब्रह्मसता ही है, सर्वब्रह्म है तो सृष्टि भी ब्रह्मरूप है-इससे सब ब्रह्म ही जानो । ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । जैसे वायु और स्पन्द में भेद नहीं, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकतृतीयस्सर्गः ।।203।।

www.tantrik-astrologer.in

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब मेरे में सृष्टि फुरी तब मैं उनके भ्रम को त्याग और संकल्प को खेंचकर अन्तर्मुख हुआ और अपनी जो कुटी थी उसकी ओर आया । मैंने कुटी देखी तो उसमें एक पुरुष बैठा मुझको दृष्टि आया । तब मैंने विचार किया कि यह कौन है, मेरा शरीर कहाँ है? मैंने विचार करके देखा कि यह कोई महासिद्ध है । मेरा शरीर इसने मृतक जानकर गिरा दिया है और आप पदमासन बाँधकर दोनों टँखने पुट्ठों के ऊपर किये और शिर और ग्रीवा सूधे किये बैठा है । दोनों हाथ काँधों पर ऊर्ध्व किये है-मानों कमल फूल है व मानों अन्तर का प्रकाश बाहर उदय हुआ है और नेत्र मूँदे है- मानों सब वृत्ति खैंच ली है । हे रामजी! इस प्रकार समाधि लगाकर पद्मासन बाँधे वह आत्मपद में स्थित बैठा था और उसका मुख सूर्य की नाईं प्रकाशता था । जैसे धुयें से रहित अग्नि प्रकाशता है, तैसे ही वह सिद्ध प्रकाशमान स्थित था । इस प्रकार मैंने उसको आत्मपद में स्थित देखा । जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, तैसे ही उसे स्थित देखकर मैंने विचार किया कि इसे यहाँ ही बैठा रहने दूँ और मैं अपने स्थान सप्तर्षि यों में जाऊँ । इस प्रकार कुटी के संकल्प को त्यागकर मैं उड़ा और उड़ते हुए मार्ग में मुझको विचार उपजा कि देखूँ अब उस सिद्ध की क्या दशा है । फिर उलटकर देखा तो कुटी सहित सिद्ध वहाँ नहीं था, क्योंकि कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरे संकल्प में स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब वह कुटी गिर पड़ी तो उसमें वह सिद्ध कैसे रहे, वह भी गिर पड़ा । हे रामजी! उसको गिरता देखकर मैं भी उसके पीछे हुआ कि उसका कौतुक देखूँ । निदान आगे वह चला और मैं पीछे चला परन्तु मैं स्वाधीन और वह पराधीन चला जाता था । जैसे मेघ से बूँद गिरती है तो नहीं ठहरती तैसे ही वह चला और सप्तद्वीप के पार दशसहस्त्र योजन स्वर्ण की धरती है उस पर आन पड़ा और उसी प्रकार पद्मासन बाँधे हुए शीश और ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे, क्योंकि उसके शीश और ग्रीवा ऊर्ध्व को थे । हे रामजी! शरीर प्राण से हलता चलता है,जब प्राण ठहर जाते हैं तब शरीर नहीं हलता चलता इस कारण उसका शरीर सम ही रहा और जैसे कुटी में बैठा था उसी प्रकार आसन करके पृथ्वी पर आ पड़ा । तब मेरे मन में आया कि इसके साथ कुछ चर्चा भी करना चाहिये परन्तु यह तो समाधि में स्थित है इसलिये प्रथम किसी प्रकार इसको जगाऊँ । हे रामजी ऐसा विचार करके मैं मेघ होकर उसके शिर पर वर्षा करने लगा और बड़ा शब्द किया जिससे पहाड़ फटने लगे पर उस शब्द और वर्षा से भी वह न जागा । फिर जब मैं ओले होकर उसके ऊपर वर्षा करने । लगा-जैसे पत्थर की वर्षा की वर्षा होती है तब ऐसी वर्षा होने से वह नेत्र खोलकर देखने लगा-जैसे पर्वत पर मोर मेघ को देखने लगे और मैं उसके आगे आ स्थित हुआ । तब उसने समाधि खोली और उसकी प्राण इन्द्रियाँ अपने स्थान में आईं । हे रामजी! जब मुझको उसने अपने आगे देखा तब मैं अद्वैतभाव को त्यागकर बोला, हे साधो तू कौन है, कहाँ स्थित है, क्या करता था और किस निमित्त कुटी में स्थित था? सिद्ध बोले, हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृतभाव में स्थित हूँ और सब कुछ कहूँगा परन्तु जल्दी जल्दी मतकर-मैं स्मरण करके कहता हूँ । हे रामजी! मुझसे इस प्रकार कहकर वह स्मरण करने लगा और फिर स्मरण करके बोला, हे वशिष्ठजी! मुझपर क्षमा करो, क्योंकि सन्तों का शान्तस्वभाव होता है । मुझसे तुम्हारी बड़ी अवज्ञा हुई है परन्तु तुम क्षमा करो-मेरा तुमको नमस्कार है । हे रामजी! इस प्रकार नमस्कार करके उसने निर्मल आनन्द के उपजाने वाले यह वचन कहे कि हे मुनीश्वर! संसाररूपी नदी है जिसका बड़ा प्रवाह है और कदाचित् नहीं सूखता । चित्तरूपी समुद्र से यह प्रवाह निकलता है, जन्म-मरण इसके

www.tantrik-astrologer.in

दोनों किनारे हैं, रागद्वेषरूपी इसमें तरंग हैं और भोग की तृष्णा इसमें चक्र फिरता है-उसमें मैंने बड़ा दुःख पाया है । हे मुनीश्वर! अपने सुख के निमित्त देवों के स्थानों में भी मैं गया, दिव्य भोग भोगे और स्पर्श आदिक जो भोग हैं वे भी सब मैंने भोगे हैं परन्तु शान्ति मुझको नहीं प्राप्त हुई और जिस सुख को मैं चाहता था सो न पाया । जैसे पपीहा मेघ की बूँद चाहता है और मरुस्थल की भूमिका में उसको शान्ति नहीं होती, तैसे ही मुझको विषयों के सुख में शान्ति न हुई । हे मुनीश्वर! इस जगत् को असार जानकर मेरा चित्त विरक्त हुआ है इतने काल मैंने भोग भोगे परन्तु मुझको शान्ति न हुई । इसको असत् जानकर मैं फिरा और विचार किया कि जो सार हो उसमें स्थित हो रहूँ । तब मैंने जाना कि सार अपना अनुभवरूप ज्ञानसंवित ही है-इससे मैं उसी में स्थित हुआ हूँ । हे मुनीश्वर! जितने विषय हैं वे विषरूप हैं । विष के पान किये से मृत्यु ही होती है । स्त्री, धन आदिक सुख मोह और दुःख के देनेवाले हैं । ऐसा कौन पुरुष है जो इनमें आया सावधान रहता है? ये तो स्वरूप से नष्ट करने वाले हैं । हे मुनीश्वर! देहरूपी एक नदी है जिसमें बुद्धिरूपी एक मछली रहती है, जब वह शिर बाहर निकालती है अर्थात् इच्छा करती है तब भोगरूपी बगला इसको खा जाता हे अर्थात् आत्म मार्ग से शून्य करता है । ये जो भोगरूपी चोर हैं जब इनका संग जीव करता है तब वे इसको लूट लेते हैं अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य करते हैं और जब आत्मज्ञान से शून्य होता है तब जन्मों का अन्त नहीं आता-अनेक शरीर धारता है । जैसे चक्र पर चढ़ी हुई मृत्तिका अनेक वासनों के आकार धारती है तैसे ही आत्मज्ञान से रहित जीव अनेक शरीर धारता है पर अब मैं जाता हूँ मुझको वे अब नहीं लूट सकते । हे मुनीश्वर! भोगरूपी बड़े नाग हैं, और जो नाग हैं उनके डसे से शरीर मृतक होते हैं पर विषयरूपी सर्प के फूत्कार से ही मृतक होता है अर्थात् इच्छा करने से ही आत्मपद से शून्य होता है । जब जीव को विषयों की इच्छा से सम्बन्ध होता है तब उसका क्षण-क्षण में निरादर होता है- जैसे कदली वन से रहित हुआ और महावत के वश में आया हस्ती निरादर पाता है । हे मुनीश्वर! जिस शरीर के निमित्त जीव विषयों की इच्छा करता है वह शरीर भी नाशरूप है इसमें अहंप्रतीति करनी परम आपदा का कारण है और अहंप्रतीति न करनी परमसुख का कारण है । जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ दर्दुर मच्छर खाने की इच्छा करता है सो महामूर्ख है । किसी क्षण काल उसको ग्रास लेगा, इससे भोगों की इच्छा करनी व्यर्थ है और दुःख का कारण है । हे मुनीश्वर जब बाल अवस्था व्यतीत होती है तब युवा अवस्था आती है और युवा के उपरान्त जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है । जैसे वसन्तऋतु की मञ्चरी जेठ आषाढ़ में सूख जाती है, तैसे ही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है और दुःख पाता है । बालक अवस्था में जीव क्रीड़ा में मग्न होता है, यौवन अवस्था में कामादिक सेवता और वृद्ध होकर चिन्ता में मग्न रहता है । इस प्रकार जब यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं तब मर जाता है । जीवों की अवधि इस प्रकार व्यतीत होती है और परमपद से अप्राप्त रहते हैं । हे मुनीश्वर! यह आयु बिजली के चमत्कार की नाईं है । इस क्षणभंगुर अवस्था में जो भोगों की वाञ्छा करते हैं वे महादुःख को प्राप्त होते हैं । इनमें सुख देखकर जो कोई कहे कि मैं स्वस्थ रहूँगा तो कदाचित् न होगा । जैसे जल के तरंगों में बैठकर कोई स्थित हुआ चाहे तो नहीं हो सकता-अवश्य मरेगा-तैसे ही विषय भोगों से शान्ति सुख नहीं होता । जैसे कोई महाधूप से तपा हुआ सर्प के फन की छाया के नीचे बैठकर सुख की वाञ्छा करे तो सुख न पावेगा पर जब आत्मज्ञान रूपी वृक्ष की छाया के नीचे बैठे तब शान्त और सुखी होगा । जिन पुरुषों ने विषयों की सेवना की है वे परमसुख को प्राप्त होते हैं और जिन्होंने आत्मपद की सेवना की है वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं । जैसे नदी का प्रवाह नीचे चला जाता है, तैसे ही मूर्ख का

www.tantrikastrologer.in

मन विषयों की ओर धावता है । यह संसार मायामात्र है और इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती । जैसे मरुस्थल की नदी के जल से तृषा निवृत्त नहीं होती तैसे ही विषय भोगों से शान्ति कदाचित् नहीं होती । जो आत्मपद से विमुख हैं वे विषयों की ओर धावते हैं और जो आत्मपद में स्थित हैं वे विषयों की ओर नहीं दौड़ते । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर नष्ट होते हैं और जैसे नदी का वेग समुद्र की ओर गमन करता है पर पत्थर की शिला गमन नहीं करती, तैसे ही भोगरूपी समुद्र की ओर अज्ञानी दौड़ता है ज्ञानी नहीं गमन करता । हे मुनीश्वर! कमल में सुगन्ध तबतक होती है जबतक सर्प के मुख का वायु नहीं लगा, तैसे ही बुद्धि में विचार तबतक है जबतक चित्तरूपी सर्परूपी सर्प को भोग और इच्छारूपी वायु नहीं लगा । जब यह लगता है तब विचाररूपी सुगन्ध ले जाता है और विषरूपी तृष्णा को छोड़ जाता है । बाण निशान की ओर तब धावता है जब धनुष और चिल्ले को त्यागता है और त्यागे से फिर नहीं मिलता, तैसे ही आत्मारूपी चिल्ले से जब चित्तरूपी बाण छूटता है तब भोगरूपी निशान की ओर धावता है और जब जाता है तब फिर आना कठिन होता है-अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होता है । हे मुनीश्वर! यह आश्चर्य है कि जो पदार्थ सुखदायक नहीं हैं उनकी ओर चित्त बड़ा यत्न करता है पर तो भी वे सिद्ध नहीं होते और अयत्नसिद्ध आत्मपद है उसको त्यागते हैं । जिनको यह सुख जानता है वे सब दुःख के स्थान हैं जिस अपने को यह भला जानता है वह अनर्थ का कारण है । जिस देह को जीव सुखरूप जानता है वह सर्वरोग का मूल है । जिनको यह भोग जानता है वे इसको दुःख देनेवाले परमरोग हैं और जिनको यह सत्य जानता है वे सब मिथ्या हैं, जिनको यह स्थित जानता है वे स्थित नहीं चलरूप हैं, जिनको यह रस जानता है वे सब विरस हैं, जिनको बान्धव जानता है वे सब अबान्धव हैं और दृढ़ बन्धनरूप हैं और जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानता है वह सर्पिणी है और परमविष के देनेवाली है जिसका काटा मर जाता है फिर नहीं जीता अर्थात् आत्मपद में स्थित नहीं होता । हे मुनीश्वर! मैं परम आपदा का कारण देह को जानता हूँ इसके निवृत्त हुए जीव परमपद को प्राप्त होता है जिस पुत्र, धन आदिक को जीव संपदा जानता है सो परम दुःखरूप आपदा है, इसमें सुख कदाचित् नहीं । यह वार्त्ता मैं सुनकर नहीं कहता, मैंने देखकर विचार किया है, विचार करके अनुभव किया है और अनुभव करके कहा है कि यह संसार मायामात्र है । बड़े-बड़े स्थानों में भी गया हूँ परन्तु सार पदार्थ मुझको कोई दृष्टि नहीं आया । स्वर्ग में नन्दनवन आदि काष्ठरूप ही देखे, मृत्युलोक में आकर देखा तो पञ्चभूत ही दृष्टि आये और शरीर में रक्त, माँस, हाड़, मूत्र आदिक देखे, जो ऐसे शरीर में अहमप्रत्यय करते हैं मैं उनको धिक्कार देता हूँ । शरीर की आयुष्य ऐसी है जैसे दोनों हाथों में जल लीजिये तो बह जाता है अथवा जैसे जल में तरंग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होते हैं व बिजली का चमत्कार होकर नष्ट हो जाता है । जो ऐसे शरीर को पाकर सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं । बालक अवस्था तरंग की नाईं नष्ट हो जाती है यौवन अवस्था बिजली के चमत्कार वत् छिप जाती है और वृद्ध अवस्था में केश श्वेत हो जाते हैं और दाँत घिसकर गिर पड़ते हैं । जैसे नीचे स्थान में जल स्थित हो जाता है तैसे ही सब रोग वृद्ध अवस्था में आ स्थित होते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जाती है । हे मुनीश्वर! उस समय सब पदार्थ जर्जरीभूत हो जाते हैं और तृष्णा जवान होती है-जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी बढ़ती जाती है-और जो सुखभोग प्राप्त होकर बिछुड़ जाते हैं उनका दुःख होता है । हे मुनीश्वर! इस प्रकार इनको असत्य जानकर मैं स्वरूप में स्थित हुआ हूँ । यदि पाँचों इन्द्रियों के इष्ट बड़ी उत्तम मूर्ति धारके आ स्थित हों तो भी हमको खैंच नहीं सकते जैसे मूर्ति की लिखी कमलिनी भँवर को नहीं खैंच सकती, तैसे ही हम सरीखों को विषय नहीं चला सकते । हे मुनीश्वर! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा

www.tantrik-astrologer.in

करके डाल दिया है-विचार से नहीं फेंका । ब्रह्मा रुद्रादिक जो त्रिकालज्ञ हैं वे भी इस चर्मदृष्टि से नहीं जान सकते, जब विचार से देखते हैं तभी जानते हैं, इस कारण विचार बिना मैंने तुम्हारा शरीर फेंक दिया था । अब तुम क्षमा करो । योगेश्वर विचार से ही भूतम भविष्यत् और वर्तमान को जानता है, इन नेत्रों से तो वही जाना है कि जो अग्रभाग में होता है विशेष नहीं जाना जाता, इस कारण मुझसे तुम्हारा शरीर गिरा है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनन्नाम द्विशताधिक चतुर्थस्सर्गः ||204||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अन्तरोपाख्यानवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे साधो! मुझसे भी तेरा गिराना विचार बिना हुआ है कि विचार बिना मैं उठ गया था। यह कुटी मेरे अन्तवाहक संकल्प में थी सो मैं अपने स्थान को चला इस कारण यह कुटी गिर पड़ी और तुम भी गिर पड़े। जो बीत गई सो भली हुई उसकी क्या चिन्तना कीजिए? ज्ञानवान् बीती की चिन्तना नहीं करते जो होनी थी सो भली हुई। हे साधो! अब जहाँ तुम्हें जाना है वहाँ जावो और हम भी जाते हैं। हे रामजी! इस प्रकार चर्चा करके हम दोनों आकाश मार्ग को उड़े-जैसे पक्षी उड़ते हैं-और परस्पर नमस्कार करके हम दोनों भिन्न भिन्न हो गये। वह अपने स्थान को चला और मैं अपने स्थान को चला और बहुतेरे स्थान देखता गया परन्तु मुझको कोई न जानता था। हे रामजी यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जो मैंने तुमसे कहा है उसे तुम विचारो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो सिद्ध के साथ समागम किया था तो आकाशमार्ग में कैसे शरीर से किया था और पंचभौतिक शरीर तो पृथ्वी पर पड़ा था और पृथ्वी में अणुरूप हो गया था फिर आप किस शरीर से बिचरे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अन्तवाहक शरीर से मैं बिचरता फिरा था और उससे ही मैं सिद्ध और देवताओं के स्थानों और इन्द्र, वरुण और कुबेर के स्थानों में फिरा हूँ परन्तु मुझे कोई न देखता था और मैं सबको देखता था। संकल्प रचित पुरुष से मेरा व्यवहार हुआ था और किससे कहूँ? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! अन्तवाहक शरीर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है फिर सिद्ध से आपने चर्चा कैसे की और उसने तुमको कैसे देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो तुम कहते हो तो सुनो। मैं इस निमित्त दृष्टि आया कि मेरा सत्य संकल्प था। मुझे यह फुरना हुआ कि सिद्ध मुझको देखे और मुझसे चर्चा करे इससे उसने मुझको देखा उसका संकल्प भी मेरे में आया तब जाना। जो दोनों सिद्ध हों और उनका संकल्प भिन्न भिन्न हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते- परन्तु किसी का विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है। इससे यद्यपि उसका संकल्प मेरे देखने को न था पर मेरा दृढ़ संकल्प था इससे मैं उसके संकल्प को खैंचकर अपनी ओर ले आया। जो बली होता है उसी की जय होती है-इससे उसने मुझको देखा। हे रामजी! जो अन्तवाहक में स्थित होता है उसको तीनों काल का ज्ञान होता है परन्तु व्यवहार में लगे तो उसे भूल जाता है और जो वर्तमान पदार्थ होता है उसी का ज्ञान होता है। इसी कारण उसने मेरा शरीर डाल दिया था, क्योंकि वह समाधि के व्यवहार में लगा था और मेरे संकल्प से वह कुटी भी गिरी थी कि जब मैं अपने स्थान के व्यवहार को ऐसी चिन्तना करके चला था। जो मैं चिन्तना में न होता, अन्तवाहक शरीर में होता और उस कुटी का भविष्यत् विचार उस संकल्प को रहने देता तो वह सिद्ध न गिरता पर मैं तो और ही व्यवहार में लगा था इससे अन्तवाहक विस्मरण हो गया जिससे वह कुटी गिर पड़ी और सिद्ध भी गिर पड़ा। हे रामजी! इस प्रकार सिद्ध गिरा और उससे चर्चा हुई तब मैं वहाँ से चला और अन्तवाहक शरीर से आकाशमार्ग में फिरने लगा। सिद्धों के समूह और देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि. मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम आदि सबके स्थान देखे परन्तु मुझको कोई न देखे। मैं बड़े बड़े शब्द करूँ कि किसी प्रकार कोई शब्द सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुने और न कोई देखे।जैसे स्वप्ने में कोई शब्द न करे तो उसका शब्द जाग्रत्वाला कोई नहीं सुनता और जैसे असंकल्पवाला दूसरे की सृष्टि व्यवहार का शब्द नहीं जानता तैसे ही मुझको कोई न जानता था। हे रामजी! इस प्रकार मैं प्रथम आकाश में पिशाच की नाईं होकर बिचरा और फिर दैत्यों के स्थानों में बिचरा मैं सबको देखूँ पर मुझको कोई न देखे। रामजी ने पूछा, हे

www.tantrik-astrologer.in

भगवन् । पिशाच का शरीर, जाति और क्रिया कैसी होती है और उनके रहने का कौन स्थान है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पिशाच की कथा से कुछ प्रयोजन न था तथापि तुमने प्रसंग पाकर पूछा है इससे मैं कहता हूँ । पिशाच का आकार नहीं होता और जो रूप वे धारते हैं सो सुनो । कई तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं और परछाही की नाईं भय देते हैं, कई शूकर और कई काकरूप धारकर स्थित होते हैं । ऐसे रूप धारके वे विचरते हैं और सबको देखते और जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता । शीत-उष्ण से वे भी दुःख पाते हैं और इच्छा, द्वेष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक विकार उनमें भी रहते हैं । शीतल जल और भले भोजन की वे भी इच्छा करते हैं और नगरों वृक्षों और दुर्गन्ध स्थानों में भी रहते हैं । कहीं सियार होकर दिखाई देते हैं और कहीं श्वान होकर दृष्टि आते हैं । मन में भी प्रवेश करते हैं और मन्त्र पाठ, दान आदिक से जो वश होते हैं सो भी अपनी अपनी वासना के अनुसार होते हैं । इनमें भी उत्तम, मध्यम और नीच होते हैं, जो उत्तम हैं वे देवताओं के स्थानों, मध्यम के स्थानों और नीच नरकों के स्थानों में रहते हैं और इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्य से रहित शुद्ध चैतन्यहै उससे हुई है । हे रामजी! सबका अपना आप वही चैतन्यसत्ता की नाईं है, उसमें जैसी जैसी वासना होती है तैसा ही तैसा पदार्थ हो भासता है । हे रामजी! न कहीं पिशाच है और न जगत् है, ब्रह्मसत्ता ही ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है । शुद्ध आत्मत्वमात्र में किञ्चन `अहं' होकर फुरा है उसी को जीव कहते हैं । उस अहं की दृढ़ता से मन फुरा है सो मन ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है । उस ब्रह्मा ने मनोराज से आगे जगत् उत्पन्न किया है और ब्रह्मा ही जगत्ूरूप होकर स्थित हुआ है सो ब्रह्मा स्थित है । हे रामजी! ब्रह्मा का शरीर अन्तवाहक और केवल आकाशरूप है और उसके दृढ़ संकल्प से आधिभौतिक जगत् दृढ़ हुआ है- उसी मन से और मन हुआ है । हे रामजी! जैसे ब्रह्मा का शरीर अन्तवाहक है तैसे ही सबका शरीर अन्तवाहक है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासता है और सब मनरूप है परन्तु दीर्घकाल का स्वप्ना है वह जाग्रत होकर स्थित हुआ है इससे दृढ़ भासता है । जिनको शरीर में अहंकार है उनको जगत् आधिभौतिक भासता है और जो प्रबोधरूप हैं उनको सब जगत् संकल्परूप है- वास्तव में कुछ उपजा नहीं, न तुम हो,न मैं हूँ न ब्रह्मा है और न जगत् है-सब ही ब्रह्मरूप है । जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, अग्नि और उष्णता में कुछ भेद नहीं और वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । ब्रह्मा और जगत् दोनों अज है, न ब्रह्मा ही उपजा है और न जगत् ही उपजा है-दोनों ब्रह्मरूप हैं । जो ब्रह्म से भिन्न भासता है वह भ्रान्तिमात्र है । हे रामजी! पञ्चभूत और छटा मन इनका नाम जगत् है । जबतक ये भूत उसमें दृष्टि आते हैं तबतक भ्रान्ति है और जब इनसे रहित केवल चैतन्य भासे तब उसी का नाम परमपद है । हे रामजी! जब आत्मपद में जागोगे तब पञ्च भूत भी आत्मा से भिन्न न भासेंगे । सबका अधिष्ठान चैतन्यसत्ता है जबतक आत्मा का प्रमाद है तब तक संसारभ्रम न मिटेगा । सब जगत् निराकार संकल्पमात्र है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आकाश में स्थूलभूत दृष्टि आते हैं । ज्ञानकाल और अज्ञानकाल में जगत् उपजा नहीं परन्तु अज्ञानी को दृढ़ भासता है । जैसे मनोराज से किसी ने नगर रचा हो तो वह उसी के हृदय में है और कहीं नहीं भासता, तैसे ही जबतक जीव अज्ञान निद्रा में सोया है तबतक जगत् भासता है पर जब जागेगा तब आकाशरूप देखेगा । हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बाँधता । जबतक स्वरूप का प्रमाद नहीं होता तबतक ब्रह्मा का संकल्प ब्रह्मा को नहीं बन्धन करता । स्वरूप भी अहंप्रत्यय से तो संकल्प रूप है और दूसरी कुछ वस्तु सत्य नहीं-आत्मा ही है । वास्तव में न जगत् का आदि है, न मध्य है और न अन्त है, न जगत् का होना है और न अनहोना है-आत्मसता ही अपने

www.tantrik-astrologer.in

आपमें स्थित है । हे रामजी! जो सर्वात्मा ही है तो राग-द्वेष किसका हो? सब अपना आप ही है और अपना आप जो आत्मतत्त्व है उसका किञ्चन संवेदन फुरने से जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है । जैसे किसी पुरुष ने मनोराज से एक स्थान रचा और उसमें दृढ़ भावना हुई तो आधिभौतिक भासने लग जाता है, तैसे ही जगत् भी ब्रह्मा का संकल्प है और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, रुद्र, वरुण और कुबेर आदिक सब संकल्परूप हैं पर संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासते हैं । हे रामजी! आत्मरूपी एक ताल है जिसमें चैतन्यरूपी जल है, फुरनरूपी कीचड़ है और उसमें चौदह प्रकार के भूतजातरूप दर्दुर रहते हैं सो सब संकल्पमात्र है । हे रामजी! आकाश में एक आकाशक्षेत्र है जिसमे शिला उत्पन्न होती हैं । स्वर्गलोक और देवता बड़ी शिला हैं, एक उनमें उज्ज्वल शिला है सो ज्ञानवान् है मध्यम शिला मनुष्य हैं नीचे शिला तिर्यक आदिक योनि हैं सो सब ही निर्बीज हैं अर्थात् कारण से रहित हैं और अद्वैत आत्मा सदा अपने आपमें स्थित है-कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रान्ति से भिन्न भिन्न भासता है । जैसे फैन बुद्बुदे और तरंग सब जल रूप हैं, तैसे ही यह जगत् सब आत्मरूप है और जैसे स्वप्न और संकल्प की सृष्टि कारण बिना होती है, तैसे यह जगत् कारण बिना संकल्प से उत्पन्न हुआ है । जैसे ब्रह्मादिक हुए हैं तैसे ही पिशाच भी उदय हुए हैं । हे रामजी! जैसा किञ्चन आत्मा में होता है तैसा ही होकर भासता है, वास्तव में पृथ्वी आदिक तत्त्व कहीं नहीं और न कहीं ब्रह्म उपजा है, न कोई जगत् उपजा है सब भ्रममात्र हैं । जितने वपु भासते हैं वे सब निर्वपु हैं, चैतन्यता से फुरे हैं और सब जीवों का आदि अन्तवाहक शरीर है । जैसे ब्रह्मा का अन्तवाहक शरीर था, तैसे ही सर्व जीवों का अन्तवाहक शरीर होता है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक हो भासता है । सब जीवों का अपना अपना भिन्न भिन्न संकल्प है उसी के अनुसार अपनी सृष्टि होती है । जो तुम कहो कि भिन्न भिन्न हैं तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्टि आते हैं, चाहिये कि अपनी अपनी सृष्टि में हो तो उसका उत्तर यह है कि जैसे एक नगरवासी और नगर में जावे और एक नगरवासी और में आवे और दोनों जाय इकट्ठे बैठें, तैसे ही सब जीव इकट्ठे भासते हैं पर उनके इकट्ठे हुए भी इसकी सृष्टि को वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि को यह नहीं देखता जैसे स्वप्न में भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं और अनुभव में इकट्ठे इकट्ठे दृष्टि आते हैं और एक अनुभव में भिन्न भिन्न होते हैं एक दूसरे की सृष्टि को नहीं जानते । जीव को अन्तवाहक भूल गया है इससे आधिभौतिक दृढ़ हो रहा है जैसा अनुभव में अभ्यास होता है तैसा ही भासता है । जहाँ पिशाच होता है वहाँ अन्धकार भी होता है । जो मध्याह्न का सूर्य उदय हो और पिशाच आगे आवे तो अन्धकार हो जाता है ऐसा तमरूप वह होता है । जैसे उलूकादिक को प्रकाश में अन्धकार होता है तैसे ही अनेक सूर्य का प्रकाश हो तो भी पिशाच को अन्धकार ही रहता है । हे रामजी! जैसा उनमें निश्चय होता है तैसा ही भान होता है, क्योंकि उनका ओज तमरूप है । जैसा किसी को निश्चय होता है तैसा ही भासता है । हमको तो सदा आत्मा का निश्चय है इससे हमें सदा आत्मतत्त्व का भान होता है । जैसा पिशाच पाञ्चभौतिक शरीर से रहित चेष्टा करते हैं तैसे ही मैं पंचभौतिक शरीर से रहित आकाश में चेष्टा करता रहा हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चमस्सर्गः ||205||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

अन्तरोपा0 वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूँ इसलिये पाञ्चभौतिक शरीर से रहित अन्त वाहक शरीर से मैं विचरता रहा परन्तु मुझको कोई न देखे । चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र जो सहस्त्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी इस चर्मदृष्टि से मुझे न देख सकें और मैं सबको देखता फिरूँ । इन्द्र के निकट जाकर मैंने उसके अंग हिलाये परन्तु उसने मुझको न जाना । जैसे संकल्पनगर किसी को हिलावे और वह न देखे और आधिभौतिक शरीर न हिले । इससे मैं अति मोह को प्राप्त हुआ कि इतने काल में रहा और मुझको कोई देख नहीं सकता । तब मैंने यह इच्छा की मुझको सब देखें । मैं तो सत्यसंकल्परूप था इससे सब मुझे देखने लगे । जैसे कोई इन्द्रजाल को देखे तैसे ही वे मुझको देखने लगे । जिसने पृथ्वी पर देखा उसने पृथ्वी से उपजा वशिष्ठ जाना और मनुष्यलोक में कई जल से उपजा जानेंकि वारिज वशिष्ठ है । कई ने वायु से उपजा जाना और कई जानें कि सप्तऋषियों के मध्य जो तेजोमय वशिष्ठ है वही है । इस प्रकार जगत् में मुझको सब देखने लगे और मैं सबके साथ व्यवहार करने लगा । जब बहुत काल इसी प्रकार व्यतीत हुआ तब सबने भावना की दृढ़ता से पञ्चभौतिक शरीर मुझको देखा और प्रथम वृत्तान्त सबको विस्मरण हो आधिभौतिकता दृढ़ हो गई जैसे अज्ञान जीव स्वप्न के नर को आधिभौतिक देखता है तैसे ही मेरे साथ उन्होंने आकार देखा पर मुझको सदा अपने स्वरूप अहं प्रत्यय से भिन्न द्वैत कुछ न भासता था, क्योंकि मैं ब्रह्मरूप था । मेरा नाम वशिष्ठ ऐसा है जैसे रस्सी में सर्प होता है, मैं तो चिदा काशरूप हूँ पर औरों को वशिष्ठ प्रतीति उपजी है । हे रामजी! तुम सरीखों को मेरा आकार दृष्टि आता है पर मुझको आधिभौतिक और अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाश का किंचन भासते हैं । मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हूँ । चेष्टा तुम्हारी और हमारी समान है परन्तु मुझको सदा आत्मपद का निश्चय है इस कारण मैं जीवन मुक्त होकर विचरता हूँ अज्ञानी की क्रिया में द्वैत भासता है और हमको क्रिया में भी अद्वैत भासता है, ब्रह्मा भी ब्रह्मस्वरूप भासता है और उसको संकल्प जो जगत् है वह भी ब्रह्मस्वरूप है । जैसे समुद्र में तरंग जलरूप है- भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही ब्रह्म में जगत् ब्रह्मरूप है-भिन्न कुछ नहीं । इसे मैं चिदाकाशरूप हूँ-द्वैत कुछ नहीं फुरता । जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है जैसे अहं के फुरने से स्वप्न की सृष्टि होती है, तैसे ही जाग्रत सृष्टि भी होती है सो संकल्पमात्र है । ब्रह्मा और ब्रह्मा का जगत् संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक की नाईं हो भासता है पर वास्तव में न ब्रह्मा उपजा है और न जगत् उपजा है चिदानन्द ब्रह्म अपने आपमें स्थित है और सदा एक रस है । हे रामजी! सृष्टि की आदि से प्रलय पर्यन्त जो कुछ क्षोभ है उसमें आत्मा सदा एकरस है और उसमें कदाचित क्षोभ नहीं, क्योंकि वास्तव कुछ उपजा नहीं,जो कुछ भासता है सो अज्ञान से सिद्ध है और ज्ञान से जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है । जैसे स्वप्नसृष्टि में किसी को कहीं निधि भासे तो वह उसकी प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है पर जब जागता है तो उसको स्वप्ना जान फिर उसके पाने का यत्न नहीं करता, तैसे ही जब आत्मबोध होता है तब फिर इस जगत् में जगत् बुद्धि नहीं रहती । अज्ञान ही जगत्‌भ्रम का कारण है और उस अज्ञान के निवृत्ति का उपाय यही है कि इस महा रामायण का विचार करना-उसी से संसारभ्रम निवृत्त होगा । यह संसार अविद्या से वासनामात्र है, जो इसको सत्य जानकर इसकी ओर धावते हैं वे परमार्थ से शून्य हैं मूढ़ हैं, कीट हैं और बानर की नाईं चञ्चल हैं । जिनको भोगों में सदा इच्छा रहती है वे नीचपशु हैं और उनको संसार से निवृत्त होना कठिन है, क्योंकि उनके हृदय में सदा तृष्णा रहती है और

www.tantrik-astrologer.in

वैराग्य को नहीं प्राप्त होते । हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान् भी भोगते हैं परन्तु वे भोगबुद्धि से नहीं भोगते पर प्रवाहपतित जो कुछ प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है उसको भोगतेत हैं और जानते हैं कि गुणों में गुण वर्तते है और इन्द्रियों सहित भोग को भ्रान्तिमात्र जानते हैं । जो अज्ञानी हैं वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं और भोग की तृष्णा से उनका हृदय जलता है-इसी का नाम बन्धन है । भोग दुःखरूप हैं, जो इनको सेवते हैं वे हृदय में सदा तृष्णा से जलते हैं और उनका द्वैतरूप जगत्ः रूप कदाचित् नहीं मिटता और ज्ञानवान् सदा आत्मा से तृप्त रहते हैं इससे शान्तरूप हैं जैसे हिमालय पर्वत में सब पदार्थ शीतल हो जाते हैं तैसे ही आत्मज्ञान से हृदय शीतल हो जाता है, आत्मानन्द की प्राप्ति होती है और कोई दुःख नहीं रहता । जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र और धन में आसक्त है और इच्छा करते हैं वे महामूर्ख और नीच हैं, उनको धिक्कार है । जिसको आत्मपद की इच्छा हो उसको सदा सन्तो का संग करना चाहिये और शास्त्रों को श्रवण करके विचार करना चाहिये । इस अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति की प्राप्ति होती है । हे रामचन्द्र! इस शास्त्र का विचार परमपद को प्राप्त करानेवाला है । जो पुरुष इस शास्त्र को त्यागकर और की ओर लगते हैं वे मूर्ख हैं । वाल्मीकिजी बोले, हे राजन् जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सर्वश्रोता परस्पर नमस्कार करके गये और सूर्य की किरणों के उदय होने से फिर आन स्थित हुए ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे अन्तरोपा० वर्णनसमाप्तिर्नामद्विशताधिकषष्ठस्सर्गः ||206||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मुक्तसंज्ञा वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमको यह अन्तरोपाख्यान सुनाया है इसके विचार से जगत्ः भ्रम नष्ट हो जायगा । ऐसे तुम जब विचार कर देखोगे तब अनन्त ब्रह्माण्ड आत्मा में धँसते दृष्टि आवेंगे ।हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ इससे मिटता भी नहीं, चित्त के फुरने से भासता है, जब चित्त का फुरना अधिष्ठान में लीन हो जावेगा तब अद्वैततत्व आत्मा ही भासेगा । हे रामजी! अद्वैततत्त्व में जगत् भ्रम में भासता है । ज्ञानवान् की दृष्टि में सदा अद्वैत ही भासता है । जगत् मैं और तुम सब चिदाकाश हैं । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं-आत्मसत्ता ही जगत् होकर भासती है । जैसे अपना अनुभव स्वप्ने की दृष्टि को भासता है सो अनुभवरूप ही है, तैसे ही यह जगत् भी चिदाकाशरूप है । यदि नाना प्रकार विकार भी दृष्टि आते हैं तो भी आत्मसत्ता अनुस्यूत और अखण्ड रूप है-आत्मसता और जगत् में भेद कुछ नहीं जैसे सुवर्ण और भूषणों में भेद नहीं होता, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं ब्रह्म ही चेतनता से जगत्ःरूप हो भासता है जैसे स्वप्न में अपने ही अनुभव से बहुत विस्तृत हो भासता है सो अनुभव से इतर कुछ नहीं हुए और जैसे समुद्र और तरंगों में कुछ भेद नहीं, तैसे ही कुछ, जगत् और अनुभव तीनो में कुछ भेद नहीं-असम्यक् दृष्टि से भेद भासता है, सम्यक्ःदृष्टि से कोई भेद नहीं । हे रामजी! आत्मसत्ता में प्रथम आभास फुरा है सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआ है वह ब्रह्मा चिदाकाशरूप है और वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । उसी ब्रह्म सत्ता ने अपने भाव को नहीं त्यागा और ब्रह्मरूप होकर स्थित हुई है । फिर उसने जगत् रचा इसलिये वह जगत् भी आकाशरूप वास्तव में न जगत् उपजा है न ब्रह्मा उपजा है और न स्वप्ना हुआ है और परमार्थसत्ता सदा अपने आप में स्थित है जो शुद्ध, अनन्त, अविनाशी अचेत चिन्मात्र है और जगत् भी वही स्वरूप है । हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूँ, न मेरे साथ कोई आकार है, न मैं कदाचित् उपजा हूँ और न मैं कदाचित् मृतक होता हूँ । मैं नित्य, शुद्ध, अजर-अमर सदा अपने स्वभाव में स्थित हूँ और अनेक विकारों में भी एकरस हूँ । जैसे स्वप्न में बड़े क्षोभ होते हैं तो भी जाग्रत् वपु को स्पर्श नहीं करते, क्यों कि उसमें कुछ हुए नहीं आभासमात्र है, तैसे ही जगत् की उत्पत्ति-प्रलयादिक क्षोभ में आत्मसत्ता को स्पर्श नहीं होता अर्थात् वह क्षोभ से रहित सदा अनुभवरूप है । जिस पुरुष ने ऐसे अनुभव को नहीं पहिचाना जिससे सब कुछ सिद्ध होता है और उसे छिपाया है वह महामूर्ख है और आत्महत्यारा है-वह महाआपदा के समुद्र में डूबेगा-और जिसको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय हुई है उसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता । जैसे पर्वत को चूहा नहीं चूर्ण कर सकता, तैसे ही उसको दुःख नहीं स्पर्श करता! जिसको आत्मा में अहं प्रत्यय नहीं उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती । जैसे वायुगोले में उड़ा हुआ तृण स्थिर नहीं होता, तैसे ही देह अभिमानी को कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती । जो अपने शुद्ध स्वरूप को त्यागकर देह से आपको मिला हुआ जानता है सो क्या करता है? वह मानो चिन्तामणि को त्यागकर राख को अंगीकार करता है और शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूप को त्यागकर देह में आत्म अभिमान करता है । हे रामजी! जब जीव अनात्म में आत्मअभिमान करता है तब आपको विकारवान् और जन्मता मरता मानता है और जब देह अभिमान को त्यागकर आत्मा को आत्मा मानता है तब न जन्मता है न मरता है, न शस्त्र से कटता है, न अग्नि से दग्ध होता है, न जल से डूबता है, और न पवन से सूखता है-निराकार अविनाशी और चिदाकाशरूप है । हे रामजी! यदि चेतन की मृत्यु होती हो तो पिता के मरे से पुत्र भी मर जाता और एक के मरे से सभी मर जाते, क्योंकि आत्मसत्ता चेतन एक अनुस्यूत है पर एक के मरने से सब नहीं

www.tantrik-astrologer.in

मरते, इससे चैतन्य आत्मा को मृत्यु कदाचित् नहीं । शरीर के काटे से आत्मा नहीं कटता शरीर के दग्ध हुए आत्मा नहीं दग्ध होता और सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जावे तो भी आत्मा भस्म नहीं होता । आत्मा नित्य, शुद्ध, अनन्त, अच्युतरूप-कदाचित्ॎ स्वरूप से अन्यथा भाव को नहीं प्राप्त हुआ है । हे रामजी! मैं अहंब्रह्मरूप हूँ अर्थात् सब में अहंरूप निराकार अखण्ड मैं हूँ न मुझको जन्म है और न मृत्यु है, सुख की इच्छा नहीं, न कुछ हर्ष है, न शोक है, न जीने की इच्छा है और न मरने की इच्छा है । जैसे रस्सी में सर्प और सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं तैसे ही आत्मा में वशिष्ठ नामरूप है और देश,काल, वस्तु, के परिच्छेदन से रहित अनन्त आत्मा, नित्य, शुद्ध और बोधरूप हूँ । सबका स्वरूप आत्म तत्त्व है परन्तु वास्तवस्वरूप के प्रमाद से और अवस्तु को प्राप्त हुए की नाईं भासता है । जो पुरुष स्वरूप में स्थित नहीं हुये वे संसारमार्ग की ओर दृढ़ हुए हैं, उनका जीना वृथा है और वे कहनेमात्र चैतन्य हैं, नहीं तो पाषाण की शिलावत् हैं । जैसे लुहार की धौंकनी से पवन निकलता है, तैसे ही उनका जीना वृथा है । वे घड़ीयन्त्र की नाईं वासना में भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और सदा तपते रहते हैं जिनको अत्मपद में स्थिति हुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता । यदि प्रलयकाल का पवन चले और पुष्करमेघ की वर्षा हो, बड़वाग्नि लगे और द्वादश सूर्य तपें पर वे ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं,होते, क्योंकि वे सर्वब्रह्मस्वरूप जानते हैं । जैसे तृण से पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे ही बड़े दुःखों से भी चलायमान नहीं होते दुःख तब होता है जब आत्मा से भिन्न कुछ भासता है पर उनको तो आत्मा से भिन्न कुछ भासता ही नहीं । हे रामजी! यह सब जगत् आत्मअनुभवरूप है, क्योंकि आत्म रूप है । जैसे स्वप्न में अनुभव से भिन्न कुछ वस्तु नहीं होती तैसे ही सब जगत् अनु भवरूप है और जो भिन्न भासता है सो भ्रान्तिमात्र है । यह जगत् जो नाना प्रकार का भासता है सो आत्मा में अव्यक्तरूप है और भ्रम से प्रकट भासता है । जैसे आकाश में नीलता से सिद्ध है, तैसे ही आत्मा में जगत् भ्रम से सिद्ध है । वास्तव में ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं, आत्मसत्ता ही जगत् होकर भासती है और उसमें जैसा निश्चय होता है तैसा ही तैसा अधिष्ठानरूप भासता है । जिनको कारण से सृष्टि का होना दृढ़ हो रहा है उनको वैसा ही भासता है, जिनको परमाणुओं से सृष्टि उत्पन्न होने का निश्चय है उनको वैसा ही सत्य भासती है और माध्यमिक सत् असत् के मध्य वस्तु को मानते हैं । एक चार्वाकी म्लेच्छ हैं जो चारों तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं, बौद्ध कहते हैं कि जो कुछ वस्तु है वह बोध है इसके अभाव हुए से शून्य है । ब्राह्मण, हाथी, गौ, श्वान, घोड़ा, सूर्यादिक में भिन्न भिन्न प्रतीति हो रही हैं पर जो ज्ञान वान् ब्राह्मण हैं वे सबमें एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत् देखते हैं । हे रामजी! वस्तु तो एक है पर उसमें जैसा निश्चय जिसको हुआ है तैसा ही भासता है । जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु में जैसी भावना करते हैं तैसी ही सिद्धि होती है, तैसे ही आत्मसत्ता में जैसी भावना करते हैं, तैसा ही रूप हो भासता है । हे रामजी! बुद्धिमानों से निर्णय किया है कि सारभूत आत्मसत्ता ही है, जब उसमें दृढ़ अभ्यास करोगे तब आत्मसत्ता ही भासेगी और फिर उस निश्चय से चलायमान न होगे । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पाताल, भूतल और स्वर्ग में बुद्धिमान कौन हैं जिनको पूर्वापर के विचार से परावर का साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूप का वे कैसे निश्चय करते हैं वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितना जगत् है सब इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से जलता है और इष्ट की प्राप्ति में हर्ष और अनिष्ट की प्राप्ति में शोक करता है । ऐसा कोई बिरला ही है जो जगत् में सूर्य की नाईं प्रकाशता है, नहीं तो सब तृणवत् भोगरूपी वायु में भटकते हैं और जो सबसे श्रेष्ठ कहाता है वह भी विषयरूपी अग्नि में जलता है जैसे कृमि अशुभ स्थानों में रहते हैं और उनसे आपको प्रसन्न मानते हैं

www.tantrik-astrologer.in

तैसे ही देवता भी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानों में आपको प्रसन्न मानते हैं सो मेरे मत में दुर्गन्ध के कृमि हैं । गन्धर्व तो मूढ़ हैं उनको तो कुछ सुधि नहीं अर्थात् आत्मपद की गन्ध भी नहीं-वे तो मेरे मत में मृग हैं । जैसे मृग को राग में आनन्द होता है, तैसे ही गन्धर्व राग से उन्मत्त रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं । विद्याधर भी मूर्ख हैं, क्योंकि वे वेद के अर्थरूपी चतुराई को अग्नि में जलाते हैं और वेद के सार भूत अमृत को नहीं जानते इसलिये आत्मपद से विमुख हैं । सिद्ध मेरे मत में पक्षी हैं जो पक्षी की नाईं उड़ते फिरते हैं और अभिमानरूपी पवन के चलने से अनात्मरूपी गढ़े में आन पड़ते हैं अपने वास्तव स्वरूप में स्थित नहीं होते- यक्ष धन के अभिमान से मूर्ख की नाईं प्रीति कर जलते हैं और आत्मपद में स्थित नहीं होते । योगिनी भी मद से सदा उन्मत्त रहती हैं इससे आत्मपद में स्थित नहीं पातीं और दैत्यों को भी सदा द�वताओं के मारने की इच्छा रहती है इससे सदा शोक में रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं । तुम तो पहले से ही जानते हो । मनुष्य भी आत्मपद से गिरे हुए हैं,क्योंकि सदा यही इच्छा रहती है कि गृह बनाइये और वे खाने और धन इकट्ठे करने के निमित्त यत्न करते हैं और इन्द्रियों के विषयों में डूबे हुए हैं । पाताल में नाग रहते हैं जिनका जल में भी निवास है वे सुन्दर नागनियों में आसक्त रहते हैं इसलिए वे भी आत्मानन्द से गिरे हुए हैं । निदान जितने भूतप्राणी हैं वे सब विषयों के सुख में लगे हुए हैं और आत्मपद से विमुख हैं । सब जातों में बिरले जीवन्मुक्त भी हैं और ज्ञानवान् भी हैं- उन्हें सुनो । देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सदा आत्मानन्द में मग्न हैं और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, कुबेर, बृहस्पति शुक्र, नारद, कच आदि जीवन्मुक्त पुरुष हैं । सप्तऋषि और दक्ष प्रजा पति, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जीवन्मुक्त हैं और और भी बहुत मुक्त हैं । सिद्धों में कपिलमुनि, यक्षों में विद्याधर और योगिनी और दैत्यों में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद,बलि, विभीषण, इन्दरजीत, स्वरमेय, चित्रासुर और नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं मनुष्यों में राजर्षि और ब्रह्मर्षि और नागों में शेषनाग, वासुकि नाग आदिक जीवन्मुक्त हैं । ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक में कोई कोई बिरले जीवन्मुक्त हैं हे रामजी! जात जात में जो जीवन्मुक्त हुए है सो तुमसे संक्षेप में कहे हैं और जहाँ जहाँ देखता हूँ वहाँ वहाँ अज्ञानी ही बहुत हैं ज्ञानवान् कोई बिरला दृष्टि आता है । जैसे सब जगह और वृक्ष बहुत हैं परन्तु कल्पवृक्ष बिरला होता है, तैसे ही संसार में अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोई बिरला है । हे रामजी! शूरमा और कोई नहीं, जिनकी आत्मपद में स्थिति हुई है वही शूरमा हैं और संसार समुद्र तरना उन्हीं को सुगम है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मुक्तसंज्ञावर्णनन्नाम द्विशताधिकसप्तमस्सर्गः ||207||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवन्मुक्तव्यवहार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त है और जिनकी स्वरूप में स्थिति हुई है उनके राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दम्भ, आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार स्वाभाविक निवृत्त हो जाता है और जैसे बाण को देखकर कौवा भाग जाता है तैसे ही विवेकरूपी बाण को देखकर विकाररूपी कौवे भाग जाते हैं । विवेकी पुरुषों के हृदय में इतने गुण स्वाभाविक आन स्थित हैं कि वे किसी पर क्रोध नहीं करते और जो करते भी दृष्टि आते हैं- सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदय में सदा शीतलता और दया रहती है और जो कोई उनके निकट आता है वह भी शीतल हो जाता है, क्योंकि वे निरावरण स्थित हैं । जैसे चन्द्रमा के निकट गये से शीतल होता है तैसे ही ज्ञानवान् के निकट आये से हृदय शीतल होता है और कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता । जो कोई निकट आता है उसको वे विश्राम के निमित्त स्थान देते हैं और उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं । जैसे कमल के निकट भँवरा जाता है तो वे उसको विश्राम का स्थान देते हैं और सुगन्ध से उसका अर्थ पूर्ण करते हैं,तैसे ही सन्तजन अर्थ पूर्ण करते हैं । वे यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं और हेयो पादेय की विधि को भी जानते हैं । जो कुछ उन्हें स्वाभाविक प्राप्त हो उसको वे शास्त्र की विधि सहित अंगीकार भी करते हैं और हृदय में सर्व की भावना से रहित हैं । उनमें दान-स्नान आदिक शुभ क्रिया स्वाभाविक होती हैं और उदारता, वैराग्य; धैर्य, शम दम आदिक गुण स्वाभाविक होते हैं । वे इस लोक में भी सुख देनेवाले हैं और परलोक में भी सुख देनेवाले हैं । हे रामजी! जिन पुरुषों में ऐसे गुण पाइये वे ही सन्त हैं । जैसे जहाज के आश्रय समुद्र से पार होते हैं तैसे ही संसारसमुद्र के पार करनेवाले सन्तजन हैं । जिनको सन्तजनों का आश्रय हुआ है वे ही तरे हैं । सन्तजन संसारसमुद्र के पार के पर्वत हैं । जैसे समुद्र में जल होता है तो बड़े तरंग उछलते हैं और उसमें बड़े मच्छर रहते हैं पर जब उसका प्रवाह उछलता हे तब पर्वत उस प्रवाह को रोकता है और उछलने नहीं देता तैसे ही चित्तरूपी समुद्र में इच्छारूपी तरंग है और रागद्वेष रूपी मच्छ रहते हैं, जब इच्छारूपी तरंग का प्रवाह उछलता है तब सन्तरूपी पर्वत उसको रोकते हैं । सन्तजन अपने चित्त को भी रोकते हैं और जो उनके निकट कोई जाता है तो उसकी रक्षा करते हैं । यदि शरीर नष्ट होने लगे अथवा नगर नष्ट होने लगे व निकट अग्नि लगे तो भी ज्ञानवानों का हृदय स्वरूप से चलायमान नहीं होता, वे सदा अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं । जैसे भूकम्प से सुमेरु चलायमान नहीं होता तैसे ही वे भी चलायमान नहीं होते । यह जो मैंने तुमसे शुभगुण स्नान, दान आदि कहे हैं सो जीवों को सुख देने वाले हैं और दुःख को निवृत्त करनेवाले हैं । इनसे सुख की प्राप्ति होती है और दुःख नष्ट हो जाता है । जब स्नानदान की ओर मनुष्य आता है तब सन्तों की संगति में भी उसका चित्त लगता है और जब सन्तों की संगति में चित्त लगा तब क्रम से परमपद की प्राप्ति होती है । इससे मनुष्य को यही कर्तव्य है कि शास्त्र के अनुसार शुभ चेष्टा करे और सन्तों के निश्चय का अभ्यास करे । हे रामजी! जिसको सन्तों की संगति प्राप्त होती है वह भी सन्त हो जाता है । सन्तों का संग वृथा नहीं जाता । जैसे अग्नि से मिला पदार्थ अग्निरूप होता जाता है, तैसे ही सन्तों के संग से असन्त भी सन्त हो जाता है और मूर्खों की संगति से साधु भी मूर्ख हो जाता है । जैसे उज्ज्वल वस्त्र मल के संग से मलीन हो जाता है तैसे ही मूढ़ का संग करने से साधू भी मूढ़ हो जाता है, क्योंकि पाप के वश से उपद्रव भी होते हैं, इसी से पाप के वश साधु को भी दुर्जनों की संगति से दुर्जनता आनि उदय होती है । इससे हे रामजी! दुर्जन की संगति सर्वथा त्यागनी चाहिये

www.tantrik-astrologer.in

और सन्तों की संगति कर्तव्य है । जो परमहंस सन्त मिले और जो साधु हो और जिसमें एक गुण भी शुभ हो उसको भी अंगीकार कीजिये, परन्तु साधु के दोष न विचारिये-उसका शुभगुण ही अंगीकार कीजिये । जैसे भँवरा केतकी के कण्टकों की ओर नहीं देखता, उसकी सुगन्ध को ग्रहण करता है । इससे हे रामजी! संसारमार्ग को त्यागकर सन्तों की संगति करो तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तव्यवहारो नाम द्विशताधिकाष्टमस्सर्गः ||208||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमार्थरूप वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! हमारे दोष तो सत्शास्त्रों, सत्संग और उनकी युक्ति से और समानदुःख तीर्थ, स्नान, दान, जप और पूजा से निवृत्त होते हैं पर और जीव जो कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदिक हैं उनके दुःख कैसे निवृत्त होंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी जो वास्तवसत्ता है उसी का नाम ब्रह्म है और वह अखण्ड अद्वैत है, उसमें कुछ द्वैत का विभाग नहीं है परन्तु उसमें जो चित्त किञ्चन अभास फुरा है सो फुरना ही नानात्व हुए की नाईं स्थित हुआ है वास्तव में कुछ हुआ नहीं । जैसे स्वप्न में स्वप्न की सृष्टि भासती है परन्तु वास्तव कुछ हुई नहीं निद्रादोष से भासती है, तैसे ही जाग्रत् सृष्टि भी कुछ वास्तव नहीं हुई अज्ञान से जीवों को भासती है । वास्तव में सब ब्रह्म रूप है पर अपने स्वरूप के प्रमाद से जीवत्वभाव को अंगीकार किया है । उस अंगीकार करने और अनात्म देहादिक में आत्मअभिमान करके जैसा निश्चय करता है तैसी ही गति पाता है । देश, काल, क्रिया और द्रव्य का जैसा संकल्प अनुभवसत्ता में दृढ़ होता है तैसा ही भासता है । उसमें चार अवस्था कल्पित होती हैं और जैसी-जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्था का अनुभव होता है । वे चार अवस्था ये हैं-एक घनसुषुप्ति, दूसरी क्षीण सुषुप्ति, तीसरी स्वप्न अवस्था और चौथी जाग्रत् ।पर्वत् और पाषाण घन-सुषुप्ति में है । जैसे सुषुप्ति अवस्था में कुछ नहीं फुरता, जड़ीभूत हो जाता है, तैसे ही इसको कुछ फुरना नहीं फुरता-घनसुषुप्ति में स्थित है । वृक्ष क्षीणसुषुप्ति में स्थित हैं । जैसे क्षीणसुषुप्ति में कुछ फुरना फुरता है, तैसे ही वृक्षों में भी फुरना होता है इससे वे क्षीणसुषुप्ति में हैं । तिर्यक् जो पक्षी, कीट, पतंग, आदि जीव हैं वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं । जैसे स्वप्न में पदार्थ भासता है परन्तु स्पष्ट नहीं भासता तैसे ही इनको थोड़ा सूक्ष्म ज्ञान है इससे वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं । मनुष्य और देवता जाग्रत्ऽरूप जगत् का अनुभव करते हैं । हे रामजी! यह चारों अवस्था आत्मा में स्थित हैं । सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है-बड़े का क्या और छोटे का क्या । उसमें जैसे संकल्प दृढ़ होता है तैसा ही हो भासता है । हे रामजी । हमको एक दिन व्यतीत होता है और चींटी को उसी में युग का अनुभव होता है, हमको जो सूक्ष्म अणु होता है उनको वही पर्वत के समान भासता है । हे रामजी! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है परन्तु भावना से भिन्न-भिन्न भासता है । एक कीट है जो बहुत सूक्ष्म है, जब वह चलता है तब जानता है कि मेरा गरुड़ का सा वेग है और उसको वही सत् हो रहा है । बालखिल्य का अंगुष्ठप्रमाण शरीर है उनको वही बड़ा भासता है और विराट् को वही अपना बड़ा शरीर भासता है । निदान जैसी जिसको भावना होती है तैसा ही उसको भासता है । मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी सबका अपना-अपना भिन्न-भिन्न संकल्प है, जैसा संकल्प किसी को दृढ़ हो रहा है उसको तैसा ही स्वरूप भासता है । जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि विकारों में आसक्त होता है, तैसे ही, कीट, पतंग, पक्षी आदि को भी होता परन्तु इतना भेद है कि जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता । संसारी सब हैं परन्तु वासना के अनुसार न्यून अधिक भासता है और दुःख का अनुभव स्थावर-जंगम को भी होता है । जब किसी स्थान में अग्नि लगती है और उसमें वृक्ष और पाषाण जलते हैं तब उनको भी दुःख होता है परन्तु सूक्ष्म-स्थूल का भेद है । जैसे और जीव के शस्त्र प्रहार किये से शरीर नष्ट होने का दुःख होता है, तैसे ही वृक्षादिक को भी होता है परन्तु घनसुषुप्ति, क्षीणसुषुप्ति और स्वप्न-जाग्रत् का भेद है । पर्वत पाषाण को सूक्ष्म दुःख होता है, वृक्ष को पाषाण से विशेष होता है परन्तु स्पष्ट मान और अपमान का दुःख नहीं होता, स्वप्न की नाईं

www.tantrik-astrologer.in

होता है । मनुष्य और देवताओं को स्पष्ट राग- द्वेष जाग्रत की नाईं होता है, क्योंकि वे जाग्रत् अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष, पाषाण आदिक को स्पष्ट दुःख का विकल्प नहीं उठता, क्योंकि वे जड़ता स्वभाव में स्थित हैं पर दुःख तो सबको होता है । और आश्चर्य देखो कि कीट महादुःखी रहते हैं, जब वे मृतक होते हैं तब सुखी होते हैं, अज्ञान से जो इस शरीर में अवस्था हुई है उसको भी मरना बुरा भासता है तो और जीव को भला कैसे न लगे । हे रामजी! अपने स्वरूप के प्रमाद से भय, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृषा, राग-द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छादिक विकारों की अग्नि से जीव जलते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और घड़ीयन्त्र की नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं । जब वासना दृढ़ पाप की होती हे तब जीव पाषाण और वृक्षयोनि पाते हैं और जब क्षीण वासना तामसी होती है तब तिर्यक पक्षी, सर्प और कीटयोनि पाते हैं । हे रामजी! राजसी वासना से जीव मनुष्य होते हैं और सात्विकी वासना से देवता होते हैं पर जब मनुष्य शरीर धारकर निर्वासनिक होते हैं तब मुक्ति पाते हैं । जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब जीवों के दुःख नष्ट हो जाते हैं, दुःख के नाश करने का और कोई उपाय नहीं । यह जगत् के दुःख तबतक भासते हैं जबतक आत्मज्ञान नहीं उपजा, जब आत्मज्ञान उपजता है तब जगत्भ्रम सब मिट जाता है । मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है, न मनुष्य है, न पशु है, न पक्षी है, न पाषाण है, न वृक्ष है और न कीट है, सब चिदाकाशरूप हैं दूसरा कुछ नहीं बना भ्रान्ति से नानास्वरूप हो भासता है और सदा सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मसत्ता आपमें स्थित है । हे रामजी! न कुछ जगत् का होना है, न अनहोना है, न आत्मा शब्द है, न परमात्मा शब्द है, न मौन है, न अमौन है, न शून्य है, न अशून्य है केवल अचेत चिन्मात्र अपने आप में स्थित है और उसमें जन्म और जन्मान्तर भ्रम से भासते हैं । जैसे स्वप्न से स्वप्नान्तर भ्रम से भासता है और जैसे स्वप्न में एक अपना आप होता है और निद्रादोष से द्वैत भासता है, तैसे ही अब भी आत्मा अद्वैत है पर अविचार से नानात्व भासता है । दुःख भी अज्ञान से भासता है विचार किये से दुःख कुछ नहीं । जो मृतक होकर उत्पन्न होता है तो शान्ति हुई दुःख कोई नहीं और जो मृतक होकर शान्त हो जाता है उपजता नहीं तो भी दुःख कोई नहीं मुक्त हुआ, जो मरता नहीं तो भी ज्यों हुआ दुःख कोई नहीं हुआ और जो सर्व चिदाकाश है तो भी दुःख कोई न हुआ । हे रामजी! अज्ञानी के निश्चय में दुःख है पर विचार किये से दुःख कोई नहीं । यह जगत् आत्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित है परन्तु यह जगत्‌रूपी कैसा प्रतिबिम्ब है- जो अकारणरूप है । इसका कारणरूप बिम्ब कोई नहीं कारण से रहित है । जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिम्ब पड़ता है सो अकारणरूप है, तैसे ही यह जगत् अकारणरूप है । अज्ञानी को प्रमाददोष से उसमें सत्यता है और ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता-अज्ञानी को द्वैत भासता है । हे रामजी! हमको! तो सदा चिदाकाश भासता है-हम जागे हुए हैं इससे द्वैत नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं भासता, तैसे ही हमको द्वैत नहीं भासता । जो ज्ञानी है उसको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता उसे सर्वब्रह्म ही भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्करणे परमार्थरूपवर्णनन्नाम द्विशताधिकनवमस्सर्गः ||209||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

नास्तिकवादी निराकरण

श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो कुछ तुमने कहा है सो तो मैंने जाना परन्तु नास्तिकवादी का कल्याण किस प्रकार होता है, क्योंकि वे कहते हैं कि जबतक जीव है तबतक सुख भोगे और जब मर जावेगा तब भस्मीभूत होवेगा, न कहीं आना है, न जाना है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मसत्ता आकाश की नाईं अखण्ड सर्वत्र पूर्ण है, जबतक उसका भान नहीं होता तबतक मन की तप्तता नहीं नष्ट होती। जब आत्मसत्ता का भान होता है तब शान्ति प्राप्त होती है और आपको अमर जानता है। जिस पुरुष ने अखण्ड निश्चय अंगीकार किया है उसको दुःख स्पर्श नहीं करता वह ब्रह्मदर्शी होता है और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ उसको मन के ताप नहीं छोड़ते और स्वरूप के प्रमाद से आपको मरता जानता है पर महाप्रलयरूप आत्मा में सर्व शब्दों का अभाव है। जैसे महा प्रलय में सर्व शब्दों का अभाव होता है, तैसे ही आत्मा में सर्व शब्दों का अभाव है जिसको आत्मा में निश्चय हुआ है उसको सर्व शब्दों का अभाव हो जाता है और वह महा ज्ञानवान् है उसको आत्मसत्ता ही भासती है। जो वास्तव है उसको हमारे उपदेश की आवश्य कता नहीं-वह ज्ञानी है। हे रामजी! आत्मसत्ता में द्वैत जगत् कुछ नहीं बना, पर मार्थ सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें जो सृष्टि भासती है सो स्वप्नवत् अकारण है इसलिये ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थों को सत् नहीं जानता है। ऐसा पुरुष हमारे उपदेश के योग्य नहीं, क्योंकि सर्वशास्त्रों का सिद्धान्त आत्मपद है,जो उसको जानता है उसको फिर कर्तव्य कुछ नहीं रहता। जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्त हुई वह उपदेश का अधिकारी है। यह जगत् आत्मा का किञ्चन है अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञानी के निश्चय में कुछ नहीं। जैसे किसी ने संकल्प से एक वृक्ष रचा हो तो उसके पत्र, टास, फूल, फल उसको भासते हैं पर और के मन में शून्य होते हैं, तैसे ही अज्ञानी के निश्चय में जगत् होता है और ज्ञानी के निश्चय में विलास और आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र और सर्वव्यापी है, उसमें जैसा निश्चय फुरना होता है तो अहंप्रत्यय भावना की दृढ़ता से तैसे ही भासता है। जिस पदार्थ का निरन्तर दृढ़ अभ्यास होता है तो शरीर के त्यागे से भी वही अभ्यास, धारणारूप हो जाता है पर आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है और केवल अद्वैत संवित् सबका अपना आप है। जिसको स्वरूप का ज्ञान होता है सो शास्त्रों के दण्ड से रहित होता है। वेद और शास्त्र जिसको भला, बुरा, सच वा झूठ वर्णन करते हैं उसमें जिस पुरुष को निश्चय होता है उसको वासना के अनुसार वे फल देते हैं और जिसके निश्चय में आत्मा से भिन्न सर्व शब्दों का अभाव होता है उसको आत्मा अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती, देह रहे अथवा न रहे। हे रामजी! जिसकी संवित् जगत् के शब्द अर्थ में बँधी हुई है उसको पदार्थों में राग-द्वेष उपजता है। जैसे सुषुप्ति में भी आत्म सत्ता है पर अभाव की नाईं स्थित है, तैसे नास्तिकवादी भी अपने जड़स्वरूप को देखते हैं, क्योंकि उनको जड़शून्यता का ही अभ्यास है और उसी से उनकी संवित् दृश्य सुख से बेधी हुई है इससे उनका जगत्ंभ्रम नहीं मिटता। उस मलीन वासना से जो संवित् मिली है इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं उस जड़ता को भोगकर वे वासना के अनुसार फिर दुःख भोगेंगे। उस भावना से जगत् नहीं भासता पर कुछ काल पीछे चैतन्य होकर फिर उन्हीं कर्मों को भोगते हैं। जैसे सूर्य के आगे बादल आवे और फिर निवृत्त हो, तैसे ही जगत् होता है। फुरनरूप जो जीव है उसमें जैसा निश्चय होता है तैसा ही भासता है। जिसको एक आत्मा में निश्चय होता है सो जन्म-मरण आदिक विकार से रहित होता है और जिसको नानास्वरूप जगत् निश्चय होता है सो जन्म-मरण से नहीं छूटता। हे रामजी! जिसकी

www.tantrik-astrologer.in

बुद्धि में पदार्थों का रंग चढ़ता है वह रागद्वेषरूपी नरक से मुक्त नहीं होता और जिसको एक आत्मा का अभ्यास होता है उसको अभ्यास के बल से सब जगत् आत्म त्व भासता है और वह राग-द्वेष से मुक्त होता है । जैसे स्वप्न में किसी को अपना जाग्रत्‌्स्वरूप स्मरण आता है तब वह स्वप्न के सर्वजगत् को अपना आप देखता है, तैसे ही जिसको आत्मज्ञान होता है उसको सर्वजगत् अपना आपही भासता है । सर्वदा काल आत्म सत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योति है, जिसको ऐसी आत्मसत्ता में नास्तिभावना होती है वह ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है कि गढ़े में कीट होता है, पाषाण, वृक्ष, पर्वत आदिक स्थावर योनि को प्राप्त होता है और उनमें चिरकाल पर्यन्त रहता है । जब तक बुद्धि को द्वैत का संयोग होता है तब तक वह जगत्भ्रम देखता है-और भ्रम नहीं मिटता पर जब उसकी संवित को द्वैत का संयोग मिट जावे तब जगत्‌्भ्रम निवृत्त हो जाता है । हे रामजी सम्यक्‌्ज्ञान से जगत् के भ्रम का अभाव हो जावेगा । अभाव का निश्चय फुरे तब फिर जगत् नहीं भासता और जब संसार के पदार्थों से संवित् बेधी हुई है तब जैसा निश्चय होगा तैसा ही प्राप्त होगा और उसी निश्चय के अनुसार गति पावेगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! नास्तिकवादी का वृत्तान्त तो तुमने कहा सो मैंने जाना पर जिस पुरूष के हृदय में जगत् की सत्यता स्थित है और जो आत्मबोध के मार्ग से शून्य है और शुद्ध स्वरूप को नहीं जानता उसके मोक्ष की क्या युक्ति है और उसकी क्या अवस्था होती है-मेरे बोध की दृढ़ता के निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसका उत्तर मैंने प्रथम ही तुमसे कहा है पर अब फिर तुमने जो पूछा है इससे फिर कहता हूँ । प्रथम तो पुरुष का अर्थ सुनो । हे रामजी! यह जगत् नेत्रों में स्थित नहीं है, न श्रवण में है और न नासिका आदि इन्द्रियों में स्थित है-चैतन्य संवित् में स्थित है । चैतन्य संवित् ही पुरुषरूप है , जिस पुरुष को उसमें निश्चय है सो ज्ञानवान है और उसको द्वैतकलना नहीं फुरती और जो प्रत्यक्षदृष्टि भी आती है परन्तु उसके निश्चय में नहीं होती है । जैसे आकाश में धूलि भी दृष्टि आती है परन्तु स्पर्श नहीं करती, तैसे ही ज्ञानवान् को द्वैत कलना स्पर्श नहीं करती । जिस चैतन्य संवित् में फुरने का सम्बन्ध है उसको जगत् का आकार भासता है और जिस पुरुष की संवित् में देश, काल, क्रिया और द्रव्य का सम्बन्ध है वह कलंक में दृढ़ हो रहा है और जो अपने वास्तव अद्वैत स्वरूप के अभ्यास से मार्जन नहीं करता वह वास्तव चैतन्य आकाशरूप भी है तो भी कलंक से वासना के अनुसार जगत् उसको आपसे भिन्न भासता है-द्वैतभ्रम है-द्वैतभ्रम नहीं मिटता । हे रामजी! जो पुरुष ऐसा भी है कि देह के इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में सम रहता है, पर उसे आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नहीं भासती तो वह अज्ञानी है, आत्म सत्ता जाने बिना उसका संसार निवृत्त नहीं होता । जब आत्मसत्ता का साक्षात्कार होगा तभी सब भ्रम निवृत्त होगा । हे रामजी! यह पुरुष न जीव है, न फुरन है और न शरीर के नाश होने से नाश होता है, यह केवल चिन्मात्रस्वरूप है पर वासना से भ्रम को देखता और शून्यवादी वृक्ष,पर्वत, जड़ादिक योनि पाते हैं । जो सदा अनुभव है उसको त्यागकर जो और को इष्ट मानते हैं वे मूर्ख हैं और उनको आत्मसुख नहीं प्राप्त होता । आत्मा के प्रमाद से अहं, त्वं, भीतर, बाहर आदिक शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्वशब्द आत्मरूप होजाता है जिन पुरुषों ने आत्म अनात्म को निर्णय करके नहीं देखा वे पुरुषों में नीच हैं और जिस पुरुष ने निर्णय करके आत्मा में अहं प्रतीति की है और अनात्म का त्याग किया है वह महापुरुष है और उसको मेरा नमस्कार है । जिसने अनात्म में अहं प्रतीति की है और आत्मा का त्याग किया है वह बालक है । जैसे आकाश में बादल ही हाथी और घोड़े के आकार हो भासते हैं और समुद्र में तरंग भासते हैं, तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है सो द्वैत कुछ नहीं । जैसे स्वप्न के नगर अपने-अपने अनुभव में स्थित होते हैं- और बाहर द्वैत की नाईं भासते हैं

www.tantrik-astrologer.in

सो आभाशमात्र हैं , तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है सो आभाशमात्र है-वास्तव में कुछ नहीं । जिसको आत्मसत्ता का अनुभव हुआ है उसको जगत् के शब्द-अर्थ और रागद्वेष किसी की कल्पना नहीं रहती और पुण्यपाप का फल उसको नहीं करता । हे रामजी! ज्ञानसंवित् का नाश कदाचित् नहीं होता इससे विश्व भी अनुभव रूप है । इस जगत् का निमित्तकारण और समवाय कारण कोई नहीं, क्योंकि अद्वैत है और जो तुम कहो कि प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्तकारण उपजते दीखते हैं, तो जैसे स्वप्न में कारण कार्य अनहोते भासते हैं तैसे ही यह भी जानो । प्रथम तो स्वप्न में ये बने हुए दृष्टि आते हैं और पीछे कारण से होते दृष्टि आते हैं, तैसे ही यह भी जानो केवल भ्रममात्र है । जैसे स्वप्नदृष्टि का जागे हुए से अभाव होता है, तैसे ही ज्ञान से इसका अभाव हो जाता है यह दीर्घकाल का स्वप्न है इससे जाग्रत कहाता है । जैसे स्वप्न की सृष्टि अपने आप होती है-और निद्रादोष से भिन्न भासती है, तैसे ही यह जगत् अपना आप है परन्तु अज्ञान से भिन्न भासता है । जाग्रत में ज्ञान से सब अपना आप भासता है इससे राग-द्वेष का अभाव हो जाता है । जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमा की चाँदनी में भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं- आत्मा ही जगत्रूप हो भासता है । हे रामजी! तुम अपने अनुभव में स्थित होकर देखो कि सर्व ब्रह्मरूप है जगत् कुछ नहीं भासता-सर्वात्मरूप है और मध्य है । जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होता है तैसे ही आत्मसत्ता फुरनेरूपी बादल से परमशुद्ध और शान्तरूप है और उसमें स्थित हुए से मान और मोह का अभाव हो जाता है, किसी पदार्थ की तृष्णा नहीं रहती और प्रारब्धवेग से जो कुछ आन प्राप्त होता है उसको भोगता है । वह आत्मदृष्टि से दुःख से रहित हुआ प्रत्यक्ष आचार करता है, उसको शास्त्र का दण्ड नहीं रहता और परमशान्तरूप विराजता है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नास्तिकवादीनिराकरणंनाम द्विशताधिकदशमस्सर्गः ||210||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

परमउपदेश वर्णन

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हूँ और दृष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी चिदाकाशरूप है । आत्मसत्ता ही त्रिपुटीरूप हो भासती है-दूसरी वस्तु कुछ नहीं । नास्तिकवादी जो कहते हैं कि परलोक कोई नहीं अर्थात् जो कहते हैं कि आत्म सत्ता कोई नहीं सो मूर्ख हैं । हे रामजी! जो अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक किससे सिद्ध हो? जिससे नास्तिकवाद भी सिद्ध होता है सो ही आत्मसत्ता है । जो इष्ट- अनिष्ट पदार्थ में रागद्वेष करते हैं और आत्मा का नाश कहते हैं सो महामूर्ख हैं । जैसे जाग्रत् के प्रमाद से स्वप्न में इष्ट अनिष्ट में राग-देष होता है और इष्ट को ग्रहण करता और अनिष्ट को त्यागता है और जागे से सब अपना ही स्वरूप भासता है और ग्रहण त्याग और राग-द्वेष किसी पदार्थ में नहीं रहता, तैसे ही आत्मा के अज्ञान से किसी पदार्थ में राग होता है और किसी में द्वेष होता है । जब आत्मज्ञान होता है तब सब अपना स्वरूप भासता है और राघद्वेष किसी में नहीं रहता । चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्त के शान्त हुए लय हो जाता है, इससे जगत् मन में स्थित है और वह मन आत्मा के अज्ञान से हुआ है । जब आत्मज्ञान होता है तब मनुष्य, देवता, हाथी, नाग आदिक स्थावर-जंगम सब आत्मरूप भासता है और रागद्वेष किसी में नहीं रहता । नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं सो ही नास्ति का साक्षी सिद्ध होता है । जिससे नास्ति भी सिद्ध होता है सो अस्ति आत्मपद है, उस अस्ति अनुभव के इतने नाम शास्त्र कार कहते हैं-सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म और अस्मि । एक कहते हैं कि शून्य ही रहता है और एक कहते हैं कि अस्ति पद रहता है । हे रामजी! ये सर्वसंज्ञा आत्मसत्ता ही की है, सो आत्मसत्ता अपना ही आप स्वरूप है । वही आत्मा मैं हूँ और ये अंग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको इष्ट पदार्थों से लेपन कीजिये अथवा चूर्ण करिये तो मुझको हर्ष और शोक कुछ नहीं । इनके बढ़ने से मैं बढ़ता नहीं और इनके नष्ट हुए मैं नष्ट होता । हे रामजी! तीन शब्द होते हैं कि `मैं जन्मा हूँ' `मैं जीता हूँ' और `मैं मरूँगा' । जो प्रथम न हो और उपजे उसको जन्म कहते हैं, मध्य में जीता कहते हैं और फिर नाश हो उसको मृतक कहते हैं, पर आत्मा , में तीनों विकार नहीं हैं । आत्मा उपजा भी नहीं क्योंकि आदि ही सिद्ध है, मृतक भी नहीं होता, क्योंकि अविनाशी है । चैतन्य आकाश सबका अधिष्ठान है और काल का भी अधिष्ठान है फिर उसका कैसे नाश हो? वह तो उदय-अस्त से रहित है! जिससे देश, काल, वस्तु और जगत् का किञ्चन होता है उससे आत्मा का नाश कैसे हो- इससे आत्मा अविनाशी है । हे रामजी! जिस वस्तु को देश, काल का परिच्छेद होता है उसका नाश भी होता है सो देश, काल और वस्तु तीनों आत्मा में कल्पित हैं । जैसे सूर्य की किरणों में जल कल्पित होता है, तैसे ही आत्मा में तीनों कल्पित हैं । कल्पित वस्तुओं से सत्य का नाश कैसे हो? इससे आत्मा अवि नाशी और अद्वैत है उसमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे शून्यस्थान में बैताल कल्पित होताहै, तैसे ही आत्मा में जगत् कल्पित है । उस अभावरूप जगत् में प्रमाद से एक का अभाव जानता है और एक का सद्भाव जानता है । जब इस निश्चय को त्यागकर मोक्ष हो तब शान्ति प्राप्त होगी । विचार करके देखिये तो इस संसार में दुःख कहीं नहीं । जो मरके फिर जन्म लेता है तो भी दुःख कहीं हुआ, क्योंकि शरीर जब वृद्ध होकर क्षीण हुआ तब उसको त्यागकर नव तनु को ग्रहण किया तो उत्साह हुआ, जो मृतक होकर फिर नहीं उपजता तो भी आनन्द हुआ क्योंकि जबतक जीता था तबतक ताप था । एक का भाव जानता था, एक को ग्रहण करता था और एक को त्याग करता था तिनसे तपता था । यदि छूटा तो बड़ा आनन्द हुआ और जो

www.tantrik-astrologer.in

सर्वचिदाकाशरूप है तो भी अपना आप आनन्दरूप है दुःख न हुआ । हे रामजी! एक प्रमाद से ही दुःख होता है और किसी प्रकार दुःख नहीं होता । यह सब जगत् आत्मरूप है और जो आत्मरूप है तो दुःख कैसे हो? जो तुमकहो कि मैं अपने कर्मों से डरता हूँ, जो परलोक में मुझको भय का कारण होंगे तो ऐसे जानो कि बुरे कर्म का दुःख यहाँ भी होता है और परलोक में भी होगा-इससे बुरे कर्म मत करो । मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूँ जिससे सर्व दुःख नष्ट हो जावें । वह उपाय यह है कि तुम जानो `मैं नहीं' अथवा ऐसे जानो कि `सर्व मैंही हूँ' और सर्व वासना त्यागकर आपको अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थित हो रहो । यह जगत् भी सब तुम्हारा स्वरूप है, जब कि ऐसे आत्मा को जानोगे तब शरीर के त्याग किये से भी कोई दुःख न रहेगा और शरीर के होते भी दुःख कहीं नहीं । यदि पूर्व शरीर को त्यागकर नूतन जन्म लिया तो भी आनन्द हुआ, परमशान्ति हुई और जो चिदाकाशरूप है तो भी परमआनन्द हुआ । हे रामजी सर्वप्रकार आनन्द है परन्तु भ्रान्ति से दुःख भासता है । जब स्वरूप का साक्षात्कार होगा तब सर्व जगत् ब्रह्मा नन्दस्वरूप भासेगा । हे रामजी! जिसको आत्मसत्ता का प्रकाश है सो पुरुष सदा आनन्द में मग्न रहता है और प्रकृत आचार को भी करता है परन्तु इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में स्वरूप से चलायमान कदाचित् नहीं होता । जैसे सुमेरु पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसे ही ज्ञानी इष्ट-अनिष्ट में चलायमान नहीं होता और परम गम्भीरता में रहता है । इससे जो कुछ आत्मा से भिन्न उत्थान होता है उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो रहो कि चिन्मात्रसत्ता शरत्काल के आकाशवत् निर्मल है । जब ऐसे स्वच्छ केवल और चिन्मात्र का अनुभव होगा तब जगत् द्वैतरूप होकर न भासेगा और व्यवहार में भी द्वैत न होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमउपदेशवर्णनं नाम द्विशताधिकैकादशस्सर्गः ||211||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

निर्वाण प्रकरण

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिन पुरुषों को आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है वह कैसे हो जाते हैं और उनका कैसा आचार होता है सो मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा और जैसे उनका निश्चय है सो सुनो । सबके साथ उनका मित्र भाव होता है, बल्कि पाषाण से भी मित्रभाव होता है । बन्धुओं को वे ऐसे जानते हैं जैसे वन के वृक्ष और पत्र होते हैं और स्त्री-पुत्रादिक के साथ वे ऐसे होते हैं जैसे वन के मृग के पुत्र से होते हैं । जैसे उनमें स्नेह नहीं होता, तैसे ही पुत्रा दिक में भी वे स्नेह नहीं करते और जैसे माता की पुत्र में दया होती है, तैसे ही वे सब पर दया करते हैं- और निश्चय में उदासीन रहते हैं । जैसे आकाश किसी से स्पर्श नहीं करता, तैसे ही वे किसी से स्पर्श नहीं करते और जो कुछ आपदा है वह उनको परमसुख है । जितने कुछ जगत् में रस हैं सो उनको विरस हो जाते हैं, न किसी में वैराग करते हैं और न किसी में द्वेष करते हैं । वे तृष्णा करते दृष्टि भी आते हैं परन्तु हृदय से जड़ और पत्थर की नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं परन्तु निश्चय में परमशून्य और मौन होते हैं अर्थात् सदा समाधि में स्थित होते हैं । ये सब क्रिया करते दृष्टि आते हैं सो इस प्रकार करते हैं कि सबको स्तुति करने योग्य हैं । वे यत्न से रहित सब क्रिया का आरम्भ करते भी हैं परन्तु निश्चय से सदा आपको अकर्ता मानते हैं । जो कुछ उन्हें प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है, उसको भोगते हैं और देशकाल क्रिया सबको अंगी कार करते हैं । जो परस्त्री आदिक अनिष्ट आ प्राप्त हों उनका त्याग भी करते हैं परन्तु निश्चय में सदा अकर्ता ज्यों के त्यों रहते हैं और सुख-दुःख की प्राप्ति में समबुद्धि रहते हैं । प्रकृत आचार में यथाशास्त्र बिचरते हैं परन्तु स्वरूप से कदा चित चलायमान नहीं होते । जैसे फूल के मारने से सुमेरु चलायमान नहीं होता । तैसे ही दुःख-सुख की प्राप्ति में वे चलायमान नहीं होते । वे सदा स्वभावमें स्थित रहते हैं और सुख-दुःख को भोगते भी दृष्टि आते हैं, पर उसके निश्चय में कुछ नहीं होता । जैसे स्फटिकमणि के सम्मुख कोई रंग रखिये तो उसमें भासता है परन्तु उसका रूप कुछ और नहीं हो जाता वह ज्यों की त्यों ही रहती हैं, तैसे ही सुख दुःख के भोग ज्ञानवान् में भी दृष्टि आते हैं परन्तु वह स्वरूप से कदाचित् चलायमान नहीं होता-चेष्टा वे अज्ञानी की नाईं करते हैं परन्तु निश्चय से परमसमाधि हैं । जैसे अज्ञानी को भविष्यत् का राग-द्रेष, सुख-दुःख कुछ नहीं होता, तैसे ही ज्ञानी को वर्तमान का राग- द्वेष नहीं होता और स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसे होती है । वह सबसे मित्रभाव रखता है, न उसमें कोई खेदवान् होता है और न वह किसी से खेदवान् होता है । जब उसको सुख प्राप्त होता है तब रागवान् दृष्टि आता है और दुःख की प्राप्ति में द्वेषवान् दृष्टि आता है परन्तु निश्चय से उसको हर्षशोक कुछ नहीं । जैसे नट स्वाँग लाता है और जैसे स्वाँग होता है तैसी ही चेष्टा करता है-राजा का स्वाँग हो अथवा दरिद्री का- परन्तु निश्चय उसे अपने स्वरूप में ही होता है, तैसे ही ज्ञानवान् में सुख-दुख दृष्टि आते हैं परन्तु निश्चय उसका आत्मस्वरूप में ही होता है और पुत्र, धन, बान्धव आदिक को बुद्बुदे की नाईं जानता है । जैसे जल में तरंग और बुद्बुदे होते हैं और फिर लीन भी हो जाते हैं परन्तु जल को कुछ राग-द्वेष नहीं होता, तैसे ही ज्ञानवान् को रागद्वेष कुछ नहीं होता । वह सब पर दया रखता है और पतित प्रवाह में जो सुख-दुःख आन प्राप्त होता है उसको भोगता है । जैसे वायु दुर्गन्ध-सुगन्ध को साथ ले जाती है, परन्तु उसको राग-द्वेष कुछ नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् को राग-द्वेष कुछ नहीं होता बाहर अज्ञानी की नाईं वह व्यवहार करता है परन्तु निश्चय में जगत् को भ्रान्तिमात्र जानता है अथवा सर्वब्रह्म जानता है । वह सदा स्वभाव में स्थित होता है और अनिच्छित

www.tantrik-astrologer.in

प्रारब्ध को भोगता है परन्तु जाग्रत में सुषुप्ति की नाईं स्थित है, पूर्व और भविष्यत् की चिन्तना नहीं करता और वर्तमान में बिचरता है-वह हृदय से शीतल रहता है और बाहर इष्ट अनिष्ट दृष्टि आते हैं पर हृदय से अद्वैतरूप से । ज्ञान वान् कर्म करता है परन्तु कर्म में अकर्म को जानता है और जीता ही मृतक की नाईं है । हे रामजी! जैसे मृतक होता है और उसको फिर जगत् की कलना नहीं फुरती, तैसे ही जिसको आत्मपद में अहंप्रत्यय हुई है उसको द्वैत नहीं भासता और प्रत्यक्ष व्यवहार उसमें दृष्टि भी आता है परन्तु निश्चय में अर्थ शान्त हो गया है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह ज्ञानी के लक्षण जो आपने कहे सो उनको वही जानें और कोई नहीं जानता, क्योंकि बाहर की चेष्टा तो अज्ञानी के तुल्य ही है और हृदय से शान्त रूप हैं । ब्रह्मचर्य से भी हृदय में धैर्य होता है और तपस्या से भी रागद्वेष कुछ नहीं फुरता । एक मिथ्या तपसी हैं कि उसी प्रकार बन बैठते हैं, उनका निश्चय सत्य है अथवा असत्य है उनको कैसे जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह निश्चय सत्य हो अथवा असत्य हो यह लक्षण सन्त के ही हैं और आत्मा के साक्षात्कार का निश्चय अपने आपसे जानता है और किसी से नहीं जाना जाता इस कारण उसका लक्षण ज्ञानी ही जानता है और कोई नहीं जानता । जैसे सर्प के खोज को सर्प ही जानता है और कोई नहीं जानता, तैसे ही ज्ञानी का लक्षण सुसंवेद्य है । हे रामजी! यह जो गुण कहे हैं सो ज्ञानवान् में स्वाभाविक ही रहते हैं और दूसरे को यत्नसाध्य है । ज्ञानवान् को सर्व जगत् भ्रान्तिमात्र है अथवा अनुभवदृष्टि से अपना आपही भासता है । इसी कारण से वह परम शान्त है और रागद्वेष उसके निश्चय में नहीं फुरता और न अपने निश्चय को बाहर प्रकट करता है पर जो अधिकारी है वह उसको जानता है और जो अनधिकारी अज्ञानी है वह उसको नहीं जान सकता । जैसे वन में चन्दन की बड़ी सुगन्ध होती है परन्तु दूर से नहीं भासती तैसे ही अज्ञानी उसके निश्चय से दूर है इस कारण वह नहीं जान सकता । चर्म दृष्टि से उसको देखे तो नहीं देख सकता और वह अधिकारी बिना जनावता भी नहीं । जैसे अमूल्य चिंतामणि नीच को दीजिये तो भी उसके माहात्म्य को वह नहीं जानता, इससे उसका निरादर करता है, तैसे ही आत्मरूपी चिन्तामणि और अनधिकारी अज्ञानी उसका माहात्म्य नहीं जानता इसका निरादर करता है- इसी कारण ज्ञानवान् प्रकट नहीं करते । हे रामजी! वह जो प्रकट है कि हमको अर्थ की प्राप्ति होगी, हमारा मान होगा, हमारे चेले बनेंगे और हमारी पूजा होगी उसे ज्ञानवान् गन्धर्वनगर और इन्द्रजाल की नाईं भासते हैं, फिर वे किसकी वाञ्छा करें? इस कारण वे अनधिकारी को अपना इष्ट नहीं प्रकट करते और जो कोई निकट बैठता है तो भी अपने निश्चयरूपी अंग को सकुचा लेते हैं । जैसे कछुआ अपने अंगों को सकुचा लेता है तैसे ही वह अपने निश्चयरूपी अंग को सकुचा लेता है पर जिसको अधिकारी देखता है उससे प्रकट करता है । हे रामजी! पात्र में रक्खा शोभता है, अपात्र में रक्खा अनिष्ट हो जाता है । जैसे गो को घास दिये से क्षीर हो जाता है और सर्प को क्षीर दिये से विष हो जाता है, तैसे ही अधिकारी को दिया उपदेश शुभ होता है और अनिधिकारी को अनिष्ट हो जाता है । हे रामजी! अणिमा आदि ले जो सिद्धियाँ हैं वे जप, द्रव्य, काल अथवा देश से सबको प्राप्त होती हैं और अभ्यास के बल से अज्ञानी को भी प्राप्त होती हैं और ज्ञानी को भी होती हैं परन्तु ये ज्ञान का फल नहीं, जप आदिक का फल है । जिसकी सिद्धि के निमित्त जो पुरुष दृढ़ होकर लगता है वही सिद्ध होता है, जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है तो उनसे आकाशमार्ग में उड़ने और आने-जाने लगता है पर यह पदार्थ तबतक रस देते हैं जबतक आत्ममार्ग से शून्य है । हे रामजी! पर सिद्धता इनसे प्राप्त होती । परमसिद्धि आत्मपद है । जिसको आत्मपद की प्राप्ति हुई है वह इनकी अभिलाषा नहीं करता । ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं और न आकाश में देवताओं के स्थानों में ही है जिसमें ज्ञानी का चित्त

www.tantrik-astrologer.in

मोहित हो, ज्ञानवान् को सब पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् भासते हैं, मेरे सिद्धान्त में तो यही है कि सदा विषयों से उपराम रहना और आत्मा को परम इष्ट जानना इसी का नाम ज्ञान है । ज्ञानी को जो प्रारब्ध से प्राप्त हो उसको करता है परन्तु करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करने में कुछ प्रत्यवाय भी नहीं होता । न किसी अर्थ का वह आश्रय करता है, न उसके निमित्त किसी भूत का आश्रय करता है और सर्वदा अपने आप स्वभाव में स्थित होता है । ऐसे निश्चय को पाकर वह आश्चर्यवान् होता है और कहता है कि बड़ा आश्चर्य है कि जो सदा अपना आप स्वरूप है उसको विस्मरण करके में इतने काल भ्रमता रहा पर अब मुझको शान्ति प्राप्ति हुई है जगत् को देख के वह हँसता है, क्योंकि यह जगत् आभासरूप है और अपनी ही संवित् में स्थित है । जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब स्थित होता है, तैसे ही अपनी संवित् में जगत् स्थित है । उसको जो द्वेत जानता है और रागद्वेष से जलता है ऐसे अज्ञानी को देख कर वह हँसता है और व्यवहार करता भी हँसता है । जैसे किसी ने स्वप्न में हाथ में सुवर्ण दिया और फिर ले लिया और इसने उसको स्वप्न जाना तो चेष्टा करता है परन्तु हँसता है और कहता है कि यह मेरा ही स्वरूप है, तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हँसता है । जैसे किसी ग्राम में अग्नि लगे और एक पुरुष उस गाँव से निकल कर पर्वत पर जा बैठे तब वह जलतों को देखकर हँसता है, तैसे ही ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी जलते नगर से निकल कर आत्मरूपी पर्वत पर जा बैठा है और अज्ञानियों को दग्ध होता देखकर हँसता है अर्थात् आप अशोच होकर उनको अशोच देखता है । हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टि से देखता है तब अद्वैतसत्ता भासती है और जब अन्तवाहक में स्थित होकर देखता है तब जैसे पदार्थ होते हैं तैसे ही उनको देखता है और आपको सदा शान्तरूप देखता है-अर्थ यह कि जो आत्मतत्त्व परमानन्द स्वरूप है उससे भिन्न जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं और सिद्धि से आदि लेकर जितनी क्रिया हैं वे संसार का कारण है जैसे समुद्र में कई तरंग बड़े और कई छोटे होते हैं परन्तु समुद्र ही में हैं जिस तरंग का आश्रय करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होवेगा और हलने, डोलने, करने से मुक्त होवेगा, तैसे ही सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं वे कहीं बड़े ऐश्वर्य हैं और कहीं छोटे ऐश्वर्य है परन्तु संसार ही में हैं जो पुरुष इस क्रिया को त्याग कर अन्तर्मुख होगा वह संसाररूपी समुद्र को त्यागकर आत्मरूपी पार को प्राप्त होगा । हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होता है उसको वही प्राप्त होता है । जैसे पाषाण को नित्यप्रति घिसते रहिये तो वह भी चूर्ण हो जाता है, तैसे ही जिस पदार्थ का अभ्यास करता है सो प्राप्त होता है । जिसको अभ्यास से आत्मपद प्राप्त होता है वह सर्वदा परम श्रेष्ठ हो जाता है, सब जगत् से ऊँचे विराजता है और परमदया की खानि होता है । जैसे मेघ समुद्र से जल लेकर वर्षा करते हैं सो जल का स्थान समुद्र ही होता है, तैसे हि जितने कुछ दया करते दृष्टि आते हैं सो ज्ञान के प्रसाद से ही करते हैं । सर्व दया का स्थान ज्ञानवान् ही है और ज्ञानवान् सबका हृदय है । जो कुछ प्रवाहपतित कार्य आन प्राप्त होता है उसको वह करता है और जो शरीर को दुःख आन प्राप्त होता है उसको ऐसे देखता है जैसे अन्य शरीर को होता है और अपने में सुख-दुःख दोनों का अभाव देखता है । जिनको यह अभ्यास नहीं हुआ वे शरीर के राग-द्वेष से जलते हैं और ज्ञानी को शान्तिमान् देखकर औरों को भी प्रसन्नता उपज आती है । जैसे पुण्य करके जो स्वर्ग को गया है उसको वहाँ इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं और कल्प वृक्ष की सुन्दरता मञ्जरियाँ और सुन्दर अप्सरा आदिक भासती हैं जिन पदार्थों को देख कर प्रसन्नता उपजती है तैसे ही ज्ञानवान् की संगति में जो पुरुष जाता है उसको प्रसन्नता उपज आती है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतलता उपजाता है, तैसे ही ज्ञानवान् की संगति शीतलता उपजाती है । ज्ञानवान् आत्मपद को पाकर आनन्दवान् होता है और वह

www.tantrikastrologer.in

कभी आनन्द दूर नहीं होता क्योंकि उसको उस आनन्द के आगे अष्टसिद्धियाँ तृण समान भासती हैं । हे रामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और जिन स्थानों में वे रहते हैं वह भी सुनो । कई तो एकान्त जा बैठते हैं, कई शुभस्थानों में रहते हैं, कई गृहस्थी ही में रहते हैं, कई अवधूत हुए सबको दुर्वचन कहते हैं, कई तपस्या करते हैं, कई परम ध्यान लगाके बैठते हैं, कई नंगे फिरते हैं, कई बैठे राज्य करते हैं, कई पण्डित होकर उपदेश करते हैं, कई परम मौन धारे हैं, कई पहाड़की कन्दराओं में जा बैठते हैं, कई ब्राह्मण हैं, कई सन्यासी हैं, कई अज्ञानी की नाईं बिचरते हैं, कई नीच पामर होते हैं और कई आकाश में उड़ते हैं और नाना प्रकार की क्रिया करते दृष्ट आते हैं परन्तु सदा अपने स्वरूप में स्थित हैं । हे रामजी! जिसको पुरुष कहते हैं सो देह और इन्द्रियाँ पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं पुरुष केवल चिदाकाशरूप है, वह न कुछ करता है और न किसी से उनका नाश होता है । जैसे नट स्वाँग ले आता है और सब चेष्टा करता है परन्तु नटभाव से आपको असंग देखता है, तैसे ही ज्ञानवान् व्यवहार भी करते हैं परन्तु आपको अकर्त्ता और असंग देखते हैं, और ऐसा निश्चय रखते हैं कि हम अछेद, अदाह, अक्लेद, अशोष, नित्य, सर्वगत, स्थित अचल और सनातन हैं । हे रामजी! इस प्रकार आत्मा में जिसको अहं प्रतीति हुई है उसका नाश कैसे हो और वह बन्धायमान कैसे हो? वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भ करे और चाहे जैसे स्थान में रहे उसको बन्धन कुछ नहीं होता । चाहे वह पाताल में चला जावे, आकाश में उड़ता फिरे अथवा देशान्तरों में भ्रमा फिरे उसको न कुछ अधिकता है और न कुछ शून्यता है । पहाड़ में चूर्ण हो जावे तो भी वह चूर्ण नहीं होता । यह तो चैतन्य पुरुष है शरीर के नाश हुए इनका नाश कैसे हो? ऐसे अपने स्वरूप में वह सदा स्थित है और आकाशवत् परम निर्मल, अजर, अमर और शिवपद है इससे हे रामजी! ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वरूप में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकद्वादशस्सर्गः ।।212।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सर्वपदार्थभाव वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक भावमात्र है, दूसरा भासमात्र और तीसरा भासितमात्र है भावमात्र केवल चैतन्यमात्र को कहते हैं, उसमें जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार का उत्थान हुआ उसका नाम भास है और उसमें जो जगत् हुआ उसका नाम भासित है । भासित कल्पित का नाम है । कल्पित के नाश हुए अधिष्ठान का नाश नहीं होता, जो अधिष्ठान कुछ और भाव हो तो उसका नाश भी होवे सो तो और कुछ बना नहीं । उसके फुरने से तीन संज्ञा हुई है सो फुरना भी उसी का किञ्चन है । आत्मा फुरने न फुरने में ज्यों का त्यों है । जैसे स्पन्द और निस्पन्द वायु एक ही है, तैसे ही बोध अबोध में आत्मा एकही है ।बोध, अबोध, फुरना, अफुरना एक रूप है । हे रामजी! वह आत्मा किससे और कैसे नाश हो? चैतन्य भी मरता हो तो इसका किञ्चन जगत् कैसे रहे? किञ्चन आभास को कहते हैं, सो आभास अधिष्ठान बिना नहीं होता इससे आत्मा का नाश नहीं होता और तुम जो चैतन्य को भी मरता मानो कि मरके फिर नहीं उपजता तो भी आनन्द हुआ । मेरा भी यही उपदेश है कि चैतन्यता मिटे । जब चैतन्यता उपजती है तब जगत् भासता है और उसके मिटे से आत्मा ही शेष रहेगा । ब्रह्म चैतन्य का तो नाश नहीं होता । जो तुम कहो कि वह चैतन्य नाश हो जाता है-यह और चैतन्य है जिससे जगत् होता है तो हे रामजी अनुभव तो एकही है उसका नाश कैसे मानिये? जैसे बरफ शीतल है चाहे किसी ठौर पान कीजिये वह सबकी शीतल ही है और अग्नि उष्ण ही है चाहे जिस ठौर से स्पर्श कीजिये उष्ण ही अनुभव होता है तैसे ही आत्मा का स्वरूप चैतन्य है । वह एक अखण्डरूप है और जहाँ कोई पदार्थ भासता है उसी चैतन्यता से प्रकाशता है । वह चैतन्यसत्ता स्वच्छ निर्मल और अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है; उसका नाश कैसे हो? जो तुम शरीर के नाश हुए आत्मा को नाश होता मानो तो नहीं बनता, क्योंकि शरीर यहाँ अखण्ड पड़ा है और वह परलोक में चेष्टा करता है और पिशाच आदिक का शरीर भी नहीं दृष्टि आता । जो शरीर बिना उसका अभाव होता हो तो उनका भी अभाव हो जाता इससे शरीर के अभाव हुए आत्मा का अभाव नहीं होता, क्योंकि शरीर के मृतक हुए कुछ चेष्टा शरीर से नहीं होती क्योंकि पुर्यष्टक जीवकला में नहीं! शरीर तो अखण्ड पड़ा है उससे कुछ नहीं होता और जीव परलोक में सुख दुःख भोगता है तो शरीर के नाश हुए नाश न हुआ । जो तुम कहो कि सब स्वभाव उसमें रहता है तो सर्वदा काल उसको क्यों नहीं देखते उसी समय आपको क्यों मृतक देखते हैं और बान्धव भाई जन सब उसी समय क्यों मृतक जानते हैं और जो तुम कहो कि जीवित धर्म से वेष्टित है इसी से सब अवस्था का अनुभव नहीं करता मृत्यु समय जब जीवत्वभाव नष्ट हो जाता है तब मृतक होता है जो ऐसे हो तो परलोक का अनुभव न करे तो ऐसा नहीं है क्योंकि जब शरीरपात होता है तब सब अवस्था को भी जानता है और परलोक में शब्द होता है उसका अनुभव करता है, अपने के अनुसार सुख दुःख भोगता है और देश स्थान को प्राप्त होता है । यह वार्त्ता शास्त्र से भी प्रसिद्ध है और अनुभव करके भी प्रसिद्ध है कि मृतक को किसी ने नहीं जाना और अभाव को किसी ने नहीं जाना और जिसने जाना वह आत्मा एक अखण्ड है-इससे हे रामजी! शरीर के नाश में आत्मा का नाश नहीं होता वह तो नित्य शुद्ध है और जैसा निश्चय उसमें होता है तैसा ही हो भासता है और जैसा मिलता है तैसा प्रकाशता है । ऐसा जो सत्य आत्मा है वह किसी में बन्धायमान नहीं होता जैसे रस्सी में सर्प आकार भासता है पर वह रस्सी सर्प तो नहीं हो जाती जब कल्पित सर्प का अभाव हो जाता है तब रस्सी ज्यों की त्यों रहती है, तैसे ही आत्मसत्ता आकार हो भासती है परन्तु आकार तो नहीं होती जब आकार का अभाव हो जाता है- तब आत्मसत्ता

www.tantrik-astrologer.in

ज्यों की त्यों रहती है इसी कारण बन्धायमान नहीं होती । ऐसी आत्मसत्ता में जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्र हैं और भ्रान्ति से ही लोग दुःख पाते हैं । हे रामजी! वह जगत् आभासमात्र हैं और उस आभासमात्र में जो राग द्वेष आदिक फुरते हैं उनकी निवृत्ति का उपाय मैं तुमसे कहता हूँ । जो कुछ उपदेश मैंने किया है उसके विचारने से भ्रान्ति निवृत्त हो जावेगी और आत्मपद की प्राप्ति होगी । अभ्यास बिना आत्मपद की प्राप्ति चाहे तो कदाचित् न होगी, जब बारम्बार अभ्यास करेगा तब द्वैतभ्रम मिट जावेगा और आत्मपद प्राप्त होगा । जिसका कोई नित्य अभ्यास करता है और उसका यत्न भी करता है सो प्राप्त होता है । वह कौन पदार्थ है जो अभ्यास से प्राप्त न हो जो थककर फिरे नहीं और दृढ़ अभ्यास करे तो प्राप्त होता ही है । राज्य की लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रण में दृढ़ होकर युद्ध करते हैं और जय होती है और केवल मुख से कहे कि मेरी जय हो तो नहीं होती, तैसेही आत्मपद भी तब प्राप्त होगा जब दृढ़ अभ्यास करोगे-अभ्यास बिना कहनेमात्र से प्राप्त नहीं होता । हे रामजी! इस मन के दो प्रवाह है एक जगत् का कारण है और दूसरा स्वरूप की प्राप्ति का कारण है । जो असत्यशास्त्र हैं और जिनमें आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा उनको त्यागो । यह जो महारामायण मोक्ष उपाय है उसमें चार वेद षट्शास्त्र और सर्व इतिहास और पुराणों का सिद्धान्त मैंने कहा है और इसके समान और न किसी ने कहा है न कोई कहेगा । ऐसा जो शास्त्र है इसके विचार में मन को लगावो तो शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होगे । हे रामजी! आत्मज्ञान वर और शाप की नाईं नहीं कि कहनेमात्र से सिद्ध हो, इसकी प्राप्ति तब होगी जब बारम्बार विचार करके दृढ़ अभ्यास करोगे और जब इसकी भावना होगी तब मुक्ति को प्राप्त होगे । ऐसा कल्याण पिता, माता और मित्र भी न करेंगे और तीर्थ आदिक सुकृत से भी न होगा जैसा कल्याण बारम्बार विचारने से मेरा उपदेश करेगा इससे और सब उपायों को त्यागकर इसी का विचार करो तो सब भ्रान्ति मिट जावेगी और शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी । हे रामजी! अज्ञानरूप विसूचिका रोग है और उसमें पड़ जीव जलते हैं । जो हमारे शास्त्र को विचारेगा उसका रोग नष्ट हो जावेगा । ईश्वर की यह महामाया है कि मिथ्या भ्रमसे जीव दुःखी होते हैं । जो अपना दुःख नाश करना चाहे वह मेरा शास्त्र बिचारे । जितने सुन्दर पदार्थ दृष्टि आते हैं वे सब मिथ्या हैं और उनके निमित्त यत्न करना परम आपदा है । यह सब पदार्थ आपातरमणीय हैं जो देखनेमात्र सुन्दर हैं पर भीतर से शून्य हैं । इनकी प्राप्ति में मूर्ख आनन्द मानते हैं । हे रामजी! यह पदार्थ तब तक सुन्दर भासते हैं जबतक मृत्यु नहीं आई, जब मृत्यु आवेगी तब सब क्रिया रह जावेंगी इसलिए इनके निमित्त जो यत्न करते हैं वे मूर्ख हैं । जिस काल में मृत्यु आती है उस काल कष्ट प्राप्त होता है और यदि चन्दन का लेप कीजिये तो भी शीतल नहीं होता । जिस द्रव्य के निमित्त जीव बड़े यत्न करता है, युद्ध करता है और प्राण त्यागता है सो धन स्थित नहीं रहता एक दिन धन और प्राणी का वियोग हो जाता है और जब वियोग होता है तब कष्ट पाता है । मैं ऐसा उपाय कहता हूँ जिसमें यत्न भी थोड़ा हो और सुगमता से आत्मपद प्राप्त हो । जब शास्त्र के अर्थ में दृढ़ अभ्यास होता है तब वह अजर, अमर पद प्राप्त होता है, इससे तुम बोधवान् हो और बोध करके अभ्यास का यत्न करो । जो यत्न न करोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु लातें मारेगा, यदि उस शत्रु को मारना हो तो निर्माण और निर्मोह होकर आत्मपद का अभ्यास करो । हे रामजी! जो पुरुष अबतक अज्ञानरूपी शत्रु के मारने और आत्मपद पाने का यत्न नहीं करते वे परम कष्ट पावेंगे और संसाररूपी दुःख से कदाचित् मुक्त न होंगे । इस कष्ट से निकलने का यही उपाय है कि महारामायण ब्रह्मविद्या का जो उपदेश है उसको विचार करके अपने हृदय में धारणा करें । इस उपाय से भ्रान्ति मिट जावेगी । यह महारामायण उपदेश सर्वसिद्धान्तो का सार है, और शास्त्रों से आत्मपद को प्राप्त हो अथवा न भी हो

www.tantrik-astrologer.in

परन्तु इसके विचार से अवश्य आत्मा को प्राप्त होगा । जैसे तिल की खली से तेल निकलना कठिन है और तिलों से तेल निकालिये तो निकलता है, तैसे ही मेरा उपदेश तिल की नाईं है और इतर खली की नाईं है । हे रामजी! सम्पूर्ण शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों का सार जो सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे कहा है । जो आत्मा सदा विद्यमान है उसको लोग भ्रान्ति से अविद्यमान जानते हैं इसलिए उसी के विद्यमान करने को सर्वशास्त्र प्रवर्त्तते हैं पर जो उसके विचार से आत्मपद को विद्यमान नहीं जानता वह मेरे उपदेश के विचारने से अवश्य आत्मपद को विद्यमान जानेगा यह निश्चय है । हे रामजी! और शास्त्रों के दृढ़ विचार और यत्न से जो सिद्धि होती है सो इस शास्त्र के विचार से सुख से ही प्राप्त होगी । शास्त्रकर्ता का और लक्षण न बिचारना पर शास्त्र की युक्ति विचार देखनी है । जो कुछ सर्व शास्त्र का सार सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे सुगममार्ग से कहा है ।इसके विचार से इसकी युक्ति देखो अज्ञानी जो कुछ मुझको कहते हैं और हँसते हैं सो मैं सबही जानता हूँ परन्तु मेरा जो दया का स्वभाव है इससे मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें और इसी कारण मैं उपदेश करता हूँ । हे रामजी! मैं जो तुमको उपदेश करता हूँ सो किसी अपने अर्थ के निमित्त नहीं करता कि मेरा कुछ अर्थ सिद्ध हो । जो कोई तुमको उपदेश करता है सो सुनो, तुम्हारा जो कोई बड़ा पुण्य है वही शुद्ध संवित् होकर मलीन संवित् को उपदेश करता है । वह संवित् न देवता है, न मनुष्य है, न यक्ष है, न राक्षस है और पिशाच आदिक भी नहीं है, केवल जो ज्ञानमात्र है सो तुमहीं हो, मैं भी वही हूँ और जगत् भी वही है और जो सर्व वही है तो वासना किसकी करनी है । हे रामजी! जीव को दुःख का कारण वासना ही है जो पुरुष इस संसार बन्धन के दुःख की चिकित्सा अब न करेगा वह आत्महत्यारा है और बड़े दुःख में जा पड़ेगा जहाँ से निकलने की सामर्थ्य न होगी इससे अबहीं उपाय करो । जबतक सर्वभाव की वासना निवृत्त नहीं होती तबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता-इसी का नाम बन्धन है । जब वासना क्षय होगी तब आत्मपद की प्राप्ति होगी । जितने पदार्थ भासते हैं वे सब अविचार सिद्ध हैं, विचार किये से कुछ नहीं रहते, और जो विचार किये से न रहें उनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है । जो वस्तु होती है उसके पाने का यत्न भी कीजिये तो बनता है और जो वस्तु हो ही नहीं उसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है । यह जगत् के पदार्थ असत्यरूप हैं । जैसे शशे के सींग असत् हैं और मरुस्थल की नदी असत् होती है तैसे ही यह जगत् असत् है । जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है वह जानता है कि यह जगत् शशे के सींगवत् असत् और भ्रान्तिमात्र है इसलिये इसके निमित्त यत्न करना मूर्खता है । जो पदार्थ कारण बिना दृष्टि आवे उसको भ्रान्तिमात्र जानिये । आत्मा जगत् का कारण नहीं इससे जगत् मिथ्या है । आत्मपद सब इन्द्रियों और मन से अतीत है और जगत् पाञ्चभौतिक है । जगत् मन और इन्द्रियों का विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियों का विषय नहीं तो उसे जगत् का कारण कैसे कहिये? जो अशब्दपद है सो नाना प्रकार शब्द का कारण कैसे हो और जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक नाना प्रकार के भूत आकारों का कारण कैसे हो? हे रामजी! जैसा कारण होता है उससे तैसा ही कार्य उपजता है, आत्मा निराकार है और जगत् साकार है इसलिये निराकार साकार का कारण कैसे हो? जैसे वट का बीज साकार होता है इसलिये उसका कार्य वट भी साकार होता है और साकार से निराकार कार्य तो नहीं होता, तैसे ही निराकार से साकार कार्य भी नहीं होता । इससे इस जगत् का कारण आत्मा नहीं और न समवाय कारण है, न निमित्त कारण है । निमित्त कारण तब होता है जब कुछ द्वितीय वस्तु होती है । जैसे मृत्तिका से कुलाल घट बनाता है । पर आत्मा तो अद्वैत है वह निमित्त कारण कैसे हो? और समवाय कारण भी तब होता है जब साकार वस्तु होती है-जैसे मृत्तिका परिणाम से घट होता है-पर आत्मा

www.tantrikastrologer.in

निराकार अपरिणामी है जगत् का कारण कैसे हो? दोनों कारणों से जो रहित भासे उसे जानिये कि भ्रान्तिमात्र है जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के आकार भासते हैं सो कारण बिना भासते हैं इसलिये वे भ्रान्तिमात्र हैं, तैसे ही यह जगत् भी कारण बिना भ्रान्तिमात्र भासता है । आत्मा में जगत् कदाचित् नहीं हुआ । जैसे प्रकाश में तम नहीं होता, तैसे ही आत्मा में जगत् नहीं । यदि तुम कहो कि तो फिर भासता क्या है सो उसी का किञ्चन भासता है जो वही रूप है जैसे चलती है तो भी वायु है और ठहरती है तो भी वायु है, चलने और ठहरने में कुछ भेद नहीं होता और जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं होता तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं-वही आत्मसत्ता फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है । जैसै जल और तरंग में कुछ भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और कुछ द्वैत वस्तु है नहीं जो लोग कहते हैं कि जगत् कर्मों से होता है सो असत्य है, क्योंकि कर्म भी बुद्धि से होते हैं सो आत्मा में बुद्धि ही नहीं तो कर्म कैसे हो और जो कर्म ही नहीं तो जगत् कैसे हो? जैसे शशे के सींग के धनुष से बाण चलाना असत्य है, तैसे ही कर्म से जगत् का होना असत्य है । एक कहते हैं कि सूक्ष्म परमाणु से जगत् हो जाता है पर यह भी असत्य है, क्योंकि जो सूक्ष्म परमाणु परिणाम से जगत्‌रूप हुए होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता पर यह तो बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्टि आती है । जो परमाणु से जगत् होता तो इनहीं से बड़ता जाता, क्योंकि जो परमाणु जड़ हैं वही बढ़ते हैं पर ऐसे तो नहीं होता बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्टि आती है, इसी से कहा है कि वे असत्य कहते हैं, क्योंकि सूक्ष्म भी किसी से उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई उसके रहने का स्थान भी चाहिये पर आत्मा में देश, काल और वस्तु तीनों कल्पित हैं । जो आत्मा में ये न हुए तो परमाणु कैसे हो और जगत् कैसे हो? आत्मा अद्वैत है इससे जगत् न उपजा है और न नष्ट होता है । जो जगत् उपजा होता तो नष्ट भी होता, जो उपजा ही नहीं तो वह नष्ट कैसे हो? आत्मसत्ता ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है । इससे हे रामजी! मैं, तुम और सब जगत् आकाशरूप है किसी के साथ आकार नहीं-सब निराकाररूप है । जो तुम कहो कि फिर बोलते-चालते क्यों हैं? तो जैसे स्वप्ने में सब आकाशरूप होते हैं पर नाना प्रकार की चेष्टा करते दृष्टि आते हैं और बोलते-चालते हैं, तैसे ही यह भी बोलते चालते हैं परन्तु आकाशरूप हैं । तुम्हारा जो स्वरूप है सो भी सुनो । देश को त्यागकर देशान्तर को जो संवित् जाता है उसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है वही तुम्हारा स्वरूप है । वह अनामय और सर्व दुःख से रहित है । जैसे जब जाग्रत् दशा को त्यागकर जीव स्वप्ने में जाता है तो जाग्रत् त्याग दिया हो और स्वप्ना न आया हो मध्य में जो अचेत चिन्मात्र सत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है, उसमें पण्डितों और ज्ञानवानों का निश्चय है और ब्रह्मा, विष्णु रुद्रादिक उसी में स्थित रहते हैं उनको कदाचित् उत्थान नहीं होता । जैसे बरफ से अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसे ही उनको स्वरूप से उत्थान कदाचित् नहीं होता । वह आत्मसत्ता न उपजती है, न विनशती है और न और की ओर होती है-सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित है । हे रामजी! जितना कुछ जगत् तुम देखते हो सो वास्तव में कुछ उपजा नहीं-भ्रम से भासता है । जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के आरम्भ होते दृष्टि आते हैं और जागे से उनका अत्यन्त अभाव भासता है, तैसे ही यह जगत् भी है । आदि जो अद्वैत तत्त्व में स्वप्ना हुआ है उसमें ब्रह्मा उपजे और उन्होंने आगे जगत् रचा सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं हुआ-सब असत्य रूप है । जैसे स्वप्न में नदी और पर्वत दृष्टि आते हैं परन्तु कुछ उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ही ज्यों की त्यों स्थित है, तैसे ही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त जगत् सब असत्यरूप है जिसको तुम ब्रह्मा कहते हो वह वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत् की उत्पत्ति मैं तुमसे कैसे कहूँ? जैसे मरुस्थल की नदी ही उपजी नहीं तो उसमें मछलियाँ कैसे कहिये? तैसे ही

www.tantrikastrologer.in

आदि ब्रह्मा नहीं उपजा तो उसमें जगत् कैसे उपजा कहिये? केवल आत्मा चैतन्यसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और यह जगत् भी वही रूप है परन्तु अज्ञान से विपर्ययरूप भासता है। जैसे स्वप्न में पुरुष अनुभवरूप होता है और अपने प्रमाद से नाना प्रकार के पदार्थ और पर्वत, जल, पृथ्वी, जन्म, मरणादिक विकार देखता है परन्तु हुआ कुछ नहीं आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों स्थित है और अज्ञान से भासते हैं, तैसे ही इस जगत् को भी जानो-आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं सब चिदाकाश रूप हैं और अज्ञान से आत्मसत्ता ही जगत्ूरूप हो भासती है। इससे हे रामजी। जिसके ज्ञान से निवृत्त हो जाता है ऐसे आत्मतत्त्व के पाने का यत्न करो। वह नित्य शुद्ध और परमानन्दस्वरूप है और सदा अपने स्वभाव में स्थित है और वही तुम्हारा अनुभवस्वरूप है जो सदा अनुभव करके प्रकाशता है और उसमें स्थित होने में क्या कायरता करनी है? हे रामजी! जितना प्रपञ्च है सो सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रान्तिमात्र है तैसे ही आत्मा में जगत् भ्रममात्र है इससे उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वपदार्थभाववर्णनं नाम त्रयदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ||213||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जाग्रत्‌स्वप्नैकताप्रतिपादन

वसिष्ठजी बोले! हे रामजी! जिस प्रकार यह जगत् आभास फुरा है और भासता है सो भी सुनो । आदि जो शुद्ध अचेत चिन्मात्र है उसमें जब चेतनता फुरती है तब वह वेदन होती है और उसमें शब्दतन्मात्रा होती है फिर उसमें आकाश उत्पन्न होता है और फिर स्पर्श की इच्छा होती है तब वायु उपजती है । जब आकाश में उत्थान होता है तब उस वायु और आकाश के संघर्षभाव से अग्नि उपजती है और जब अग्नि में उष्णस्वभाव होता है तब जल उत्पन्न होता है अर्थात् जब तेज की अधिकता होती है तब जल उत्पन्न हो आता है । जब स्वेदवत् जल बहुत इकट्ठा होता है तब उसमें पृथ्वी उत्पन्न होती है इस प्रकार आकाश और वायु से जल और पृथ्वी ये उत्पन्न होते हैं तब तत्त्वों से शरीर उपजते हैं और स्थावर जंगम और नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आता है सो सब पाञ्चभौतिक है और वास्तव में न पञ्चभूत हैं, न कोई उपजता है और न नष्ट होता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जैसे स्वप्न में नाना प्रकार का जगत् आरम्भ परिणाम सहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ता ही जगत् आरम्भ परिणाम सहित भासता है परन्तु वास्तव में कुछ उपजा नहीं आत्मसत्ता ही चित्त के फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है, तैसे ही यह जाग्रत् जगत् भी जानो । हे रामजी! यह जगत् सब अनुभवरूप है पर भ्रम करके आकारसहित भासता है और जब भली प्रकार विचार के देखिये- तब जगत्भ्रम मिट जाता है केवल चैतन्य आत्म तत्त्वमात्र शेष रहता है । जैसे निद्रा दोष से स्वप्ने में नाना प्रकार के क्षोभ भासते हैं और जब जागता है तब एक अपना आपही भासता है, तैसे ही आत्मसत्ता में जागे से अद्वैत ही अद्वैत भान होता है । हे राम जी! जो बोधसमय में द्वैत कुछ न भासे तो अबोध समय भी जानिये कि द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो बोध के समय सत्य भासे तो जानिये कि सर्वदाकाल यही सत्ता है । हे रामजी! यह निश्चय धारो कि जगत् कुछ वस्तु नहीं-जैसे आकाश में नीलता, किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है, तैसे ही आत्मा जगत् भासता है और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता । हे रामजी! अपनी कल्पना ही जीव को जगत्‌रूप हो भासती है और कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनी कल्पनारूप है परन्तु निद्रादोष से भिन्न हो भासती है और उसमें राग-द्वेष उपजता है पर जागे से सब क्षोभ मिट जाते हैं, तैसे ही अज्ञान से जगत् सत्य भासता है और उसमें रागद्वेष भासते हैं-ज्ञान से सब शान्त हो जाते हैं । हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है, ज्ञानवान् के निश्चय में सब चिदाकाश है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् है । यदि बड़े क्षोभ प्राप्त हों तो भी ज्ञानवान् को चला नहीं सकते क्योंकि उसके निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता, वह सदा एकरस रहता है यदि प्रलयकाल के मेघ गर्जे, समुद्र उछलें और पहाड़ के ऊपर पहाड़ पड़े, ऐसे भयानक शब्द हों तो भी ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैत नहीं फुरता ।जैसे कोई पुरुष सोया पड़ा हो तो उसके स्वप्न में बड़े क्षोभ होते हैं और जाग्रत् निकट बैठे भी नहीं भासते, तैसे ही ज्ञानवान् के निश्चय में द्वैत कुछ नहीं भासता, क्योंकि है नहीं और अज्ञानी को होते भासते हैं । जैसे बन्ध्या स्त्री स्वप्ने में अपने पुत्र को देखती है सो अनहोता भ्रम से उसको भासता है तैसे ही अज्ञानी को अनहोता जगत् सत्य होकर भासता है । हे रामजी! भ्रम से अनहोता जगत् भासता है और होते का अभाव भासता है । जैसे बन्ध्या अनहोते पुत्र को देखती है और पुत्रवाली स्वप्न में पुत्र का अभाव देखती है, तैसे ही अज्ञान से अनहोता जगत् सत् भासता है- और सदा अनुभवरूप आत्मा का अभाव भासता है सो भ्रम से ही और का और भासता है । जैसे दिन में सोया हुआ स्वप्ने में रात्रि देखता है और रात्रि को सोया हुआ स्वप्ने में दिन देखता है,

www.tantrik-astrologer.in

शून्यस्थान में नाना प्रकार के व्यवहार और अन्धकार में प्रकाश देखता है सो भ्रम से ही देखता है और पृथ्वी पर सोया है और स्वप्ने में आकाश पर दौड़ता फिरता है और आपको गढ़े में गिरता देखता है सो भी भ्रम से ही भासता है, तैसे ही यह जगत् को विपर्ययरूप भ्रम से ही देखता है । जाग्रत् और स्वप्न में कुछ भेद नहीं, जैसे स्वप्ने में मुये भी बोलते चालते दृष्टि आते हैं । हे रामजी! जैसे स्वप्ने में तुमको नाना प्रकार का जगत् भासता है और जागकर कहते हो तब भ्रममात्र था, तैसे ही हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासा है । जैसे जल और तरंग में कुछ भेद नहीं, तैसे ही जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं । जैसे दो मनुष्य एक ही से होते हैं और दो सूर्य हों तो उनमें कुछ भेद नहीं होता, तैसे ही जाग्रत और स्वप्ने में कुछ भेद न जानना । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्वप्ने की प्रतिभा अल्पमात्र भासती है और शीघ्र ही जागकर कहता है कि भ्रममात्र थी और जाग्रत दृढ़ होकर भासती है पर तुम दोनों को समान कैसे कहते हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रतिभा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है सो जाग्रत् कहाती है और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और चित्त में स्मृति होती है वह स्वप्ना है । वह जाग्रत और स्वप्ना दो प्रकार का है जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है वह जाग्रत् है और उसमें जब सो गया तब स्वप्ना हुआ उस स्वप्ने में जगत् भासि आया तो जहाँ जगत् भासि आया वही उसकी जाग्रत हो गई और जहाँ से सोया था वह स्वप्ना हो गया । वहाँ जो स्वप्ना भासित हुआ उसको जाग्रत जानों और लोगों से चेष्टा करने लगा जब वहाँ से मृतक हो गया फिर उसमें आया तो पिछले को स्वप्ना जानने लगा तो चित्त के भ्रम से स्वप्ने को जाग्रत देखा और जाग्रत् को स्वप्ना देखा । हे रामजी! यह क्या हुआ? जैसे किसी को स्वप्ना आया और उसमें अपनी चेष्टा और व्यवहार करने लगा और फिर उसमें स्वप्ना हुआ उस स्वप्नान्तर से जागा फिर उस स्वप्ने में आया तो उसको स्वप्ना जानने लगा और उस स्वप्ने को जाग्रत् जानने लगा । हे रामजी! जैसे वह स्वप्नान्तर से जागकर उसको स्वप्ना कहता है और स्वप्ने को जाग्रत् कहता है, तैसे ही यहाँ जाग्रत् स्वप्नारूप है और आगे जो होता है वह स्वप्नान्तर है । एक और प्रकार है कि जो इस जाग्रत् में मृतक हुआ शरीर छूट गया तब परलोक देखता है सो परलोक जाग्रत् हो गया और इस जाग्रत् को स्वप्ना जानने लगा । जैसे स्वप्न से जागा स्वप्ने को भ्रम कहता है, तैसे ही इस जाग्रत् को परलोक में भ्रम जानता है । फिर परलोक में स्वप्ना आया तब परलोक की जाग्रत् स्वप्नवत् हो गई और जो स्वप्ने में सृष्टि भासी उसको जाग्रत् जानता है । फिर वहाँ से मृतक होकर यहाँ आया तब यह जाग्रत् हो गई और परलोक स्वप्ना हो गया । इससे हे रामजी! स्वप्ना और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं । जब मूर्ख स्वप्ने से जागते हैं तब वे जानते कि इसका नाम जागना है और इसको जाग्रत् मानते हैं और उसको स्वप्ना जानते हैं । पर वास्तव में वह स्वप्नान्तर है और यह स्वप्ना है । इसमें जो तीव्रसंवेग हो रहा है इससे उसको जाग्रत जानते हैं और उसको स्वप्ना जानते हैं पर दोनों तुल्य हैं कुछ भेद नहीं । आत्मा में दोनों असत्यरूपी हैं और इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है । आत्मा न कदाचित् उपजता है, न मरता है और उपजता भी है और मरता भी है । उपजता इस कारण से नहीं कि पूर्व सिद्ध है और मरता इस कारण नहीं कि भविष्यत्काल में भी सिद्ध है । परलोक में सुख-दुःख भोगता है और भ्रमकाल में जन्मता भी है और मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है पर वास्तव में ज्यों का त्यों है । हे रामजी! यह जगत् उसका आभास है और चैत्य का चमत्कार चैतन्य होकर भासता है । जैसे घट मृत्तिकारूप है-मृत्तिका से भिन्न नहीं, तै से ही चेतन भी चैतन्यरूप है । चैतन्य से भिन्न जगत् नहीं-स्थावर-जंगम जगत् सब चिन्मात्र है । हे रामजी! जैसे तुमको स्वप्ना आता है और उसमें पत्थर और पहाड़ भासते है सो तुम्हारा ही अनुभवरूप है भिन्न तो नहीं तैसे ही यह

www.tantrikastrologer.in

दृश्य सब चिन्मात्र रूप है । जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं , तैसे ही जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं । जैसे काष्ठ के पात्र काष्ठ से भिन्न नहीं सब काष्ठ ही रूप हैं तैसे ही चैतन्यरूप है चैतन्य से भिन्न नहीं । जैसे पाषाण की मूर्ति पाषाणरूप है, तैसे ही जगत् भी चैतन्य रूप है जैसे समुद्र ही तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही चैतन्यरूप हो भासता है जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसे ही चैत्यचैतन्यरूप है जैसे वायु स्पन्दरूप है तैसे चैतन्य चैत्यरूप है जैसे वायु निस्स्पन्दरूप है तैसे चैतन्य चैत्यरूप है, जैसे पृथ्वी घन रूप होती है और आकाश शून्यरूप होता है- जहाँ शून्यता है वहाँ आकाश है-तैसे ही जहाँ चैतन्य है । जैसे स्वप्न में शुद्ध संवित् पहाड़ और नदियाँ रूप हो भासती हैं, तैसे ही चिन्मात्रसत्ता जगत्ूप हो भासती है । हे रामजी! जो कुछ पदार्थ तुमको भासते हैं उनका त्याग कर आत्मा की ओर देखो । यह सब विश्व आत्मरूप है शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाश से भी निर्मल है, ऐसे जानकर उसमें स्थित हो । हे रामजी! जब तुमको स्वभावसत्ता का अनुभव साक्षात्कार होगा तब सर्वद्वैतकलना जो भासती है सो शान्त हो जावेगी और केवल आत्मतत्त्वमात्र शेष रहेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनंनाम चतुर्दशाधिकद्विशततमस्सर्गः ||214||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जगन्निर्वाण वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! चिदाकाश कैसा है जिसको तुम परब्रह्म कहते हो और उसका क्या रूप है? तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को पानकरता मैं तृप्त नहीं होता इससे कृपा करके कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एक माता के गर्भ से दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं और उनका एकसा आकार होता है पर जगत् के व्यवहार के निमित्त उनका नाम भिन्न-भिन्न होता है और भेद कुछ नहीं और जैसे दो पात्रों में जल रखिये तो जल एक ही है और पात्रों के नाम भिन्न-भिन्न होते हैं तैसे ही स्वप्न और जाग्रत् दो नाम हैं परन्तु एक ही से हैं पर आत्मा में दोनों कल्पित हैं और जिसमें दोनों कल्पित हैं सो चिदाकाश है । वृत्ति जो फुरती है और देशदेशान्तर को जाती है उसके मध्य में जो संवित् ज्ञानरूप है कि जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है सो चिदाकाश संवित् है और वृक्ष जो रस को खैंचकर ऊर्ध्व को जाते हैं सो उसी के आश्रय जाते हैं- ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाशरूप है । हे रामजी! जैसे सर्ववृक्ष फूल, फल, टास आदि सहित रस के आश्रय फुरते हैं, तैसे ही यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय फुरता है और उसी के आश्रय वृत्ति फुरती है-ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है । जिसकी इच्छा सब निवृत्त हो गई है और रागद्वेषरूपी मल शरत्‌काल के आकाशवत् निवृत्त हो गया है और शुद्ध संवित् है उसको चिदाकाश जानो । हे रामजी! जगत् का जब अन्त हुआ पर जड़ता नहीं आई उसके मध्य जो अद्वैत सत्ता सो चिदाकाश है, बेल, फूल, फल, गुच्छे और वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं सो चिदाकाश है और रूप, अवलोक, मनस्कार इन तीनों का जहाँ अभाव है-ऐसी जो शुभसंवित् है-वह चिदाकाश है पृथ्वी, पर्वत और नदियाँ सबका जो आश्रय है सो चिदाकाश है और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, ये तीनों जिससे उपजे हैं फिर जिनमें लीन होते हैं ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है सो चिदाकाश है । जिससे सब उपजते हैं, जो यह सब है और जिसमें सब हैं ऐसा सर्वात्मा चिदाकाश है और अर्द्धरात्रि को जो उठता है और इन्द्रियों की चपलता का विषय से अभाव होता है और उस काल में अफुरसत्ता होती है सो चिदाकाश है । जिस संवित् में स्वप्ने की सृष्टि फुरती है और जाग्रत् भासती है और दोनों के करनेवाले में शोभता है सो चिदाकाश है । जैसा फुरना होता है, तैसा ही जगत् में भासता है और वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं, आत्मरूपी सूत्र में असत्य-सत्य जगत्‌रूपी मणि पिरोये हुए हैं ।जिसके आश्रय इनका फुरना होता है वह चिदाकाश है । हे रामजी! जिसके आश्रय एक निमेष में जगत् उपजता है और उन्मेष में लीन हो जाता है, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है उसको चिदाकाश जानो । यह सब जगत् मिथ्या है और भ्रान्ति से भासता है जैसे मरुस्थल की नहीं भासती है । इनसे जो रहित है और जिसमें संकल्प-विकल्प का क्षोभ नहीं और सदा अपने आपमें स्थित और दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है वही चिदाकाश है । हे रामजी! नेति नेति से जो पीछे अनाद्यपद शेष रहता है उसको तुम चिदाकाश जानो । शुद्ध चैतन्य आत्मसत्ता सबका अपना आप और सबका अनुभवरूप होकर प्रकाशता है उसमें जैसा फुरना होता है कि ये ऐसे हैं तैसा ही हो भासता है सो चिदाकाश रूप है । इससे शुद्ध आत्मसत्ता ही फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है । जैसे जाग्रत् के अन्त में अद्वैतसत्ता होती है और फिर उससे स्वप्न की सृष्टि भासि आती है पर स्वप्ने की सृष्टि वास्तव कुछ नहीं उपजी वही अनुभव स्वप्न की सृष्टि हो भासता है, तैसे ही यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टि आता है सो अविद्या से भासता है वास्तव में कुछ उपजा नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अकारण भासती है तैसे ही यह सृष्टि अकारण है । ब्रह्मा से आदि चींटीपर्यन्त सब स्थावर -जंगमरूप जगत् चिदाकाशरूप है कुछ उत्पन्न नहीं हुआ और जो दूसरा कुछ न हुआ तो कारण-कार्य भी

www.tantrik-astrologer.in

कुछ न हुआ । हे रामजी! न कोई द्दष्टा है, न कोई द्दश्य है, न भोक्ता है और न भोग है सब कल्पनामात्र है । आत्मा के अज्ञान से कल्पता उठती है और आत्मज्ञान से लीन हो जाती है- जैसे समुद्र के जाने से तरंग-कल्पना मिट जाती है, क्योंकि अनुभव आत्मा में कारण-कार्य कुछ नहीं हुआ । जो तुम कहो कि कारण-कार्य क्यों भासते हैं तो जैसे इन्द्रजाल की बाजी में नाना प्रकार के पदार्थ द्दष्टि आते हैं परन्तु वास्तव कुछ नहीं बने, तैसे ही यह जगत् कारण-कार्य कुछ बना नहीं । जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव ही नगररूप हो भासता है, तैसे ही यह जगत् भासता है । हे रामजी! आत्मसत्ता ही फुरने से जगत् की नाईं भासती है । जिस जगत् को इदम् रुफ कहते हैं वह अहंरूप है, जिसको समुद्र कहते हैं वह भी अहंकाररूप हैं, जिसको रुद्र कहते है वह अपना ही अनुभवरूप है इत्यादिक जो सब जगत् भासता है सो भावनामात्र है । जैसी जिसकी भावना द्दढ़ होती है तैसा ही रूप होकर भासता है । जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु में जैसी भावना होती है, तैसा ही सिद्ध होता है, तैसे ही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसी ही हो भासती है । इससे जब चिदाकाश का निश्चय द्दढ़ होता है तब अज्ञान से जो विरुद्ध भावना हुई थी सो निवृत्त हो जाती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे जगन्निर्वाणवर्णनंनाम पञ्चदशाधिक द्विशततमस्सर्गः ||215||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

कारणकार्याभाव वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मन थोड़ा भी फुरता है तब यह जगत् उत्पन्न हो जाता है जब जब फुरने से रहित होता है तब जगत् भावना मिट जाती है इस प्रकार जो ज्ञानवान् है, वह पुरुष इन्द्रियों से देखता, सुनता, ग्रहण करता भी निर्वासनिक हो जाता है और जगत् की ओर से घनसुषुप्त होता है । हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक और शान्त हुआ है वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी पाषाणवत् मौन हो जाता है-इससे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ । जैसे मृगतृष्णा की नदी अनहोती भासती है और भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसे ही मन के भ्रम से आत्मा में जगत् भासता है, आदिकारण से कुछ नहीं उत्पन्न हुआ । जिसका आदिकारण न पाइये वह कारण भी असत्य जानिये इससे सब जगत् कारण बिना ही भासता है उपजा कुछ नहीं! हे रामजी! जो पदार्थ कारण बिना भासता है और वह अधिष्ठान में भासित होता है उसको भी वही रूप जानिये और जो अधिष्ठान से व्यतिरेक भासे उसे भ्रममात्र जानिये । जैसे स्वप्ने में इन्द्रियादिक पदार्थ भासते हैं और उसमें दृश्य दर्शन सब मिथ्या हैं हुआ कुछ नहीं, तैसे ही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है, न कुछ उपजा है, न स्थित हुआ है, न आगे होना है और न नाश होता है । जो उपजा ही नहीं तो नाश कैसे हो? न कोई दृष्टा है, दर्शन है, और न दृश्य है, केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है । रामजी ने पूछा हे भगवन् यह दृष्टा, दर्शन और दृश्य क्या है और कैसे भासता है? यह आगे भी कहा है और अब फिर भी कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह दृश्य सब अदृश्यरूप है, अकारण ही दृश्य हो भासता है और दृष्टा, दर्शन, दृश्य जो कुछ जगत् विस्तार सहित भासता है सो आदिस्वरूप है । जैसे स्वप्ने में आकाश का वन भासे और और पदार्थ भासे सो सब चिदाकाशरूप हैं तैसे ही यह जगत् भी चिन्मात्र रूप है कारण कार्यभाव कहीं नहीं जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब भासती है और निस्पन्द हुए नहीं भासती, तैसे ही आत्मा में जब चित्त फुरता है तब आत्मसत्ता जगत्ूरूप हो भासती है सो वही आत्मसत्ता भाव में अभावरूप है । जैसे आकाश में शून्यता है, तैसे ही आत्मा में जगत् आत्मरूप है इससे जो कुछ भासता है सो चैतन्य का आभास प्रकाश है और परमार्थसत्ता केवल अपने आपमें स्थित है । इससे इतर कहिये तो न दृष्टा है और न दृश्य है आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों है । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण, ब्रह्म के वेत्ता जो इसी प्रकार है तो कारण-कार्य का भेद कैसे होता दीखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसा-जैसा फुरना उसमें होता है तैसा ही तैसा रूप हो भासता है चैतन्य आकाश ही जगत्ूरूप हो भासता है और कहीं न कारण है, न कार्य है । जैसे स्वप्न सृष्टि कारण-कार्यसहित भासती है सो किसी कारण से नहीं उपजी अकारणरूप है, तैसे ही यह सृष्टि किसी कारण से नहीं उपजती अकारणरूप है । न कहीं कर्त्ता है और न भोक्ता है केवल भ्रम से कर्त्ता-भोक्ता भासता है और स्वप्ने की नाईं विकल्प उठते हैं-वास्तव में ब्रह्मसत्ता ही है । हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नगर और जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभवसत्ता ही ऐसे हो भासती है-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह जगत् सम्पूर्ण चिदाकाश है । जब ऐसे जानोगे तब जगत् भी ब्रह्मतत्त्व भासेगा । हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से उपजा है । जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसे ही चित्तभ्रम से जगत् को कल्पता है पर इसका कारण ब्रह्म ही है और कारण कहीं नहीं, क्योंकि महाप्रलय में चिदाकाश ही रहता है सो कारण किसका हो? वही सत्ता इन्द्र, रुद्र, नदियाँ, पर्वत आदि जगत् हो भासता है और उससे भिन्न द्वैतरूप कुछ नहीं । इसमें जैसा-जैसा फुरना होता है तैसा ही रूप भासता है । जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में जैसी

www.tantrik-astrologer.in

भावना होती है तैसा ही रूप भासता है, तैसे ही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसा ही पदार्थरूप हो भासता है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कारणकार्याभाववर्णनंनाम षोडशाधिकद्विशततमस्सर्गः ||216||

अनुक्रम

भावप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अचेत चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है सो ही जगत्‌रूप हो भासती है । शुद्धचिन्मात्र में जब अहंफुरना होता है- तब जगत् हो भासता है । यही अहंरूप जीव है जगत् में जीवता दृष्टि आता है परन्तु मृतक की नाईं स्थित है और तुम, मैं आदिक सब जगत् जीवता बोलता, चलता और व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थित है । आत्मरूपी रत्न का जगत्‌रूपी चमत्कार है और वह प्रकाश आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश में तरुवरे, मरुस्थल में जल और धुयें के पर्वत मेघ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है तैसे ही यह जगत्‌लक्षण भी भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं अवस्तु है-उपजा कुछ नहीं । हे रामजी! चित्त रूपी बालक ने जगत् जालरूपी सेना रची है सो असत्य है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक भूत भ्रान्तिमात्र हैं और उनमें सत्य प्रतीति करनी मूर्खता है । बालक की कल्पना में सत्य प्रतीति बालक ही करते हैं और जो इस जगत् का आश्रय करके सुख की इच्छा करते हैं वे मानो आकाश के धोने का यत्न करते हैं और उनका सर्व यत्न व्यर्थ है यह सब जगत् भ्रान्तिरूप है, इसमें जो आस्था करके इसके पदार्थ पाने का यत्न करते हैं सो जैसे बंध्या स्त्री पुत्र पाने का यत्न करे सो व्यर्थ है, तैसे ही जगत् में जो सुख के पाने का यत्न करते हैं सो व्यर्थ है । हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो सम्पूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र हैं और जो भ्रान्तिमात्र हैं तो इनकी उत्पत्ति किससे और कैसे कहिये? जो मूर्ख बालक हैं उनको पृथ्वी आदिक जगत् पदार्थ सत्य भासते हैं ज्ञानवान् को ये सत्य नहीं भासते और अज्ञानी को सत्य भासते हैं पर उनसे हमको क्या प्रयोजन है? जैसे सोये को स्वप्ने में आत्म अनुभवसत्ता ही पृथ्वी, पहाड़ और नदियाँ जगत् हो भासता है पर वे सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं तैसे ही यह जगत् आकारसहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं निराकार सत्ता ही जगत्‌रूप हो भासती है और यह जगत् निराकार ही है पर और कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावप्रतिपादनन्नाम सप्तदशाधिकद्विशततमस्सर्गः ||217||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विपश्चित्‌समुद्रप्राप्तिर्नाम

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि जगत् अविद्यमान है पर अज्ञान से स्वप्ने की नाईं सत्य भासता है इससे विद्यमान भी है और जैसे स्वप्ने का नग शून्यरूप है तैसे ही यह जगत् अज्ञानरूप है सो अज्ञान क्या है और कितने काल की अविद्या हुई है, किसको है और इसका प्रमाण क्या है सो कहिए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी । जो कुछ तुमको जगत् दृष्टि आता है सो सब अविद्या है । वह अविद्या अनन्त है और देश और काल से इसका अन्त कदाचित् नहीं होता । जिसको अपने वास्तव स्वरूप का अज्ञान है उसको सत् दिखाई देती है इस पर एक इतिहास है सुनिये । हे रामजी! आत्मरूप चिदाकाश के अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं, उनमें से एक ब्रह्माण्ड इसी का सा है और उस ब्रह्माण्ड के जगत् में तुरंत नाम एक देश है जिसका राजा विपश्चित् था । वह एकसमय अपनी सभा में बैठा था और उसके चारों दिशा में उसकी बड़ी तेजवान् सेना उपस्थित थी । वह अग्नि देवता के सिवा और किसी देवता को न पूजता था और बड़ी लक्ष्मी से शोभित और बहुत गुणों और ऐश्वर्य से सम्पन्न था । एक काल में वह सभा में बैठा था कि पूर्व दिशा की ओर से हरकारा आया और उसने कहा, हे भगवन्! तुम्हारा जो पूर्व दिशा का मण्डलेश्वर था वह जरा से मृतक होके मानों यम को जीतने गया है इससे पूर्व दिशा की रक्षा करो, क्योंकि वहाँ और मण्डलेश्वर आता है । हे रामजी! इस प्रकार वह कहता ही था कि दूसरा हरकारा पश्चिम से आया और कहने लगा कि हे भगवन्! तुमने जो पश्चिम दिशा का मण्डलेश्वर किया था सो तप से मृतक हो गया है और वहाँ एक और मण्डलेश्वर आता है इसलिये वहाँ की रक्षा करो । हे रामजी! इस प्रकार दूसरा हरकारा कह रहा था कि एक और हरकारा आया और उसने कहा कि हे भगवन्! दक्षिण दिशा का मण्डलेश्वर पूर्व-पश्चिम की रक्षा के निमित्त गया था सो मार्ग ही में मृतक हुआ इससे दोनों की रक्षा के निमित्त सेना भेजो क्योंकि एक दृढ़ शत्रु आया है और विलम्ब का समय नहीं है शीघ्र ही सेना भेजिये । हे रामजी! इस प्रकार सुनकर राजा बाहर निकला और कहने लगा कि सब सेना मेरे पास होकर दिशाओं की रक्षा के निमित्त जावे और बड़े बड़े शस्त्र , हाथी, रथ आदिक सेना ले जावो । हे रामजी! इस प्रकार राजा कहता ही था कि एक और पुरुष आया और बोला कि हे भगवन्! उत्तर दिशा की ओर जो तुम्हारा मण्डलेश्वर था उसके ऊपर और शत्रु आ पड़ा है और बड़ा युद्ध होता है इससे उसकी रक्षा के निमित्त शीघ्र ही सेना भेजो अब विलम्ब का समय नहीं है और आगे कई दुष्ट चले आते हैं । मैं फिर जाता हूँ, क्योंकि मेरा स्वामी युद्ध करता है । हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह चला गया तब द्वारपाल ने आकर कहा कि हे भगवन्! उत्तर दिशा का मण्डलेश्वर आया है आज्ञा हो तो ले आऊँ । राजा ने कहा, ले आवो। वह उसे ले आया और उस मण्डलेश्वर ने राजा के सम्मुख आकर प्रणाम किया । राजा ने देखा कि उसके अंग टूट गये हैं और मुख से रुधिर चला जाता है पर ऐसी अवस्था में भी उस धैर्यसंयुक्त मण्डलेश्वर ने कहा कि हे भगवन्! मेरे अंगों की यह दशा हुई है । मैं तुम्हारा देश रखने को चला था पर मेरे ऊपर शत्रु आन पड़ा और मेरी सेना थोड़ी थी इस कारण दौड़कर तुम्हारे पास आया हूँ कि प्रजा की रक्षा करो । हे रामजी! जब इस प्रकार कहा तब राजा ने सब मन्त्रियों को बुलाया । मन्त्री राजा के पास आये और बोले, हे भगवन्! तीन उपाय छोड़ो और एक उपाय करो अर्थात् एक नम्रता, दूसरा धन और तीसरा बुद्धि का भेद ये तीनों अब नहीं चाहिये । ये दुष्ट नम्रता माननेवाले नहीं हैं, क्योंकि नीच और पापी हैं और धन इस कारण न देना चाहिये कि ये आधीन हैं और भेदभाव भी नहीं जानते, क्योंकि सब मिलके इकट्ठे हुए हैं इससे ये तीनों उपाय छोड़ो और एक उपाय करो कि युद्ध

www.tantrik-astrologer.in

हो । अब विलम्ब का समय नहीं है, क्योंकि उनकी सेना निकट आई है-अब उत्साहसहित कर्म करना है प्राणों की रक्षा नहीं चाहिये । हे रामजी! जबइस प्रकार मन्त्रियों ने कहा तब राजा ने आज्ञा की कि सब सेना मेरी आज्ञा से उनके सम्मुख जावे और निशान, नगारे, हस्ती घोड़ा, रथ, पियादे सेना के साथ जावें । इस प्रकार जब राजा ने कहा तब सब विद्यमान सेना आन स्थित हुई और नौबत-नगारे बजने लगे । जब नाना प्रकार के शस्त्रोंसहित चारों प्रकार की सेना इकट्ठी हुई तब राजा ने कहा, हे साधो! तुम आगे जावो । सेना आगे हो उसके पीछे सेनापति जावें और शत्रुओं के साथ युद्ध करो मैं भी स्नान करके आता हूँ । हे रामजी! इस प्रकार कहकर राजा ने मन्त्री को भेजा और आप गंगाजल से स्नानकर एक स्थान में अग्नि का कुण्ड था उसके निकट जाकर हवन करने लगा । जब अग्नि प्रज्ज्वलित हुई तब राजा ने कहा, हे भगवन्! इतना काल मुझको व्यतीत हुआ है कि यथाशास्त्र मैं बिचरता रहा, अपनी प्रजा सुखी रखी, अभय राज्य किया, शत्रु को नाश करके सिंहासन के नीचे दबाया और आप सिंहासन पर बैठा हूँ । पातालवासी दैत्य भी मैंने जीत रखे हैं, दशों दिशाएँ अपने अधीन की हैं सातों समुद्रपर्यन्त सब मेरे भय से काँपते हैं और सब ठौर में मेरी कीर्ति हो रही है रत्नों के स्थान मेरे भरे हुए हैं और वस्त्र, सेना; घोड़े और हाथी भी बहुत हैं । मैंने बड़े भोग भी भोगकर बड़े-बड़े दान भी किये हैं और सिद्ध और देवताओं में भी मेरा यश हुआ है । शरीर भी बूढ़ा हुआ है और क्षोभ भी बड़ा प्राप्त हुआ है इससे अब मेरा जीने से मरना भला है । हे भगवन् मैं तुमको शीश निवेदन करता हूँ; कृपा करके लो । यदि मुझ पर प्रसन्न होना तब एक की चार मूर्ति देना कि चारों ओर जाऊँ और जहाँ मुझको कुछ कष्ट हो वहाँ दर्शन देना । हे रामजी! इस प्रकार कहकर उसने खंग निकाला और अपना शीश काटकर अग्नि में डाल दिया तब धड़ भी आप ही अग्नि में जा पड़ा और शीश धड़ दोनों भस्म हो गये अथवा अग्नि ने भक्षण कर लिया । तब उसी की सी चार मूर्ति निकल आईं और उनके उसी के से आकार; वस्त्र , भूषण, मुकुट और कवच पहिरे और नाना प्रकार के शस्त्र धारे हुए उदय हुए । हे रामजी! इस प्रकार बड़े तेज संयुक्त चारों राजा विपश्चित् प्रकट भये और रथ, हस्ती; घोड़े, प्यादे और चारों प्रकार की सेना भी प्रकट हुई । निदान चारों ओर से शत्रु युद्ध करने लगे और बड़ा युद्ध होने लगा । नगर जलने लगे, बड़ा हाहाकार शब्द होने लगा और शूरवीर युद्ध में प्राण को त्यागते और उछल-उछलकर लड़ते थे । बड़े रुधिर के प्रवाह चलते थे, खंग और बरछी की वर्षा होती थी और अग्नि का अट्ट-अट्ट शब्द होता था-मानो समय बिना ही प्रलय होने लगा है । निदान बड़ा युद्ध हुआ जो सूरमा थे वे युद्ध में मरने को जीना मानते थे और जीने को मरना जानते थे, ऐसा निश्चय धरके वे युद्ध करते थे और जो कायर थे वे भाग जाते थे-जैसे गरुड़ के भय से सर्प भाग जाते हैं और सूरमे सम्मुख होकर लड़ते थे । इस प्रकार बड़ा युद्ध होने लगा और रुधिर की नदियाँ चलीं जिनमें हाथी,घोड़े , रथ और सूरमें बहते जाते थे और बड़े बड़े वृक्ष और नगर गिरते और बहते जाते थे । माँस भक्षण के निमित्त योगिनी भी आ उपस्थित हुई । जो-जो युद्ध में मृतक हो उसको अप्सरा और विद्याधरी विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग को ले जाती थीं । हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ तब राजा विपश्चित् की सेना सब शून्य हो गई अर्थात् थोड़ी हो गई । राजा ने सुना कि सेना बहुत मारी गई है इसलिये उसने सवार होकर देखा कि सेना थोड़ी रह गई है इससे एक एक राजा एक एक ओर को गया अर्थात् चारों राजा चारों ओर गये और विचार करने लगे कि यह महागम्भीर सेनारूपी समुद्र है, इसमें शस्त्ररूपी जल है, धाररूपी तरंग है और शूर में रूपी मच्छ हैं । ऐसा जो समुद्र है उसको अगस्त्य होकर मैं पान करूँ-ऐसे विचारकर उसने उद्यम किया, क्योंकि शत्रु की विशेष सेना देखी-एक तो आगे ही को चली आवें, दूसरे शूरमे तेज से सेना को जलावें और तीसरे बहुत

www.tantrik-astrologer.in

सेना आवे । ऐसी तीन प्रकार की सेना के राजा ने तीन उपाय किये । प्रथम उसने वायव्यास्त्र हाथ में लिया और परमात्मा ईश्वर को नमस्कार कर और मन्त्र पढ़के पवन का अस्त्र चलाया । इससे आँधी आ गई और जितनी सेना आगे चली आती थी वह सब उलटी उड़ने लगी । फिर उसने मेघरूपी अस्त्र चलाया तब वर्षा होने लगी और उससे जो तेज उन्हीं सेना को जलाता था वह शीतल हो गया । उसके अनन्तर उसने शिवअस्त्र चलाया, उसमें से प्रथम शस्त्रों की नदी चली फिर त्रिशूलों की नदी चली, फिर चक्रों की नदी चली, फिर वज्र की नदी चली, बरछी की नदी चली, बिजली की नदी चली और अग्नि इत्यादिक की नदी चली और दूसरे शस्त्रों की वर्षा हुई । जब इस प्रकार नदियाँ चलीं तब जो कुछ सेना सम्मुख आती थी सो मृतक हो गई । जैसे कमलिनी काटी जाती है तैसे ही शूरवीर काटे गये । कोई पहाड़ों की कन्दराओं में गिरें और वहाँ से उड़कर समुद्र में जा पड़े और कोई सुमेरु की कन्दराओं में जाकर छिपें और समुद्र में जाकर डूबे-जैसे अज्ञानी विषयों में डूबते हैं । इस प्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई और चारों दिशाओं की सेना नष्ट हो गई । नीच से नीच देशों के और पहाड़ की कन्दराओं के रहनेवाले सब बहते जावें । हे रामजी! कई शस्त्रों से और कई आँधी से उड़े सो सब क्षेत्रों में जा पड़े और कई वन में और कई नीचे देशों में गिरे । जो पुण्यवान् थे वे उत्तम क्षेत्र में जा पड़े और मृतक होकर वे स्वर्ग में गये और पापी नीच देशों में जा पड़े उससे दुर्गति को प्राप्त हुए । कई पिशाच हुए, कितनों को विद्याधरियाँ ले गईं और कई ऋषीश्वरों के स्थानों में जीतकर जा पड़े उनकी उन्होंने रक्षा की । इसी प्रकार कितने बाणों से छेदे हुए नाश हुए और कई रुधिर की नदियों में बहते समुद्र की ओर चले गये । हे रामजी! जब सब सेना शून्य हो गई तब आकाश शुद्ध हुआ । जैसे ज्ञानी का मन निर्मल होता है तैसे ही आकाश अधिक क्षोभ से रहित भया । जब सब सेना शून्य हो गई तब चारों राजा आगे चले । हे रामजी! निदान चारों विपश्चित् चारों दिशाओं के समुद्रों पर जा पहुँचे, तब उन्होंने क्या देखा कि बड़े गम्भीर समुद्र है, कहीं रत्न और कहीं हीरा, मोती इत्यादिक चमकते हैं और बड़े गम्भीर समुद्र में बड़े मच्छ और तरंग उछलते हैं और रेती में नाना प्रकार के लौंग, इलायची, चन्दन इत्यादिक के वृक्ष समुद्र पर जाकर देखे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चित्‍समुद्रप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टादशस्सर्गः ||218||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

जीवन्मुक्तलक्षण वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा विपश्चित् समुद्र के पार जा पहुँचा तब उसके साथ जो मन्त्री पहुँचे थे उन्होंने राजा को सब स्थान दिखाये जो बड़े गम्भीर थे बड़े गम्भीर समुद्र जो पृथ्वी के चहुँ फेर वेष्टित थे वह भी दिखाये और बड़े-बड़े तमालवृक्ष, बावलियाँ, पर्वतों की कन्दरा, तालाब और नाना प्रकार के स्थान दिखाये । ऐसे स्थान राजा को मन्त्री ने दिखाकर कहा, हे राजन्! तीन पदार्थ बड़े अनर्थ और परम सार के कारण हैं-एक तो लक्ष्मी, दूसरा आरोग्य देह और तीसरा यौवनावस्था । जो पापी जीव हैं वे लक्ष्मी को पाप में लगाते हैं, देह आरोग्यता से विषय सेवते हैं और यौवन अवस्था में भी सुकृत नहीं करते, पाप ही करते हैं और जो पुण्यवान् हैं वे मोक्ष में लगाते हैं अर्थात् लक्ष्मी से यज्ञादिक शुभकर्म और आरोग्य से परमार्थ साधते हैं और यौवन अवस्था में भी शुभकर्म करते हैं-पाप नहीं करते । हे रामजी! जैसे समुद्र और पर्वत के किसी ठौर में रत्न होते हैं और किसी ठौर में दर्दुर होते हैं, तैसे ही संसाररूपी समुद्र में कहीं रत्नों की नाईं ज्ञानवान् होते हैं और कहीं अज्ञाननरूपी दर्दुर होते हैं । हे राजन्! यह समुद्र मानो जीवन्मुक्त है क्योंकि जल से भी मर्यादा नहीं छोड़ता और रागद्वेष से रहित है । किसी स्थान में दैत्य रहते हैं, कहीं पंखोंसंयुक्त पर्वत, कहीं बड़वाग्नि और कहीं रत्न हैं परन्तु समुद्र को न किसी स्थान में राग है, न द्वेष हे । जैसे ज्ञानवान् को किसी में रागद्वेष नहीं होता परन्तु सबमें ज्ञानवान् कोई बिरला होता है । जैसे जिस सीपी और बाँस से मोती निकलते हैं सो बिरले ही होते हैं, तैसे ही तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोई बिरला होता है हे रामजी! सम्पूर्ण रचना यहाँ की देखो कि कैसे पर्वत हैं जिनके किसी स्थान में पक्षी रहते हैं, किसी स्थान में विद्याधर रहते हैं, कहीं देवियाँ विलास करती हैं, कहीं योगी रहते हैं और कहीं ऋषीश्वर, मुनीश्वर, कहीं ब्रह्मचारी, वैरागी आदिक पुरुष रहते हैं । यह द्वीप है और सात समुद्र हैं जिनके बड़े तरंग उछलते हैं और पर्वत का कौतुक और आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, ऋषि, मुनि, को देखो और देखो कि सबको आकाश ठौर दे रहा है पर महापुरुष कि नाईं आप सदा असंग रहता है और शुभ-अशुभ दोनों में तुल्य है । स्वर्गादिक शुभस्थान हैं और चाण्डाल पापी नरकस्थान और अपवित्र है परन्तु आकाश दोनों में तुल्य है- असंगता से निर्विकार है । जैसे ज्ञानी का मन सब स्थानों से निर्लेप होता है, तैसे ही आकाश सब पदार्थों से असंग और न्यारा है और महात्मा पुरुष की नाईं सर्वव्यापी है । हे आकाश! तू कैसा है कि प्रकाशरूप तुझमें अन्धकार दृष्टि आता है-यह आश्चर्य है! हे आकाश! तू सबका आधारभूत है और जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं ,दिन को तुझको श्वेतता भासती है, रात्रि को अन्धकार भासता है और संन्ध्याकाल में तेरे में लाली भासती है पर तू तीनों से न्यारा है । ये तीनों राजसी, तामसी और सात्त्विकी गुण हैं पर तू इनके होते भी असंग है । हे आकाश! तू निर्मल है और तम तेरे में दृष्टि आता है परन्तु तू सदा ज्यों का त्यों है । यह अनित्य रूप है । चन्द्रमा तेरे में शीतलता करता है, सूर्य दाहक होते हैं, तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं और पापमय अपवित्र स्थान हैं परन्तु तू सब में एक समान ज्यों का त्यों रहता है और वृक्ष को बढ़ने और ऊँचे होने की सत्ता तू ही देता है । अपनी महिमा को तू आप ही जाने और कोई तेरी महिमा पा नहीं सकता । तू निष्किञ्चन अद्वैत है, सबको धार रहा है और सबका अर्थ तुझसे ही सिद्ध होता है । जल नीचे को जाता है और तू सबसे ऊँचा है और विभु है । अनेक पदार्थ तेरे में उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं पर तू सदा ज्यों का त्यों रहता है । जैसे अग्नि से चिनगारे उपजते और अग्नि ही में लीन हो जाते हैं, तैसे ही तेरे में अनन्त जगत् उपजते और लीन होते हैं और तू सदा

www.tantrik-astrologer.in

ज्यों का त्यों रहता है जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूढ़ हैं । हे राजन! ऐसा आकाश कौन है सो भी सुनो । ऐसा आकाश आत्मा है जो चैतन्य आकाश है और जिसमें अनन्त जगत् उत्पन्न और लीन हो जाते हैं । उसको जो शून्य कहते हैं वे महामूर्ख हैं-जो सबको अधिष्ठान है, सबको धार रहा है और सदा निःसंग है ऐसे चिदाकाश को नमस्कार है । हे राजन्! यह आश्चर्य है कि वह सदा एक रस है पर उनमें नाना तरंग भासते हैं-यही माया है । हे राजन्! एक विद्या धरी और विद्याधर थे । उनके मन्दिर में एक ऋषि आ निकला पर उस विद्याधर ने उनका आदरभाव न किया इससे ऋषीश्वर ने शाप दिया कि तू द्वादशवर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा । निदान वह विद्याधर वृक्ष हो गया । पर अब जो हम आये हैं हमारे देखते ही वह शाप से मुक्त हो वृक्षभाव को त्यागकर फिर विद्याधर हुआ है । यह ईश्वर की माया है कि कभी कुछ हो जाता है और कभी कुछ हो जाता है । हे मेघ! तू धन्य है! तेरी चेष्टा भी सुन्दर है, तीर्थों में सदा तेरी स्थिति है, तू सबसे ऊँचे विराजता है और सब आचार तेरा भला दृष्टि आता है परन्तु एक तुझमें नीचता है कि ओले की वर्षा करता है जिससे खेतियाँ नष्ट हो जाती हैं और फिर नहीं उगतीं । तैसे ही अज्ञानी की चेष्टा देखनेमात्र सुन्दर है और हृदय से मूर्ख हैं, उनकी संगति बुरी है और ज्ञानवान् की चेष्टा देखने में भली नहीं तो भी उनकी संगति कल्याण करती है । हे राजन्! सबमें नीच श्वान हैं क्योंकि जो कोई उसके निकट आता है उसको काट लेता है, घर घर में भटकता फिरता और मलीन स्थानों में जाता है, तैसे ही अज्ञानी जीव श्रेष्ठ पुरुषों की निन्दा करता है पर मन में तृष्णा रखता है और विषयरूपी मलीन स्थानों में गिरता है । वह मूर्ख मनुष्य मानो श्वान है और श्वान से भी नीच है । ब्रह्मा ने सम्पूर्ण जगत् को रचा है परन्तु उसमें श्वान सबसे नीच है पर श्वान क्या समझता है सो सुनो । एक पुरुष ने श्वान से प्रश्न किया कि हे श्वान! तुझसे कोई नीच है अथवा नहीं? तब श्वान ने कहा कि मुझमें भी नीच मूर्ख मनुष्य है और उससे मैं श्रेष्ठ हूँ क्योंकि प्रथम तो मैं सूरमा हूँ, दूसरे जिसका भोजन खाता हूँ उसकी रक्षा करता हूँ और उसके द्वारे बैठा रहता हूँ पर मूर्ख से ये तीनों कार्य नहीं होते ।इससे मैं उससे श्रेष्ठ हूँ क्योंकि मूर्ख को देहाभिमान है इससे वह श्वान से भी नीच है । हे राजन्! परम अनर्थ का कारण देहाभिमान है । देहाभिमान से जीव परम आपदा को प्राप्त होता है । वह मूर्ख नहीं मानो कौवा है जो सबसे ऊँची टहनी पर बैठकर कां कां करता है । हे राजन्! कमल की खानों के ताल के निकट एक कौवा जा निकला तो क्या देखे कि भँवर बैठे कमल की सुगन्ध लेते हैं, उनको देखकर वह हँसने लगा और कां कां शब्द किया । तब उसको देख भँवरे हँसे कि यह कमल की सुगन्ध क्या जाने, तैसे ही जिज्ञासु भँवरे के समान हैं जो परमार्थरूपी सुगन्ध लेते हैं । जो अज्ञानरूपी कौवे हैं वे परमार्थ रूपी सुगन्ध लेते हैं । जो अज्ञानरूपी कौवे हैं वे परमार्थ रूपी सुगन्ध नहीं जानते इस कारण मूर्ख को देखकर जिज्ञासु हँसते हैं जो आत्मरूपी सुगन्ध को नहीं जानते । अरे कौवे! तू क्यों हंस की रीत करता है? हंस तो हीरे और मोती चुगनेवाले हैं और तू नीच स्थानों को सेवनेवाला है । मन्त्री ने कहा, हे कोयल! तुम कमल को देखकर क्या प्रसन्न होते हो? प्रसन्न तो तब हो जब बसन्तऋतु हो पर यह तो वर्षाकाल का समय है-यह फूल ओलों से नष्ट हो जावेंगे । राजन्! कोयलरूपी जो जिज्ञासु हैं उनको यह उपदेश है हे जिज्ञासु! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्ट आते हैं इनको देखकर तुम क्यों प्रसन्न होते हो? प्रसन्न तो तब हो जो यह सत्य हों पर यह तो मिथ्या हैं और अविद्या के रचे हैं । तुम क्यों प्रसन्न होते हो? अपने कुल में जा बैठो और अज्ञानी का संग छोड़ दो । जैसे कौवा हंसों में जा बैठता है तो भी उसका चित्त गन्दगी के भोजन में होता है और हंस का आहार जो मोती है उन मोतियों की ओर देखता भी नहीं, तैसे ही अज्ञानी जीव कदाचित् सन्तों की संगति में जा भी बैठता हे तो भी उसका चित्त

www.tantrik-astrologer.in

विषयों की ओर ही भ्रमता फिरता है और स्थिर नहीं होता । जैसे कोयल का बच्चा कौवे को माता-पिता जानकर उनमें जा बैठता है तब उनकी संगति से यह भी गन्दगी के भोजन करनेवाला हो जाता है । इससे कोयल उसको बर्जन करते हैं कि रे बेटा! तू कौवे की संगति मत बैठ, अपने कुल में बैठ, क्योंकि तेरा भी नीच आहार हो जावेगा, तैसे ही जिज्ञासु जो अज्ञानी का संग करता है तो उसके अनुसार भी विषयों की तृष्णा उत्पन्न होती है तब उसको बर्जन करते हैं कि रे जिज्ञासु! तू मूर्ख अज्ञानियों में मत बैठ, अपना कुल जो सन्तजन हैं उनमें बैठ । जैसे कोयल के बच्चे को कौवे सुख देनेवाले नहीं होते, तैसे ही मूर्ख तुझको सुख देनेवाले नहीं होंगे । मन्त्री फिर कहने लगा, अरी चील! तू क्यों हंस की रीत करती है? तू भी बहुत ऊँचे उड़ती है परन्तु हंस का गुण तेरे में कोई नहीं । जब तू माँस को पृथ्वी पर देखती है तब वहाँ गिर पड़ती है और हंस नहीं गिरते, तैसे ही जो मूर्ख हैं वे सन्तों की नाईं ऊँचे कर्म भी करते हैं परन्तु विषयों को देखकर गिरते हैं पर सन्त नहीं गिरते तो मूर्ख सन्तों की रीत कैसे करें । फिर मन्त्री ने कहा, हे बगला! तू हंस की रीत क्या करता है? अपने पाखण्ड को छुपाकर तू आपको हंस की नाईं उज्ज्वल दिखाता है पर जब मछली निकलती है तब तू खा लेता है, यही तेरे में अवगुण है । हंस मानसरोवर के मोती चुगनेवाले हैं और तू गढ़े में से तृष्णा करके मछली खानेवाला है, तू क्यों आपको हंस मानता है? तैसे ही जीव विषयों की तृष्णा करते हैं और ज्ञानवान् विवेक से तृप्त हैं, उनकी रीत अज्ञानी क्यों करता है? हे राजन्! जो हंस हैं वे सदा अपनी महिमा में रहते हैं और अपना जो मोती का आहार है उसको भोजन करते हैं, दूसरे किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करते । जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर शोभा पाते हैं-चन्द्रमा बिना शोभा नहीं पाते, तैसे ही बुद्धि भी तब शोभा पाती है जब ज्ञान उदय होता है आत्मज्ञान बिना बुद्धि शोभा नहीं पाती । बड़े बड़े सुगन्धवाले वृक्ष का माहात्म्य भँवरे ही जानते हैं और जीव नहीं जानते । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! समुद्र के किनारे पर राजा विपश्चित् को मन्त्रियों ने ऐसे कहकर फिर कहा, हे राजन्! अब पृथ्वीनगर के मण्डलेश्वर स्थापन करो । हे रामजी! जब ऐसे मन्त्री ने कहा, तब सब दिशाओं के मण्डलेश्वर स्थापन किये गये और चारों राजा जो अपनी-अपनी दिशा के समुद्र पर बैठे थे उन्होंने अपने-अपने मन्त्री से कहा, हे साधो! अब हमने समुद्रपर्यन्त दिग्विजय की है और अब हमारी जय हुई है, अब चैत्य जो दृश्य है सो दृश्य विभूति को देखो । समुद्र के पार द्वीप है, फिर उस समुद्र के पार और द्वीप है, फिर समुद्र है और फिर द्वीप है और इसी प्रकार सप्तद्वीप और सात समुद्र हैं पर उनके पार क्या हैं? इस प्रकार सर्व दृश्य देखने की इच्छा करके उन्होंने अग्निदेवता का आवाहन किया तब उनकी दृढ़भावना से अग्निदेवता सम्मुख आन स्थित हुए और बोले, हे राजन्! जो कुछ तुमको वाञ्छा है सो माँगो । तब राजा ने कहा, हे भगवन्! ईश्वर की माया से पाञ्चभौतिक दृश्य में जो भूत हैं उनके देखने की हमारी इच्छा है सो पूर्ण करो । हे देव! हम इसी शरीर से दृश्य देखने जावे और जब यह शरीर चलने से रहित हो तब मन्त्र सत्ता से जावें पर जहाँ मन्त्र की भी गम नहीं वहाँ सिद्धि से जावें और जहाँ सिद्धि की भी गम नहीं वहाँ मन के वेग से जावें और मृतक भी न हों । यह वर हमको दो । हे रामजी! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब अग्नि ने कहा कि ऐसे ही होगा । इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान हो गये । जैसे समुद्र से तरंग उठकर फिर लय हो जावे तैसे ही अग्नि अन्तर्धान हो गये । जब राजा विपश्चित् वर पाकर चलने को समर्थ हुआ तब जितने मन्त्री और मित्र थे वे रुदन करने लगे और बोले, हे राजन्! तुमने यह क्या निश्चय किया है? ईश्वर की माया का अन्त किसी ने नहीं पाया इससे तुम अपने स्थान को चलो , यह क्या निश्चय तुमने धारा है? हे रामजी! इस प्रकार मन्त्री कहते रहे परन्तु राजा ने उनको आज्ञा देकर

www.tantrik-astrologer.in

एक एक दिशा के समुद्र में प्रवेश किया और चारों दिशाओं में चारों राजाओं ने गमन किया पर जो बड़े बड़े शक्तिमान् मन्त्रीगण थे वे सात ही चले । तब राजा मन्त्रशक्ति से समुद्र को लाँघ गया । कहीं पृथ्वी पर चले और कहीं ऊँचे चले इसी प्रकार और द्वीप में जा निकला, तब बड़ा समुद्र आया उसमें प्रवेश कर गया जिसमें बड़े तरंग उछलते थे और जिसका सौ योजनपर्यन्त विस्तार था । कभी अधः को और कभी ऊर्ध्व को जाते थे । हे रामजी 1 ऐसे तरंग उछलें मानो पर्वत उछलते हैं जब वे ऊर्ध्व को उछलें तब स्वर्गपर्यन्त उछलते भासें और जब अधः को जावें तब पातालपर्यन्त चलते भासें । जैसे पानी में तृण फिरता है, तैसे ही राजा फिरे । इस प्रकार कष्ट से रहित समुद्र और दिशा को लाँघ गया परन्तु मध्य में जो वृत्तान्त हुआ सो सुनो । क्षीर समुद्र में एक मच्छ रहता था जिसको सब देवता प्रणाम करते थे और जो विष्णु भगवन् के मच्छ अवतार के परिवार में था । जब राजा ने क्षीसमुद्र में प्रवेश किया तब राजा को उसने मुख में डाल लिया पर राजा मन्त्र के बल से उसके मुख से निकल गया । आगे फिर एक मच्छ मिला उसने भी उसे मुख में डाल लिया पर उससे भी वह निकल गया । फिर आगे पिशाचिनी का देश था वहाँ राजा को पिशाच ने काम से मोहित किया । फिर उसने दक्षप्रजापति की कुछ अवज्ञा की जिससे उसने शाप दिया और राजा वृक्ष हो गया । निदान कुछ काल वृक्ष रहकर फिर छूटा तो एक देश में दर्दुर हुआ और सौ वर्षपर्यन्त खाईं में पड़ा रहा । फिर उससे छूटकर मनुष्य हुआ तब किसी सिद्ध के शाप से शिला हो गया और सौ वर्षपर्यन्त शिला ही रहा । उसके उपरान्त अग्निदेवता ने शिला से छुड़ाया तो फिर मनुष्य हुआ, तब वह सिद्ध आश्चर्यवान् हुआ कि मेरे शाप को दूर करके यह मनुष्य क्यों कर हुआ है- यह तो मुझसे भी बड़ा सिद्ध है । ऐसे जानकर उसने उसके साथ मैत्री की । इसी प्रकार दूसरे समुद्रों को भी यह लाँघता गया और क्षीरसमुद्र, खारी समुद्र और इक्षु के रस के समुद्र को लाँघकर द्वीपों को लाँघता गया । फिर एक अप्सरा से मोहित हुआ और बहुत काल में वहाँ से छूटा- तो एक देश में पक्षी हुआ और बहुत कालपर्यन्त पक्षी रहकर छूटा तो एक गोपी पिशाचिनी थी उसने बैल बनाके उसे रखा और दूसरे विपश्चित् ने बैल विपश्चित् को उपदेश करके गाया । निदान हे रामजी! चारों दिशाओं में चारों विपश्चित् भ्रमते फिरे । दक्षिण दिशा का तो पिशाचिनी से मोहित हुआ इससे उसने बहुत जन्म पाये और पूर्व का बहता हुआ मच्छ के मुख में चला गया और उसने निकाल डाला, इससे लेकर वह अवस्था देखी । उत्तर दिशा का जो हुआ उसने वही अवस्था देखी और पश्चिम दिशा का हेमचू पक्षी की पीठ पर प्राप्त हुआ और उसने उसे कुशद्वीप में डाल दिया इससे उसने भी अनेक अवस्था पाई । हे रामजी! एक एक विपश्चित् ने भिन्न भिन्न योनि और अवस् था का अनुभव किया । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि `विपश्चित एक ही था और उनकी संवित् भी एक ही थी और आकार भी एक ही था तो भिन्न भिन्न रुचि कैसे हुई जो एक पक्षी हुआ,दूसरा वृक्ष हुआ और इससे लेकर वासना के अनुसार अनेक शरीर पाते फिरे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? उनकी संवित् एक ही थी परन्तु भ्रम से भिन्नता हो जाती है । जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आता है तो उसमें पशु-पक्षी हो जाते हैं और भिन्न भिन्न रुचि भी हो जाती है, तैसे ही उसकी भिन्न भिन्न रुचि हो गई । जैसे देखो कि शरीर तो एक ही होता है पर उसमें नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा और त्वचा की रुचि भिन्न भिन्न होती है और अपने अपने विषयों को ग्रहण करती हैं सो एकही शरीर में अनेकता भासती है, तैसे ही उनकी एक ही संवित् थी परन्तु भिन्न भिन्न हो गया था इससे मन के फुरने से एक में अनेक भासीं । जैसे एक ही योगेश्वर इच्छा करके और और शरीर धर लेता है और एक से अनेक हो जाता है । एक सहस्त्रबाहु अर्जुन था सो एक भुजा से युद्ध करता था, दूसरी भुजा से दान करता था

www.tantrikastrologer.in

और एक से लेता था, इसी प्रकार सब भुजाओं से चेष्टा करता था वे भी भिन्न भिन्न हुए । एक ही शरीर में भिन्न भिन्न चेष्टा होती है । जैसे विष्णु भगवन् कहीं दैत्यों के साथ युद्ध करते, कहीं कर्म करते हैं, कहीं लीला करते हैं और कहीं शयन करते हैं सो संवित् तो एक ही है परन्तु चेष्टा भिन्न भिन्न होती है, तैसे ही उनकी संवित् में अनेक रुचि हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है? हे रामजी! इस प्रकार उन्होंने जन्म से जन्मान्तर को अविद्यक संसार में देखा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चित् थे और बोधवान् जन्म नहीं पाता फिर उनको किस प्रकार जन्म हुआ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! वे विपश्चित् बोधवान् न थे परन्तु बोध के निकट धारणा अभ्यासवाले थे । जो वे ज्ञानवान् होते तो दृश्यभ्रम देखने की इच्छा क्यों करते? इससे वे ज्ञानवान् न थे-धारणा अभ्यासी थे अतः समुद्र को लाँघ गये और मच्छ के उदर से बल करके निकले सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है । ज्ञान का लक्षण सुसंवेद्य है परसंवेद्य नहीं । राजा विपश्चित् ज्ञानवान् न थे इस कारण देश-देशान्तर में भ्रमते रहे और ज्ञान बिना अविद्यक संसार में जन्ममरण में भटकते रहे । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! योगेश्वरों को भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालों का ज्ञान कैसे होता है और एक देश में स्थित हुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करता है सो सब मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी की वार्त्ता यह मैंने तुमसे कही है और जितना जगत् है सो सब चिदाकाशस्वरूप है । जिसको ऐसी सत्ता का ज्ञान हुआ है वे महापुरुष हैं । जैसे स्वप्ने से कोई पुरुष जागे तो स्वप्ने की सब दृष्टि उसको अपना ही स्वरूप भासती है और उसमें कन्धायमान नहीं होता । यह सब नानात्व भासती है सो नाना नहीं और अपनी भी नहीं केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थित है । जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसे ही आत्मा अपने आपमें स्थित है । ये तीनों काल भी ज्ञानवान् को ब्रह्मरूप हो जाते हैं और सब जगत् भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं और द्वैतभाव उसका मिट जाता है । ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानी ही जानता है और कोई नहीं जान सकता, जैसे अमृत को जो पान करता है सो ही उसके स्वाद को जानता है और कोई जान नहीं सकता । हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है परन्तु ज्ञानी के निश्चय में कुछ और है और अज्ञानी के निश्चय में और है । जिसका हृदय शीतल हुआ है वह ज्ञानवान् है और जिसका हृदय जलता है वह अज्ञानी है । वह बाँधा हुआ है और ज्ञानवान् का शरीर चूर्ण हो अथवा उसे राज्य प्राप्त हो तो भी उसको रागद्वेष नहीं उपजता, वह सदा ज्यों का त्यों एकरस रहता है । वह जीवन्मुक्त है परन्तु यह लक्षण उसका कोई जान नहीं सकता वह आपही जानता है शरीर को दुःख और सुख भी प्राप्त होता है, मरता और रुदन भी करता है और हँसता, लेता और देता भी है और इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आता है पर वह अपने निश्चय में न दुःखी होता है, न सुखी होता है, न देता है और न लेता है-सदा ज्यों का त्यों रहता है । हे रामजी! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईं ही दृष्टि आता है परन्तु हृदय से उसका निश्चय होता है और अद्भुत पद में स्थित रहता है कदाचित् नहीं गिरता । उसका परम उदित रूप होता है और रागसहित भी दृष्टि आता है परन्तु हृदय से राग किसी में नहीं करता, क्रोध करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं होता । जैसे आकाश शुभपदार्थ को धारता है और धूम और बादल से ढापा भी दृष्टि आता है परन्तु किसी से स्पर्श नहीं करता, तैसे ही ज्ञानवान् में सब क्रिया दृष्टि आती हैं परन्तु अपने निश्चय में वह किसी से स्पर्श नहीं करता । जैसे नटवा स्वाँग ले आता है और चेष्टा करता दीखता है पर हृदय से अपने नटत्व भाव में निश्चय होता है, तैसे ही ज्ञानवान् को भी सब क्रिया में अपना आत्म भाव निश्चय होता है । जैसे जिसको स्वप्ना आता है वह यदि स्वप्न में भी अपना पूर्वरूप स्मरण रखता है तो स्वप्न के पदार्थ में

www.tantrik-astrologer.in

बर्तता है तो भी उनके मुख में आपको सुखी नहीं मानता और दुःख में आपको दुःखी नहीं मानता-सब सृष्टि उसको अपना ही स्वरूप भासती है, तैसे ही ज्ञानवान् को अपने स्वरूप के निश्चय से सुख-दुःख का क्षोभ नहीं होता । जो ऐसे पुरुष हैं उनको दुःख से क्या होता है? जैसे उनकी इच्छा होती है तैसे ही सिद्ध होकर भासती है । हे रामजी! यह जितनी सृष्टि है सो सब चित्सत्ता में है और योगीश्वर पुरुष उसी में स्थित होकर जहाँ प्राप्त हुआ चाहते हैं वहाँ अन्तवाहक से जा प्राप्त होते हैं और तीनों काल उनको विद्यमान होते हैं साधन कुछ नहीं परन्तु ज्ञानी अवश्य करके किसी निमित्त यत्न नहीं करते-जैसा प्राप्त होता है उसी में प्रसन्न रहते हैं । हे रामजी! एक काल में ब्रह्माजी ऊर्ध्वमुख से सामवेद को गायन करते थे और सदाशिव का मान न किया तब सदाशिव ने अपने नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ शीश काट डाला परन्तु ब्रह्माजी के मन में कुछ क्रोध न फुरा । उन्होंने विचारा कि मैं चिदाकाश हूँ सो अब भी चिदाकाश हूँ मेरा तो कुछ गया नहीं, शिर से मेरा क्या प्रयोजन है? न कुछ हानि है और न कुछ लाभ है । हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचनेवाले ब्रह्मा का शिर कटा, जो वे फिर भी शिर लगा लेते तो समर्थ थे परन्तु उनको लगाने का कुछ प्रयोजन न था और न लगाने में कुछ हानि भी न थी । उनका भी निश्चय सदा आत्मपद में हैं इस कारण उन्हें कुछ क्षोभ न हुआ । हे रामजी! काम के सदृश और कोई विकार नहीं है । जो सदाशिव पार्वती को बायें अंग में धारते हैं और कामदेव के पाँच बाण चलने से सर्वविश्व मोहित होता है उस काम को सदाशिव ने भस्म कर डाला तो क्या स्त्री के त्यागने को वे समर्थ नहीं हैं परन्तु उनको रागद्वेष कुछ नहीं इस कारण त्याग नहीं करते । त्यागने से कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं होती और रखने से कुछ अनर्थ नहीं होता-जो कुछ प्रवाहपतित कार्य होता है उसको करते हैं खेद नहीं मानते इससे वे जीवन्मुक्त हैं । विष्णुजी सदा विक्षेप में रहते हैं, आप भी कर्मकरते हैं और लोगों से भी कराते हैं और लोगों से भी कराते हैं और शरीर धारते हैं और त्याग भी देते हैं इत्यादिक क्षोभ में रहते हैं सो त्यागने को समर्थ भी हैं परन्तु त्यागने में उनका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और करने में कुछ हानि नहीं होती । उनको लोग कई गुणों से गुणवान् जानते और मुझको तो शुद्ध चिदाकाश रूप भासता है । मूर्ख कहते हैं कि विष्णु श्याम सुन्दर हैं परन्तु वे शुद्ध चिदाकाशरूप हैं और सदा शुद्धस्वरूप में उनको अहंप्रत्यय है । आकाशमार्ग में जो सूर्य स्थित है वे कभी ऊर्ध्व की ओर और कभी नीचे जाते हैं तो क्या उनको स्थित होने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु चलना और ठहरना दोनों उनको सम है और खेद से रहित होकर प्रवाहपतित कार्य में रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं । जीवन्मुक्त चन्द्रमा भी है सो घटते घटते सूक्ष्म होते दृष्टि आते हैं और कभी बढ़ते जाते, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष उनमें होते हैं और रात्रि को प्रकाशते हैं तो क्या वे अपनी क्रिया को त्याग नहीं सकते? नहीं त्याग सकते हैं, परन्तु क्षोभ से रहित होकर प्रवाहपतित कार्य में बिचरते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं । अग्नि सदा दौड़ता रहता है और यज्ञ और होम के भोजन करने को सर्व ओर जाता है तो क्या उसको गृह में बैठने की सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु जो कुछ अपना आचार है उसको वह नहीं त्यागता, क्योंकि ठहरने में उसका कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता और चलने में कुछ हानि नहीं होती-दोनों में वे तुल्य जीवन्मुक्त हैं । हे रामजी! वृहस्पति और शुक्र को बड़ा क्षोभ रहता है, वृहस्पति देवताओं की जय के निमित्त यत्न करते हैं और शुक्र दैत्यों की जय के निमित्त यत्न करते रहते हैं तो क्या इनको त्यागने की सामर्थ्य नहीं है परन्तु दोनों इनको तुल्य हैं इस कारण खेद से रहित होकर अपने कार्य में विचरते है इससे जीवन्मुक्त पुरुष हैं । हे रामजी! राज्य में बड़े क्षोभ होते हैं पर राजा जनक आनन्दसहित राज्य करता है और जीवन्मुक्त है- और प्रह्लाद, बलि, वृत्रासुर और मुर आदि दैत्य जीवन्मुक्त हुए हैं और समताभाव को लिये खेद से रहित नाना प्रकार की चेष्टा करते

www.tantrikastrologer.in

रहे हैं और हृदय से शीतल और जीवन्मुक्त रहे हैं । राजा नल, दिलीप और मान्धाता आदि ने भी समताभाव को ले राज्य किया है सो जीवन्मुक्त हैं । ऐसे ही अनेक राजा हुए हैं और उनमें रागवान् भी दृष्टि आये हैं परन्तु हृदय में रागद्वेष से रहित शीतलचित्त रहे हैं । हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है परन्तु इतना भेद है कि ज्ञानी का चित्त शान्त है और अज्ञानी का चित्त क्षोभ में है, इष्ट की प्राप्ति में वह हर्षवान् होता है और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करता है और ग्रहणत्याग की इच्छा से जलता है, क्योंकि उसको संसार सत्य भासता है और जिसका चित्तशान्त हो गया है उसके भीतर न राग है, न द्वेष है, स्वाभाविक शरीर की जो प्रारब्ध होती है उसमें कुछ अपना अभिमान नहीं होता । उसके निश्चय में सब आकाशरूप हैं, जगत् कुछ बना नहीं-भ्रममात्र है जैसे आकाश में नीलता भ्रममात्र है और दूर नहीं होती तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है परन्तु है नहीं । जैसे आकाश में नाना प्रकार के तरुवरे भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे काष्ठ की पुतली काष्ठरूप होती है, तैसे ही जगत् भ्रमरूप है । जो कुछ भ्रम से भिन्न भासता है वह सब भविष्यनगर में असत्य है और जो कुछ तुम्हें दृष्टि आता है सो कुछ नहीं केवल सर्व कलना से रहित, शुद्धसंवित जड़ता बिना मुक्त स्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है और केवल आकाशरूप है, उसमें जगत् भी वही रूप है और पाषाण की शिला वत् घन मौन है । तुम भी उसी रूप में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्गः ||219||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विपश्चिदुपाख्यान वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उस राजा विपश्चित् ने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो उनकी दशा हुई है सो तुम सुनो । पश्चिम दिशा का विपश्चित् वन में बिचरता फिरता था कि एक मत्त हाथी के वश पड़ा और उसने उसे पहाड़ की कन्दरा में मार डाला, दूसरे विपश्चित् को राक्षस ले गया और बड़वाग्नि में डाल दिया वहाँ अग्नि ने उसे भक्षण कर लिया, तीसरे विपश्चित् को एक विद्याधर स्वर्ग में ले गया और उसने वहाँ इन्द्रका मान न किया इसलिये उसको इन्द्र ने शाप दिया और वह भस्म हो गया, इसी प्रकार चौथा भी हुआ उसके एक मच्छ ने आठ टुकड़े कर डाले । जैसे प्रलयकाल में लोक भस्म हो जाते हैं तैसे ही चारों विपश्चित् मर गये । तब उनकी संवित्त आकाशरूप हुई परन्तु उनको जगत् देखने का संस्कार था इससे उनको आकाशरूप संवित् फिर आन फुरी उससे जाग्रत भासने लगा और पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, स्थावर जंगमरूप जगत् को देखा और अन्तवाहक शरीर से चेष्टा करने लगे । उनमें से एक पश्चिम दिशा का विपश्चित् विष्णु भगवन् के स्थान में मुआ निर्वाण हो गया इससे उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य हो गये और वह वहाँ मुक्त हुआ । एक मच्छ के उदर में सहस्त्र वर्ष पर्यन्त रहा उससे फिर एक देश का राजा हुआ और वहाँ राज्य करने लगा । एक चन्द्रमा के निकट जा वहाँ मरके चन्द्रमा के लोक को प्राप्त हुआ और एक बहता हुआ समुद्र के पार हुआ और आगे चौरासी हजार योजन पृथ्वी को लाँघता गया । इसी प्रकार चारों फिर जिये और समुद्र बन और पर्वतों को लाँघते गये । सबके आगे दसशहस्त्र योजन सुवर्ण की पृथ्वी आई जहाँ देवताओं के बिचरने के स्थान हैं उनको भी वे लाँघते गये । आगे लोकालोक पर्वत आया जिसने सर्व पृथ्वी को आवरण किया है-जैसे वृक्षों से वन का आवरण होता है, तैसे ही उस पर्वत ने पञ्चाशत्कोटि योजन पृथ्वी को आवरण किया है और पचास हजार योजन ऊँचा है- वे उस लोकालोक पर्वत में पहुँचे जहाँ तारों का नक्षत्र चक्र फिरता है उसको भी वे लाँघ गये । उसमें आगे एक शून्य नक्षत्र था सो महाशून्य था जहाँ पृथ्वी, जल आदिक तत्त्व कोई न था, एक शून्य आकाश है जहाँ न कोई स्थावर पदार्थ है, न कोई जंगम पदार्थ है, न कोई उपजे है, न कभी मिटे है उसको भी उन्होंने देखा । इसी प्रकार सम्पूर्ण भूगोल को उन्होंने देखा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भूगोल क्या है, किसके आश्रय है और उसके ऊपर क्या है? वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे गेंद होता है, तैसे भूगोल है और संकल्प के आश्रय है । सब ओर उसके आकाश है और सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र सहित चक्र फिरता है । हे राम जी! यह कोई वस्तु बुद्धि से नहीं बनी संकल्प से बनी है जो वस्तु बुद्धि से बनी होती है सो क्रम से स्थित होती है और यह तो विपर्ययरूप से स्थित है । पृथ्वी के चहुँफेर दशगुण जल है उससे परे दशगुणी अग्नि है, उसके उपरान्त दशगुणा वायु है और फिर ब्रह्माण्ड खप्पर है । वह खप्पर एक अधः को और एक ऊर्ध्व को गया है और उसके मध्य में जो पोल है वह आकाश है जो वज्रसार की नाईं है और अनन्तकोटि योजन का उसका विस्तार है । उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है, उसके उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है, पश्चिम दिशा में लोकालोक पर्वत है और ऊपर नक्षत्रचक्र फिरता है । जहाँ वह जाता है वहाँ प्रकाश होता है और जहाँ वह नहीं होता वहाँ तमरूप भासता है सो सब संकल्परचना है । जैसे बालक संकल्प से पत्थर का बट्टा रचे, तैसे ही चैतन्यरूपी बालक ने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है । हे रामजी! जैसे-जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है तैसे ही स्थित हुआ है । जहाँ पृथ्वी स्थित रची है वहाँ ही स्थित है और जहाँ खात रची है वहाँ खात ही है परन्तु जैसे स्वप्ने में अविद्यमान प्रतिभा होती है तैसे ही भूगोल है । हे रामजी! जिनको

www.tantrik-astrologer.in

ऐसा ज्ञान है कि सुमेरु में देवता और पूर्वादि दिशाओं में मनुष्य आदि जीव रहते हैं व पण्डित हैं तो भी मूर्ख हैं, क्योंकि ये तो भ्रममात्र हैं कुछ बने नहीं । जो हमसे आदि लेकर तत्त्ववेत्ता हैं उनको ज्ञाननेत्र से आत्म सत्ता ज्यों की त्यों भासती है और जो मन सहित षट्इन्द्रियों से अज्ञानी देखते हैं उनको जगत् भासता है । ज्ञानवानों को परब्रह्म सूक्ष्म ज्यों का त्यों भासता है और जगत् को वे असत् जानते हैं । जैसे आकाश में अनहोती नीलता भासती है, तैसे ही आत्मा में अनहोता जगत् भासता है । जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसे ही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है । हे रामजी! जगत् उपजा भी दृष्टि आता है और नष्ट होता भी दृष्टि आता है परन्तु बना कुछ नहीं । जैसे संकल्प का रचा नगर अपने मन में भासता है, तैसे ही यह जगत् मन में फुरता है । यह सम्पूर्ण भूगोल संकल्प में स्थित है । जैसे बालक संकल्प करके पत्थर का बट्टा रचे तैसे ही भूगोल है । यह ब्रह्माण्ड सौ कोटि योजन पर्यन्त है । उसका एक भाग अधः को गया है और एक ऊर्ध्व को गया है, उसमें चैतन्यरूपी बालक ने यह भूगोल रचा है सो संकल्प के आश्रय खड़ा है । जैसे आदि नीति हुई है, तैसे ही भासता है । इस पृथ्वी के उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत है, पश्चिम दिशा की ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारों और नक्षत्रों का चक्र फिरता है, लोकालोक के जिस ओर वह जाता है उस ओर प्रकाश होता है । भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है और इसके एक ओर पाताल है, एक ओर स्वर्ग है, एक ओर मध्यमण्डल है और आकाश सर्व ओर है । आकाशवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व हैं और मध्यवासी जानते हैं कि हम ऊर्ध्व है । इस प्रकार भूगोल है और उसके ऊपर महातमरूप एक शून्य खात है । जहाँ न पृथ्वी है, न कोई पहाड़ है, स्थावर है न जंगम है और न कुछ उपजा है । उसके ऊपर एक सुवर्ण की दीवार है जिसका दश सहस्त्र योजन विस्तार है और उसके ऊपर दशगुणा जल है सो पृथ्वी को चहुँ फेर से घेरे हैं, उससे परे दशगुण अग्नि है, फिर दशगुण वायु है और उसके आगे आकाश है । फिर ब्रह्माकाश महाकाश है जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं परन्तु ये तत्त्व जैसे तृण के आश्रय कपूर ठहरता है तैसे ही पृथ्वीभाग के आश्रय ठहरे हैं । वास्तव में शुद्ध चैतन्य ब्रह्म का चमत्कार है जो आकाशवत् निर्मल है और उसमें कोई क्षोभ नहीं है, परमशान्त, अन्त और सर्व का अपना आप है । हे रामजी! अब फिर विपश्चित् की वार्ता सुनो । जब वे लोकालोक पर्वत पर जा स्थित हुए तब एक शून्य खात (खाई) उनको दृष्ट आया और पर्वत से उतरकर खात में वे जा पड़े । वह खात भी पर्वत के शिखर पर था और वहाँ शिखर की नाईं बड़े बड़े पक्षी भी रहते थे इस कारण उन पक्षियों ने चोंचों से इनके शरीर चूर्ण किये, तब उन्होंने अपने स्थूल शरीर को त्यागकर अपना सूक्ष्म अन्त वाहक शरीर जाना । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधिभौतिक कैसे होती है और अन्तवाहक क्या है? फिर उन्होंने क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तैसे कोई संकल्प से दूर से दूर चला जावे तो जिस शरीर से जावे वह अन्तवाहक है और जो पाञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष भासता है सो आधिभौतिक है । जब मार्ग से कहीं जाने को चित्त का संकल्प उठता है तब स्थूल शरीर से गए बिना नहीं पहुँच सकता और जब मार्ग में चले तब पहुँचता है सो ही आधिभौतिक है और यह प्रमाद से होता है । जैसे रस्सी के झूलने से सर्प भासता है, तैसे ही आत्मा के अज्ञान से आधिभौतिक शरीर भासता है और जैसे कोई मनोराज का पुर बना के उसमें आप भी एक शरीर बनकर चेष्टा करता फिरे तो उसे जब तक पूर्व का शरीर विस्मरण नहीं हुआ तब तक वह संकल्प शरीर से चेष्टा करता है सो अन्तवाहक है । उस शरीर को संकल्पमात्र जानना-विशेष बुद्धि कहाती है । आत्मबोध हुए बिना जो उस संकल्पशरीर में दृढ़ भावना होती है तो उसका नाम आधि भौतिक होता है-सो घट बढ़ कहाता है । इससे जब तक शरीर का स्मरण है तब तक आधि-

www.tantrikastrologer.in

भौतिकता निवृत्त नहीं होती और जब शरीर का विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता मिट जाती है । विपश्चित् आत्मबोध से रहित थे और जहाँ चाहते थे वहाँ चले जाते थे पर स्वरूप से न कुछ अन्तवाहक है और न कुछ आधिभौतिक है, प्रमाद से ये सब आकार भासते हैं । वास्तव में सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी सब वही है और उसी के प्रमाद से विपश्चित् अविद्यक जगत् को देखने चले थे । वह अविद्या भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं– ब्रह्म ही है तो ब्रह्म का अन्त कहाँ आवे । वहाँ से वे चले परन्तु जानें कि हमारा अन्तवाहक शरीर है । निदान वे सब पृथ्वी को लाँघ गये । फिर जल को भी लाँघ गये और उसके परे जो सूर्य व दाहक अग्नि का आवरण प्रकाशवान् है तिसको भी लाँघकर मेघ और वायु के आवरण को भी लाँघे । फिर आकाश को भी लाँघ गये तो उसके परे ब्रह्माकाश था जहाँ उनको संकल्प के अनुसार फिर जगत् भासने लगा पर उसको भी लाँघे । फिर आगे ब्रह्माकाश मिला और फिर उनको पञ्चभूत भासि आये, उसके आवरण को भी लाँघ गये । फिर उस ब्रह्माण्डकपाट के परे तत्त्वों को लाँघकर ब्रह्माकाश आया, उसमें एक और पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्ड था । उसको भी लाँघ गये पर अन्त न पाया । स्वरूप के प्रमाद से दृश्य के अन्त लेने को वे भटकते फिरे पर अविद्यारूप संसार का अन्त कैसे आवे? यह जीव तब तक अन्त लेने को भटकता फिरता है जब तक अविद्या नष्ट नहीं होती, जब अविद्या नष्ट होगी तभी अविद्यारूप संसार का अन्त होगा । हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं वही ब्रह्माकाश ज्यों का त्यों स्थित है और उसका न जानना ही संसार है । जब तक उसका प्रमाद है तब तक जगत् का अन्त न आवेगा और जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब अन्त आवेगा । सो वह जानना क्या है? चित्त को निर्वाण करना ही जानना है । जब चित्त निर्वाण होगा तब जगत् का अन्त आवेगा । जब तक चित्त भटकता फिरता है तब संसार का अन्त नहीं आता । इससे चित्त का नाम ही संसार है । जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा तब जगत् का अन्त होगा इस उपाय बिना शान्ति नहीं प्राप्त होती ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिदुपाख्यानवर्णनंनाम द्विशताधिकविंशतिस्सर्गः ।।220।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

विपश्चिच्छरीरप्राप्तिर्नाम

रामजी ने पूछा,हे भगवन्! वे जो दो विपश्चित् थे उनकी क्या दशा हुई, यह भी कहो । वे तो दोनों एक ही थे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्माण्डों को लाँघता लाँघता और एक ब्रह्माण्ड में गया तब वहाँ उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ और उनकी संगति से उसको ज्ञान प्राप्त हुआ । ज्ञान को पाकर वह भी निर्वाण हो गया । एक अब तक दूर फिरता है और यहाँ एक पहाड़ की कन्दरा में मृग होकर बिचरता हे । हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभास है । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है और जब तक किरणें हैं तबतक जलाभास निवृत्त नहीं होता, तैसे ही जब तक आत्मसत्ता है तब तक जगत् का चमत्कार निवृत्त नहीं होता और आत्मा के जाने से जगत् सत्ता नहीं रहती । जैसे किरणों के जाने से जलाभास नहीं रहता और जो जल भासता है तो भी किरणों ही की सत्ता भासती है, तैसे ही आत्मा के जाने से आत्मा की सत्ता ही भासती है-भिन्न जगत् की सत्ता नहीं भासती । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! विपश्चित् एक ही था तो एक ही संवित् में भिन्न भिन्न वासना कैसे हुई? एक मुक्त हो गया, एक मृग होकर फिरता रहा और एक आगे निर्वाण हो गया-यह भिन्नता कैसे हुई? संवित् तो एक ही थी उसमें कम और अधिक फल कैसे हुए सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वासना जो होती है सो देशकाल और पदार्थों से होती है । उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होती है । जैसे एक पुरुष ने मनोराज से अपनी चार मूर्त्तियाँ कल्पीं और उनमें भिन्न भिन्न वासना स्थापित की पर संवित् तो एक है, यदि पूर्व का शरीर भूलकर उसमें दृढ़ हो गये तो जैसी जैसी भावना उनके शरीर में दृढ़ होती है वही प्राप्त है, तैसे ही संवित् में नाना प्रकार की वासना फुरती हैं । जैसे एक ही संवित् स्वप्ने में नाना प्रकार धारती है और भिन्न भिन्न वासना होती है, तैसे ही आकाशरूप संवित् में भिन्न भिन्न वासना होती है । हे रामजी! संवित् उनकी एक थी परन्तु देश, काल और क्रिया से वासना भिन्न भिन्न हो गई और पूर्व की संवित् स्मृति भूल गई उससे उन्होंने न्यून और अधिक फल पाये । वह संवित् क्या रूप है? हे रामजी! देश से देशान्तर को जो संवेदन जाती है उसके मध्य जो संवित्तसत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है । जैसे जाग्रत के आकार को छोड़ा और स्वप्ना नहीं आया उसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है वह किञ्चनरूप जगत् होकर भासती है परन्तु किञ्चन भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं! वह एक है न दो है, एक कहना भी नहीं होता तो दो कहाँ हो और जगत् कहाँ हो? यही अविद्या है कि है नहीं और भासती है । जैसी जैसी वासना फुरती है उसमें जो दृढ़ होती है उसकी जय होती है । इस कारण एक विपश्चित् जनार्दन (विष्णु) के स्थान में निर्वाण हो गया और दूसरा दूर से दूर ब्रह्माण्ड को लाँघता गया और उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ जिससे ज्ञान उदय होकर वासना मिट गई और उसका अज्ञान नष्ट हो गया । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नष्ट हो जाता है, तैसे ही जब उसका अज्ञान नष्ट हो गया तब वह उस पद को प्राप्त भया जिसके अज्ञान से दूर से दूर भटकता है । तीसरा दूर से दूर भटकता फिरता है और चौथा पहाड़ की कन्दरा में मृग होकर बिचरता है । हे राम जी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञान के वश से भटकता है इसलिये अज्ञान ही जगत् है जबतक अज्ञान है तबतक जगत् है । जब ज्ञान उदय होता है तब वह अज्ञान को नाश करता है और तभी जगत् का अभाव हो जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो मृग हुआ है सो कहाँ कहाँ फिरा है और कहाँ कहाँ स्थित हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दो ब्रह्माण्ड को लाँघते दूर से दूर चले गये थे, उनमें से एक अब तक चला जाता है और पृथ्वी, समुद्र, वायु आकाश उसकी संवित् में फुरते हैं । यह तो दूर से चला गया है और

www.tantrik-astrologer.in

हमारी आधिभौतिक दृष्टि का विषय नहीं और एक ब्रह्माण्ड को लाँघता गया था पर अब इस जगत् में पहाड़ की कन्दरा का मृग हुआ है सो हमारी इस दृष्टि का विषय है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तो दूर गये थे और उनमें से एक इस जगत् में अब मृग हुआ है, तुमने कैसे जाना कि आगे वह ब्रह्माण्ड में था और अब इस जगत् में है? वशिष्ठजी बोले हे रामजी!मैं ब्रह्म हूँ और सर्व ब्रह्माण्ड मेरे अंग हैं । मुझको सबका ज्ञान है । जैसे अवयवी पुरुष अपने अंगों को जानता है कि यह अंग फुरता है और यह नहीं फुरता, तैसे ही मैं सबको जानता हूँ । जहाँ जहाँ यह लाँघता गया है उसे बुद्धि के नेत्रों से मैं जानता हूँ परन्तु तुम नहीं जान सकते । जैसे समुद्र में अनेक तरंग फुरते हैं और समुद्र सबको जानता है, तैसे ही मैं समुद्ररूप हूँ और मेरे में ब्रह्माण्डरूपी तरंगें हैं इससे मैं सबको जानता हूँ । हे रामजी! वह जो मृग है सो दूर ब्रह्माण्ड में फिरता है । वह विपश्चित् यह सामान्य मृग नहीं है परन्तु जैसा है सो सुनो! हे रामजी! एक ब्रह्माण्ड इस हमारे ब्रह्माण्ड सा है जिसका ऐसा ही आकार है, ऐसी ही चेष्टा है, एक ही सा जगत् है और स्थावर-जंगम सब एक ही से हैं । वहाँ जो देश, काल और क्रिया का बिचरना होता है सो इसके ही समान होता है । जैसे नामरूप आकार यहाँ होते हैं, जैसे बिम्ब का प्रतिबिम्ब तुल्य ही होता है और जैसे एक ही आकार का एक प्रतिबिम्ब जल में होता है और द्वितीय दर्पण में होता है सो दोनों तुल्य हैं, तैसे ही दोनों ब्रह्माण्ड एक समान हैं और ब्रह्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित होते हैं । इस कारण यह मृग विपश्चित् है इसी निश्चय को धारे हुए है यह और वह दोनों तुल्य हैं सो पहाड़ की कन्दरा में हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह विपश्चित् अब कहाँ है और उसका क्या आचार है? अब मैं जानता हूँ कि उसका कार्य हुआ है । अब चलकर मुझको दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञानफाँस से मुक्त करो । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे अंग! जब रामजी ने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जहाँ तुम्हारा लीला का स्थान है और तुम क्रीड़ा करते हो उस ठौर में वह मृग बाँधा हुआ है । यह तुमको तिरगदेश के राजा ने दिया है सो बहुत सुन्दर है इस कारण तुमने उसे रखा है । उसको मँगाओ । तब रामजी ने अपने सखाओं से, जो निकटवर्ती थे, कहा कि उस मृग को सभा में ले आओ । हे राजन्! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब वे सभा में उस मृग को ले आये और जितने श्रोता सभा में बैठे थे वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए । वह मृग बड़ी ग्रीवा किये महासुन्दर और कमल की नाईं नेत्रवाला था, कभी वह घास खाने लगे, कभीं सभा में खेले और कभी ठहर जावे । तब रामजी ने कहा, हे भगवन्! आप इसको कृपा करके मनुष्ययोनि को प्राप्त कीजिये और उपदेश करके जगाइये कि हमारे साथ प्रश्न-उत्तर करे, अभी तो यह प्रश्न-उत्तर नहीं करता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसको उपदेश न लगेगा, क्योंकि जिसका कोई इष्ट होता है उसी से उसको सिद्धि होती है, इससे मैं इसके इष्ट को ध्यान करके बुलाता हूँ- उससे इसका कार्य सिद्ध होगा । बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्? इस प्रकार कहकर वशिष्ठजी ने कमण्डलु हाथ में लेकर तीन आचमन किया और पद्मासन बाँध, नेत्र मूँद और ध्यान में स्थित होकर अग्नि का आवाहन किया । हे वह्ने! यह तेरा भक्त है इसकी सहायता करो इस पर दया करो । तुम सन्तों का दयालु स्वभाव है । जब ऐसे वशिष्ठजी ने कहा तब सभा में बड़े प्रकाश धारे अग्नि की ज्वाला काष्ठ अंगार से रहित प्रकट हुई और जलने लगी । जब ऐसे अग्नि जागी तब वह मृग उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके चित्त में बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई । तब वशिष्ठजी ने नेत्र खोलकर अनुग्रह सहित मृग की ओर देखा ।उससे उसके सम्पूर्ण पाप दग्ध हो गये । वशिष्ठजी ने अग्नि से कहा, हे भगवन्, वह्ने! यह तेरा भक्त है । अपनी पूर्व की भक्ति स्मरण करके इस पर दया करो और उसके मृगशरीर को दूर करके इसको विपश्चित् शरीर दो कि यह अविद्याभ्रम से

www.tantrik-astrologer.in

मुक्त हो । हे राजन्! इस प्रकार वशिष्ठजी अग्नि से कहकर रामजी से बोले, हे रामजी! अब यही मृग अग्नि में प्रवेश करेगा तब इसका मनुष्यशरीर हो जावेगा । ऐसे वशिष्ठजी कहते ही थे कि अग्नि को वह मृग देखकर एक चरण पीछे को हटा और उछलकर अग्नि में प्रवेश कर गया । जैसे बाण निशान में आ प्रवेश करते हैं, तैसे ही उसने प्रवेश किया । हे राजन्! उस मृग को कुछ खेद न हुआ बल्कि उसको अग्नि आनन्दरूप दृष्टि आया । तब उसका मृगशरीर अन्तर्धान हो गया और महाप्रकाशरूप मनुष्यशरीर को धारे अग्नि से निकला । जैसे कपड़े के ओढ़े से स्वाँगी स्वाँग धारण कर निकल आता है, तैसे ही वह निकल आया और अति सुन्दर वस्त्र पहिरे हुए, शशि पहिरे हुए, शीश पर मुकुट, कण्ठ, में रुद्राक्ष की माला और यज्ञोपवीत धारण किये था । अग्निवत् वह तेजवान् था किन्तु सभा में जो बैठे थे उनसे भी अधिक उसका तेज था मानो अग्नि को भी लज्जित किया है । जैसे सूर्य के उदय हुए चन्द्रमा का प्रकाश लज्जित हो जाता है, तैसे ही वह सर्व से प्रकाशवान् हो गया । फिर जैसे समुद्र से तरंग निकलकर लीन हो जाता है, तैसे ही वह अग्नि अन्तर्धान हो गये । उसको देखकर रामजी आश्चर्य को प्राप्त हुए और सर्वसभा विस्मय को प्राप्त हुई । तब बड़े प्रकाश को धारनेवाला विपश्चित् निकलकर ध्यान में लग गया और विपश्चित् से आदि लेकर इस शरीरपर्यन्त सर्व शरीर स्मरण करके नेत्र खोल वशिष्ठजी के निकट आ साष्टांग प्रणाम कर बोला, हे ब्राह्मण! ज्ञान के सूर्य और प्राण के दाता! तुमको मेरा नमस्कार है । जब इस प्रकार उसने कहा तब वशिष्ठजी ने उसके शिर पर हाथ रखा और कहा, हे राजन्! तू उठ खड़ा हो । अब मैं तेरी अविद्या दूर करूँगा और तू अपने स्वरूप को प्राप्त होगा । तब राजा विपश्चित् ने उठकर राजा दशरथ को प्रणाम किया और बोला, हे राजन्! तेरी जय हो । तब राजा दशरथ ने अपने आसन से उठकर कहा, हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहे हो अब यहाँ मेरे पास बैठो । तब राजा विपश्चित् विश्वा मित्र आदिक जो ऋषि बैठे थे उनको यथायोग्य प्रणाम करके बैठ गया और राजा दशरथ ने विपश्चित् को, जो बड़े प्रकाश को धारे हुए था, भास कहके बुलाया और कहा, हे भास! तुम संसारभ्रम के लिये चिरकाल फिरते रहे हो, थके होगे अब विश्राम करो जो देश काल क्रिया की हैं और देखा है सो कहो! यह आश्चर्य है कि अपने मन्दिर में सोये हो और निद्रादोष से गढ़े में गिरते फिरे और देश देशान्तरों को भटकते फिरे । यही अविद्या है ।हे भास! जैसे वन का विचरनेवाला हाथी जंजीर से बन्धायमान हुआ दुःख पाता है, तैसे ही तुम विपश्चित् भी थे और अविद्या से जगत् के देखने के निमित्त भटकते रहे । हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं है पर भासता है यही माया है । जैसे भ्रम से आकाश में नाना प्रकार के रंग भासते हैं तैसे ही अविद्या से यह जगत् भासते हैं और सत्य प्रतीत होते हैं पर सब आकाशरूप ही आकाश में स्थित हैं । उस आकाश में जो कुछ तुमने आत्मरूपी चिन्तामणि के चमत्कार से देखा है सो कहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिच्छरीरप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः ||221||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

बटधानोपाख्यान वर्णन

दशरथजी बोले, हे भास! बड़ा आश्चर्य है कि तुम विपश्चित् बुद्धिमान थे और चेष्टा से तुमने अविपश्चित् बुद्धि की है जो अविद्या के देखने को समर्थ हुए थे । यह जगत्् प्रतिभा तो मिथ्या उठी है, असत्य के ग्रहण की इच्छा तुमने क्यों की? बाल्मीकिजी बोले, हे राजन! जब इस प्रकार राजा दशरथ ने कहा तब प्रसंग पाकर विश्वामित्र बोले, हे राजन्, दशरथ! यह चेष्टा वही करता है जिसको परम बोध नहीं होता और केवल मूर्ख और अज्ञानी भी नहीं होता, क्योंकि जिसको परमबोध और आत्मा का अनुभव होता है वह जगत् को अविद्यक जानता है और उस अविद्यक जगत् के अन्त लेने को इतना यत्न नहीं करता, क्योंकि वह तो असत्य जानता है और जो देहअभिमान मूर्ख अज्ञ है वह भी यह यत्न नहीं करता, क्योंकि उसको देखने की सामर्थ्य भी नहीं होती । इससे मध्य भावी है । जो आत्मबोध से रहित है और जिसने आधिभौतिक शरीर त्याग किया है वही संसार देखने का यत्न करता है और जिनको उत्तम बोध नहीं हुआ वे इस प्रकार बहुत भटकते फिरते हैं । हे राजन्! इसी प्रकार बट धाना भी इसी ब्रह्माण्ड में फिरते हैं । सत्तर लक्ष वर्ष उनके व्यतीत हुए हैं कि इसी ब्रह्माण्ड में फिरते हैं । उनने भी यही निश्चय धारा है कि पृथ्वी कहाँ तक चली जाती है । इस निश्चय से वह निवृत्त नहीं होते और इसी ब्रह्माण्ड में भ्रमते हैं और उनको अपनी वासना के अनुसार विपरीत और ही औरस्थान भासते हैं । हे राजन्! जैसे किसी बालक का रचा संकल्प का वृक्ष आकाश में हो, तैसे ही यह भूगोल ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है और संकल्प से गेंद के समान आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पाँचों तत्त्वों का ब्रह्माण्ड रचा है और उसके चौफेर चींटियाँ फिरती हैं, जिस ओर से वे जाती हैं सो ऊर्ध्व भासता है सो और ही और निश्चय होता है, तैसे ही यह संकल्प के रचे भूगोल के किसी कोण में बटधाना जीव हुआ है । हे राजन्! उसके तीन पुत्र थे, उनको यह संकल्प उदय हुआ कि हम जगत् का अन्त देखें । इसी संकल्प से फिरते फिरते पृथ्वी लाँघते है फिर पृथ्वी और जल आता है जल लाँघते हैं फिर आकाश आता है फिर पृथ्वी, जल वायु फिर उसी भूगोल के चहुफेर फिरते रहे । जैसे आकाश में गेंद हो तैसे ही यह पृथ्वी आकाश में है और इसका अध-ऊर्ध्व कोई नहीं । चरण अध शिर ऊर्ध्व उसी के चौफेर घूमते रहे परन्तु अपने निश्चय से और का और जानते रहे । जबतक स्वरूप का प्रमाद है तबतक जगत् का अभाव नहीं होता और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब जगत् ब्रह्मरूप हो जाता है । जगत् कुछ वन नहीं, फुरने में भासता है जैसे स्वप्ने में अज्ञान से अनन्त जगत् दीखते हैं कि यह फुरना परब्रह्म में हुआ है और जो फुरने में है सो भी परब्रह्म है और कुछ बना नहीं-आत्मसता ही अपने आपमें स्थित है । जैसे पत्थर की शिला घनरूप होती है, तैसे ही आत्मतत्त्व चैतन्यघन है । जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं । सब कल्पना परब्रह्मरूप है और ब्रह्म ही कल्पना रूप है । इस जड़ और चैतन्य में कुछ भेद नहीं । हे राजन्! जिसको जगत् शब्द से कहते हो वह ब्रह्मसत्ता ही है । न कुछ उत्पन्न हुआ है और न प्रलय होता है-सर्व ब्रह्म ही है । जैसे पहाड़ में पत्थर से इतर कुछ नहीं होता, तैसे ही यह जगत् ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं । जैसे पाषाण की पुतली पाषाणरूप ही है, तैसे ही जगत् ब्रह्मरूप ही है एक सूक्ष्म अनुभव अणु से अनेक अणु होते हैं, जैसे एक पहाड़ से अनेक शिला होती है । हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार हो भासता है । जगत् कुछ वस्तु नहीं है परन्तु जबतक संकल्प है तब तक जगत् फुरता है । जैसे रत्नों का चमत्कार होता है, तैसे ही जगत् आत्मा का चमत्कार है और

www.tantrik-astrologer.in

चैतन्य आत्मा के आश्रय अनन्त सृष्टियाँ फुरती हैं सो सृष्टि सब आत्मरूप हैं आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । जो जाग्रत पुरुष ज्ञानवान् हैं उनको ब्रह्मरूप ही भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है । हे राजन्! कई एक इसको शून्य कहते हैं कि शून्य ही है और कुछ नहीं, कई इसको जगत् कहते हैं और कई ब्रह्म कहते हैं । जैसा किसी को निश्चय होता है उसको वही रूप भासता है । आत्मरूपी चिन्ता मणि है जैसा जैसा संकल्प उसमें फुरता है तैसा तैसा ही भासता है । सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है जैसा जैसा उसमें निश्चय होता है तैसा ही तैसा होकर भासता है और दृष्टा, दर्शन, दृश्य-त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्म होकर भासती है द्वितीय कुछ वस्तु नहीं और जो कुछ जगत् भासता है वही अज्ञान है । हे राजन्! जबतक वासना नष्ट नहीं होती तबतक दुःख भी नहीं मिटते और जब वासना मिट जावे- तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासे और रागद्वेष किसी में नहीं रहे । जैसे स्वप्न में नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं जब पूर्व का स्वरूप स्मरण आता है तो सर्वरूप आप हो जाता है और रागद्वेष मिट जाता है, तैसे ही ज्ञानवान् को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासता है और विकार से रहित होता है । पूर्व, अपूर्व और अपर को विचारना कि यह शुभ है और यह अशुभ है, अशुभ को त्याग करना यह गौण विचार है । जबतक पूर्वापर मन में रहता है तबतक जगत् में भटकता है और बाँधा रहता है, क्योंकि शुभ-अशुभ दोनों जगत् में है जब इसका विस्मरण हो जावे और सम्पूर्ण जगत् को भ्रममात्र जानकर आत्मपद में सावधान हो तब मुक्त होता है । इस जीव को अपनी वासना ही बन्धन का कारण है । जब तक जगत् में वासना होती है तबतक रागद्वेष उपजता है और उससे बँधा रहता है । जिनको जगत् के सुख दुःख में रागद्वेष की भावना नहीं उपजती और जिनकी वासना भी नष्ट होती है उनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप ही भासता है और जगत् में दुःखदायक कुछ नहीं भासता । उनको सब ब्रह्म ही भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बटधानोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः ||222||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विपश्चितत्‌कथा वर्णन

दशरथजी ने विपश्चित्‌ से पूछा, हे भास, तुम चिरकाल पर्यन्त जगत्‌ में फिरते रहे हो जिस प्रकार तुमने चेष्टा की है और जो देश, काल, पदार्थ देखे हैं सो सब ही कहो । भास बोले, हे राजन्! मैं जगत्‌ को देखता फिरा हूँ और फिरता थक गया हूँ परन्तु देखने की जो इच्छा थी इस कारण मुझको दुःख नहीं हुआ है । जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है सो कहता हूँ । हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारे हैं , और बहुत बार मृतक हुआ हूँ; बहुत बेर शाप पाया है, ऊँच नीच जन्म धारे हैं और मर मर गया हूँ और बहुत ब्रह्माण्ड देखे हैं परन्तु यह सब अग्नि देवता के वर से देखे हैं । एक बार मैं वृक्ष हुआ और सहस्त्र वर्ष पर्यन्त फूल, फल, टास, संयुक्त रहा । जब कोई काटे तब मैं दुःखी होऊँ और मेरे हृदय में पीड़ा होवे । फिर वहाँ से शरीर छूटा तब मैं सुमेरु पर्वत पर सुवर्ण का कमल हुआ और वहाँ का जलपान किया । फिर एक देश में पक्षी हुआ और सौ वर्ष पक्षी रहकर फिर सियार हुआ और मुझे हस्ती ने चूर्ण किया इससे मृतक होकर फिर सुमेरु पर्वत पर सुन्दर मृग हुआ और देवता और विद्याधर मेरे साथ प्रीति करने लगे । कुछ काल में मरकर फिर देवताओं के वन में मञ्जरी हुआ और वहाँ देवियाँ और विद्याधरियाँ मुझको स्पर्श करें और सुगन्ध लें तब मैं देवताओं की स्त्री हुआ, फिर सिद्ध हुआ और मेरा वचन फुरने लगा, फिर मैंने और शरीर धारा और एक ब्रह्माण्ड लाँघ गया । इसी प्रकार कई ब्रह्माण्ड मैं लाँघ गया तब एक ब्रह्माण्ड में जो आश्चर्य देखा है सो सुनो । वहाँ मैंने एक स्त्री देखी जिसके शरीर में कई ब्रह्माण्ड थे । इससे मैं आश्चर्यवान्‌ हुआ और देश काल क्रिया से पूर्ण कई त्रिलोकी देखीं । जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दृष्टि आता है, तैसे ही मुझको उसमें जगत्‌ भासे । तब मैंने उससे कहा, हे देवि! तुम कौन हो और यह तेरे शरीर में क्या है? देवी बोली, हे साधो! मैं शुद्ध चित्‌शक्ति हूँ और यह सब मेरे अंग मेरे में स्थित है । मेरी क्या बात पूछनी है-यह सब जगत्‌ जो तू देखता है चिद्रूप है, चैतन्य से भिन्न और कुछ नहीं और सबमें ब्रह्माण्ड (त्रिलोकी) स्थित है जो अपना आप ही है । जो अपने स्वभाव में स्थित हैं उनको अपने ही में ये भासते हैं और जो स्वरूप में स्थित नहीं हैं उनको जगत्‌ बाहर और आपसे भिन्न भासते हैं । हे राजन्! यह जगत्‌ कुछ बना नहीं । जैसे स्वप्न की सृष्टि और गन्धर्वनगर भासता है, तैसे ही आत्मा में जगत्‌ भासता है और जैसे जल में तरंग भासता है सो जलरूप है-तरंग कुछ भिन्न वस्तु नहीं होते, तैसे ही सब जगत्‌ चिद्रूप में भासता है सो चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं परन्तु जब स्वभाव में स्थित होकर देखोगे तब ऐसे ही भासेगा और जो अज्ञानदृष्टि से देखोगे तो नाना प्रकार का जगत्‌ दृष्टि आवेगा । हे राजन्, दशरथ! जब इस प्रकार उस देवी ने मुझसे कहा तब मैं वहाँ से चला और आगे दूसरी सृष्टि में गया तो देखा कि वहाँ सब पुरुष ही रहते हैं, स्त्री कोई नहीं और पुरुष से पुरुष उत्पन्न होते हैं । उससे भी आगे और सृष्टि में गया तो वहाँ न सूर्य था, न चन्द्रमा था, न तारे थे, न अग्नि थी, न दिन था और न रात्रि थी । जैसे चन्द्रमा, सूर्य और तारों का प्रकाश होता है, तैसे ही सब अपने प्रकाश से प्रकाशते थे । उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया तो वहाँ क्या देखा कि आकाश ही से जीव उत्पन्न होकर आकाश ही में लीन होते हैं और इकट्ठे ही सब उपजते और इकट्ठे ही सब लीन हो जाते हैं, न वहाँ मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत्‌ है-इनसे विलक्षण ही प्रकार है । हे राजन्! इस प्रकार मैंने कई सृष्टियाँ देखी हैं जो मुझको स्मरण आती हैं । आगे और सृष्टि में गया तो वहाँ क्या देखा कि सब जीव एक ही समान हैं न किसी को रोग है और न किसी को दुःख है-सब एक से गंगा के तीर पर बैठे हैं । हे राजन्! एक और आश्चर्य

www.tantrik-astrologer.in

मैंने देखा है सो भी सुनो । एक सृष्टि में मैं गया तो वहाँ क्षीरसमुद्र मन्दराचल से मथा जाता था । एक ओर विष्णु भगवान् और देवता थे और मन्दराचल पर्वत रत्नों से जड़ा हुआ शेषनाग से रस्सी की नाईं लिपटा हुआ था, मथने के निमित्त दूसरी ओर दैत्य लगे थे बड़ा सुन्दर शब्द होता था । वहाँ वह कौतुक देखकर मैं आगे गया तो एक और सृष्टि देखी जहाँ मनुष्य आकाश में उड़ते फिरते थे और देवता की नाईं पृथ्वी पर बिचरते और वेदशास्त्र जानते थे । हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा सो भी सुनो एक सृष्टि में मैं जा निकला तो वहाँ मन्दराचल पर्वत पर कल्पतरु का बन था और उसमें मदनका नाम एक अप्सरा रहती थी । वहाँ जाकर मैं सो रहा तो ज्यों ही रात्रि का समय आया कि वह अप्सरा मेरे कण्ठ में आ लगी तब मैंने जागकर उसको देखा और कहा कि हे सुन्दरी! तूने मुझको किस निमित्त जगाया? मैं तो सुख से सो रहा था । तब उस अप्सरा ने कहा कि हे राजन्! मैंने इस निमित्त तुझको जगाया है कि चन्द्रमा उदय हुआ है और चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमा को देखकर स्रवेगी और नदी की नाईं प्रवाह चलेगा, ऐसा न हो कि उसमें तू बह जावे । हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार उसने कहा ही था कि नदी का प्रवाह चलने लगा । तब वह अप्सरा उस प्रवाह को देखकर मुझे आकाश को ले उड़ी- और पर्वत के ऊपर जहाँ गंगा का प्रवाह चलता था उसके तट पर मुझको स्थित किया । सात वर्ष पर्यन्त मैं वहाँ रहकर फिर एक और ब्रह्माण्ड में गया तो देखा कि वहाँ तारा नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य कुछ भी न थे । उसको देखकर मैं और आगे गया । इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड मैंने देखे। हे राजन्! ऐसा देश व ऐसी पृथ्वी, नदी और पहाड़ कोई न होगा जिसको मैंने न देखा हो और ऐसी चेष्टा कोई न होगी जो मैंने न की हो । कई शरीरों के मैंने सुख भोगे हैं, कितनों के दुःख भोगे हैं और बन, कन्दरा और गुप्त स्थानों में फिरकर सब देखा परन्तु अग्नि देवता के वर को पाकर फिरता-फिरता मैं थक गया तो भी आगे ही चला गया और अनेक अविद्यक ब्रह्माण्ड भी देखे परन्तु अब उनका अन्त आया है कि यह जगत् भ्रममात्र है । मैंने शास्त्रों में सुना है कि यह जगत् है नहीं तो भी दुःख देता है । जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है, तैसे ही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार किये से निवृत्त हो जाता है । एक आश्चर्य और सुनो कि एक ब्रह्माण्ड में मैं गया तो वहाँ महाआकाश था । उस महाआकाश से गिरकर मैं पृथ्वी पर आन पड़ा और वहा सो गया, तब मैं महागाढ़ सुषुप्तिरूप हो गया और सब जगत् का मुझे विस्मरण हो गया जब वह गाढ़ सुषुप्ति क्षीण हुई तब एक स्वप्ना आया और उसमें तुम्हारा यह जगत् मुझको भासि आया । उसमें मुझको पहाड़, कन्दरा, देश और बहुत से गुप्त, प्रकट स्थान भासि आये । जहाँ केवल सिद्धों की गम थी वहाँ भी मैं गया और जहाँ सिद्धों की भी गम न थी वहाँ भी मैं गया । इस प्रकार अनेक जगत् मैंने देखे परन्तु आश्चर्य है कि स्वप्ने की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत की तरह दृष्टि आती थी और स्वप्ने के शरीर में पड़े भासते थे । इससे सब जगत् भ्रममात्र है और असत्य ही सत्य होकर दिखाई देता है । इस प्रकार देख कर मैं बड़े आश्चर्य में पड़ा हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितत्ꣳकथावर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः ।।223।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

महाशववृत्तान्त वर्णन

विपश्चित् बोले, हे राजन्! एक सृष्टि और भी मैंने देखी है जो इसी महाआकाश में है- अर्थात् इस महाआकाश से भिन्न नहीं और जहाँ तुम्हारा भी गम नहीं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि कोई जाग्रत में देखा चाहे तो दृष्टि नहीं आती तैसे ही वह सृष्टि है। हे राजन्! पृथ्वी का एक स्थान मेरे देखते ही देखते परछाहीं की नाईं फिरने लगा और फिर उस आकाश में वही पहाड़ की नाईं भासने लगा, यहाँ तक कि मनुष्यों के शरीर और दशों दिशाओं को रोक लिया और आकाश से भी बड़ा भासने लगा इससे आकाश में भी न समाता था। उसने सूर्य और चन्द्रमा को भी मेरे देखतेही देखते ढाँप लिया और फिर भूकम्प सा आया मानो प्रलयकाल ही आ गया। तब मैंने अपने इष्ट अग्निदेवता की ओर देखकर प्रार्थना की कि हे भगवन्! तुम मेरी जन्म-जन्म रक्षा करते आये हो इससे अब भी रक्षा करो, मैं नष्ट होता हूँ। तब अग्नि ने कहा, तू भय मत कर। फिर मैंने अग्नि में जब प्रवेश किया, तब अग्नि ने कहा कि मेरे वाहन पर सवार होकर मेरे स्थान को चल। फिर अग्निदेव मुझको अपने वाहन तोते पर चढ़ाकर आकाशमार्ग से तुरन्त ले उड़ा। जब हम उड़े तब पीछे से वह शव पृथ्वी पर गिरा और उसके गिरने से सुमेरु जैसे पर्वत भी पाताल को चले गये। वह महाशरीर सैकड़ों सुमेरु के समान गिरा और मन्दराचल, मलयाचल, अस्ताचल से लेकर जो बड़े-बड़े पर्वत थे सो भी नीचे को चले गये। पृथ्वी में गढ़े पड़ गये और उसके शरीर के नीचे जो वृक्ष, मनुष्य, दैत्य, स्थावर, जंगम आये वे सब नष्ट हो गये और बड़ा उपद्रव उदय हुआ। निदान उसके शरीर से सर्व दिशा पूर्ण हो गई और उसके अंग ब्रह्माण्ड से भी पार निकल गये। हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार मैं भयानक दशा को देख कर अपने इष्टदेव अग्नि से बोला कि हे देव! यह उपद्रव क्योंकर हुआ, यह सब क्या है और ऐसा शरीर क्यों पड़ा है? आगे तो कोई भी ऐसा शरीर नहीं देखा-सुना? अग्नि ने कहा तू अभी तूष्णी हो रह। यह सब वृत्तान्त मैं तुझसे कहूँगा पर प्रथम इसको शान्त होने दे। इस प्रकार अग्नि कहता ही था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व और सिद्ध जितने स्वर्गवासी थे वे सर्व आकर स्थित हुए- और विचार करने लगे कि यह उपद्रव प्रलयकाल बिना हुआ है इसके नाश करने को देवीजी की आराधना करनी चाहिये। हे राजन्! ऐसे विचार करके वे देवी की स्तुति करने लगे कि हे देवि शववाहिनि, चण्डिके! हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। ऐसे कहकर वे स्तुति करने लगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशववृत्तान्तवर्णनन्नाम द्विशताधिक- चतुर्विंशतितमस्सर्गः ।।224।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णन

विपश्चित् बोले, हे राजन्, दशरथ! उन देवताओं ने स्तुति करके शव की ओर जो देखा तो क्या देखते हैं कि सातों द्वीप उसके उदर में समा गये हैं, भुजाओं से सुमेर आदिक पर्वत ढप गये हैं और उसके दूसरे अंग ब्रह्माण्ड को भी ले हैं और साथ ही पाताल को भी गये । निदान उनकी मर्यादा कहीं पाई नहीं जाती थी । एक ही अंग से पृथ्वी छिप गई । ऐसे देखकर विद्याधर, गन्धर्व और सिद्धों से लेकर सम्पूर्ण नभचर स्तुति करने लगे । हे अम्बे, चण्डिके! अपने गण को साथ लेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो- हम तेरी शरण आये हैं । हे राजन्! जब इस प्रकार स्तुति करके देवता आराधन करने लगे तब चण्डिका आकाशमार्ग से यक्ष, वैताल भैरव आदिक गण अपने साथ लेकर आई और जैसे मेघ सर्व दिशाओं को ढाँप लेता है, तैसे ही सर्व ओर से उसके गणों ने आकार आकाश को ढाँप लिया और चण्डिका ऐसे तेजरूप को धारे हुए चली आती थी मानो अग्नि की नदी चली आती थी । उसके रक्त नेत्र शिर पर पक्के केश और श्वेत दाँत थे और वह बड़े शस्त्र धारे हुए कई कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार था । वह सब दिशा और आकाश अपने शरीर से आच्छादित किये, कण्ठ में मुण्डों की माला पहिने , मुरदे वाहन पर आरूढ़ और परमात्मपद में उसकी स्थित थी । वह ऐसे महाप्रकाशवान् थी मानों सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिक के प्रकाश को भी लज्जित कर रही है और हाथों में खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नाना प्रकार के शस्त्र धारे आकाश में तारागण की नाईं गर्जती हुई गणों सहित इस प्रकार चली आती थी मानो समुद्र से निकली साक्षात् बड़वाग्नि चली आती है । जब वह निकट आई तब देवता फिर प्रार्थना करने लगे कि हे अम्बे! इसका नाश करो व अपने गणों को आज्ञा दीजिये कि इसका भोजन करें, हम इसको देखकर बड़े शोक को प्राप्त हुए हैं और तेरी शरण हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो । हे राजन् , दशरथ जब इस प्रकार देवताओं ने कहा तब चण्डिका ने प्राणवायु को खींचा और जितना शव में रक्त था वह सब पान कर गई । जैसे समुद्र को अगस्त्य ने पान किया था, तैसे ही उसने रक्त पान किया । जब उससे देवी का उदर और अंग सब पूर्ण हो गये और नेत्र लाल हो आये तब देवी नृत्य करने लगी और उसके गण सब उस शव का भोजन करने लगे । कई मुख को खाने लगे, कई भुजा को कई उदर को, कई वक्षस्थल को, कई टाँगों को और कई चरणों को, इसी प्रकार उसके सब अंगों को गण भोजन करने लगे । कई गण आँतें लेकर आकाश में सूर्य के मण्डल को गये, कई गण उस शव के अन्त पाने को उड़े सो मार्ग ही में मर गये परन्तु कहीं अन्त न पाया और देवी जो उस शव की ओर देखती थी इससे उसके नेत्रों से अग्नि निकलती थी–और उससे माँस परिपक्व होता था और गण भोजन करते थे । माँस पकने के समय जो शरीर से रक्त निकलता था उससे मन्दराचल और हिमाचल पर्वत लाल हो गये–मानो पर्वतों ने भी लाल वस्त्र पहिरे हैं । रक्त की नदियाँ बहने लगीं और जो बड़े सुन्दर स्थान और दिशा थीं वे सब भयानक हो गईं और पृथ्वी के जीव सब नष्ट हो गये पर जो पहाड़ की कन्दरा में जाकर दब रहे थे सो बच गये शेष सब नष्ट हो गये । रामजी ने पूछा हे भगवन्! तुम कहते हो कि उसके नीचे प्राणी आकर सब नष्ट हो गये और अंग उसके ऐसे कहते हो कि ब्रह्माण्ड को भी लाँघ गये एवम् फिर कहते हो कि देवता बच रहे सो क्या कारण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो उसके शरीर और अंग के नीचे आये वे तो नष्ट हो गये पर मुख और ग्रीवा में कुछ भेद है तिसमें जो पोल है और गोदी और टाँग के नीचे के पोल में और सुमेरु, मन्दराचल, उदयाचल और अस्ताचल पर्वतों में कुछ पोल है उनकी कन्दरा में बैठे हुए देवता बच गये- और जो अंग के छिद्रों

www.tantrik-astrologer.in

में रहे वे भी बच रहे और कहने लगे कि बड़ा कष्ट है जो हमारे बैठने के कई स्थान नष्ट हो गये । हाय! वे वृक्ष कहाँ गये, बरफ का पर्वत हमारा कहाँ गया, उनकी सुन्दरता कहाँ गई, वन और बगीचे कहाँ गये, चन्दन के वृक्ष कहाँ गये और वे जनों के समूह कहाँ गये जो हमको यज्ञ करके पूजते थे? वे ऊँचे वृक्ष कहाँ गये जिन के ब्रह्मलोक पर्यन्त फूल और टहनी जाती थीं और वह क्षीरसमुद्र कहाँ गया जिसके मथने से बड़ा शब्द हुआ था? उसके पुत्र जो रत्न, कल्पतरु और चन्द्रमा थे वे कहाँ गये और जम्बूद्वीप कहाँ गया जिसमें जम्बू के रस की नदी चलाई थी और सुवर्णवत् जल के चक्र उठते थे? ईख के रस का समुद्र कहाँ गया? हा कष्ट! शक्कर के और मिश्री के पर्वत और अप्सराओं के बिचरने के स्थान कहाँ गये और पृथ्वी कहाँ गई? वे नन्दनवन के स्थान कहाँ गये जहाँ हम अप्सराओं के साथ विलास करते थे? उन विषयों का अभाव नहीं हुआ मानो हमको शूल चुभते हैं । जैसे फल को कण्टक चुभते हैं, तैसे ही विषय के आभासरूपी हमको कण्टक चुभते हैं । इसी प्रकार वे अति शोकवान् हुए और कहने लगे हा कष्ट! हा कष्ट! इधर विषयों का स्मरण करके देवता शोक करते थे और उधर उस शव के जितने अंग थे उनको गणों ने भोजन कर लिया और उससे अघा गये । कुछ मेदा का पिण्ड शेष रह गया था उससे बहुत दुर्गन्ध हुई और उस पिण्ड की पृथ्वी हो गई इससे उसका नाम मेदिनी हो गया और मोटे हाड़ों के सुमेरु आदिक पर्वत हुए । तब ब्रह्माजी ने देखा कि सब विश्व शून्यसा हो गया है इससे उन्होंने संकल्प किया कि अब फिर मैं सृष्टि रचूँ । निदान पूर्व की नाईं उसने सृष्टि रची और जगत् का सब व्यवहार उसी प्रकार चलने लगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वयंमाहात्म्यवृत्तान्तवर्णनन्नाम द्विशताधिक पञ्चविंशतितमस्सर्गः ||225||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मच्छरव्याध वर्णन

विपश्चित् बोले, हे राजन्, दशरथ! जब यह कर्म हो रहा था तब मैंने अपने इष्ट देवता से, जो तोतेवाहन पर आरूढ़ था, प्रश्न किया कि हे महादेव! सर्वजगत् के ईश्वर और सर्वजगत् के भोक्ता! यह शव कौन था, कहाँ स्थित था और किस प्रकार गिरा? अग्नि बोले, हे राजन्! जिसका अनन्त त्रिलोकी आभास है उससे इस शव का वृत्तान्त वर्णन हो सकता है, एक त्रिलोकी से इसका वृत्तान्त नहीं हो सकता । इससे सुनो, हे राजन्! एक परम आकाश है जो जो चिन्मात्र पुरुष सर्वज्ञ, अनामय और अनन्त है । वह आत्मतत्त्व केवल अपने शरीर में स्थित है पर उसका जो आभास संवेदन फुरना है, वही किञ्चन होता है वह जब किसी स्थान में फुरता है तब ऐसी भावना होती हे कि मैं तेज अणु हूँ । उस भावना के वश से अणु सी हो जाती है । जैसे कोई पुरुष सोया है और स्वप्ने में आपको मार्ग में चलता देखता है, अथवा जैसे तुम स्वप्ने में आपको पौढ़े देखो ऐसे ही चित्तसंवेदन ने आपको अणु जाना है । जैसे फुरना ब्रह्मा को हुआ है, तैसे ही धूर के कणके का भी अधिष्ठान में फुरना तुल्य हुआ है । जब उस अणु को शरीर की भावना होती है तब अपने साथ शरीर देखता है और शरीर के होने से नेत्र आदिक इन्द्रियाँ घन होती हैं तब शरीर और इन्द्रियों से आपको मिला हुआ जानता है । जब अपना आप जानकर उनको ग्रहण करके इन्द्रियों से विषय को ग्रहण करता है तब वही चिद्रूप जीव प्रमाद से आधाराधेयभाव को मानता है पर अधिष्ठान सत्ता में कुछ हुआ नहीं, वह अद्वैतसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थित है । जैसे स्वप्ने में प्रमाद से अपने आपको किसी गृह में बैठे देखता है, तैसे ही वहाँ प्रमाद से आधाराधेयभाव को देखता है और प्राण और मन अहंकार को धारता है और जानता है कि मेरे माता-पिता हैं और मैं अनादि जीव हूँ । अपना शरीर जानकर आगे पाञ्चभौतिक जगत् शरीर को देखता है और अपने फुरने के अनुसार अंग होते हैं इसी प्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व में फुरना हुआ तो चित्तकला फुरी और उसने आपको तेज अणु जाना तब उसमें अहंवृत्ति तो अहंकार हुआ, निश्चयात्मक बुद्धि हुई चेतनारूप चित्त और संकल्पविकल्परूप मन हुआ । यह उत्पन्न होकर फिर तन्मात्रा उपजी फिर उसके इच्छा द्वारा शरीर और इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई और देखने की इच्छा हुई । उस संवित् में दृश्य भासि आई तब संवित् शक्ति ने आपको प्रमाददोष से द्वैतरूप जाना और साथ ही उसके अपने माता पिता और कुल फुर आये कि यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है और यह मेरा कुल है सो चिरकाल से चला आता है । इसी प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित विचरने लगा और एक कुटी में एक ऋषि बैठा था, उस कुटी की ओर गया और उसकी कुटी चूर्ण करके जब ऋषि के निकट आया तब ऋषि ने कहा, हे दुष्ट! तूने यह क्या चेष्टा ग्रहण की है । अब तू मरकर मच्छर होगा । हे विपश्चित्! उस ऋषि के शापरूपी अग्नि से उसका शरीर भस्म हो गया और उसकी निराकार चेतनसंवित् भूताकाशरूप हो गई । फिर आकाश में उसका वायु से संयोग हुआ और उस ऋषि मौनी के शाप की वासना आन उदय हुई । जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीज से अंकुर उत्पन्न होता है तैसे ही पञ्च तन्मात्रा उदय हुईं और अपना मच्छर का शरीर जिसकी आयु दो अथवा तीन दिन की होती है, अज्ञान से भासि आया । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव जो जन्म पाते हैं सो जन्म से जन्मान्तर को चले आते हैं अथवा ब्रह्मा से उपजे होते हैं-यह कहो? वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! कई जन्म से जन्मान्तर चले आते हैं और कई ब्रह्मा से उपजे होते हैं । जिनको पूर्ववासना का संसरना होता है वे वासना के अनु सार शरीर धारते हैं और जन्म से जन्मान्तर पाते चले आते हैं और जिनको संस्कार बिना भूत भासि आते हैं वे ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं । हे रामजी! आदि में सब

www.tantrik-astrologer.in

जीव संस्काररूपी कारण बिना उत्पन्न हुए हैं और पीछे से जन्मान्तर होता है । जो संस्कार बिना भूत भासे, उसे जानिये कि ब्रह्मा से उपजा है और जिसको संस्कार से सृष्टि भासे उसे जानिये कि इसका जन्मान्तर है । यह दो प्रकार से भूतों की उत्पत्ति मैंने तुमसे कही है । अब फिर उस मच्छर का क्रम सुनो । हे रामजी! जब उसने मच्छर का जन्म पाया तब कमलिनियाँ और हरी घास, तृण और पत्तों में मच्छरों को साथ लिये रहने लगा । निदान वहाँ एक मृग आया और उसका चरण उस मच्छर पर इस प्रकार आ पड़ा जैसे किसी पर सुमेरु पर्वत आ पड़े । तब वह मच्छर चूर्ण होकर मृतक हो गया- और मृतक होने के समय मृग की ओर देखने लगा इससे मरके तत्काल ही मृग हुआ और वन में विचरने लगा फिर एक काल में उसको बधिक ने देखकर बाण चलाया और उस बाण से वह मृग बेधा गया । बेधे हुए मृग ने बधिक की ओर देखा इसलिये वह मरके बधिक हुआ और धनुष बाण लेकर मृग और पक्षियों को मारने लगा ।एक समय में वह वन को गया और वहाँ एक मुनीश्वर को देख उसके निकट जा बैठा, तब मुनीश्वर ने कहा, हे भाई! तूने यह क्या पापचेष्टा का आरम्भ किया है? इस चेष्टा से तो तू नरक को प्राप्त होवेगा इससे किसी जीव को दुःख न दे । जिन भोगों के निमित्त तू यह चेष्टा करता है सो बिजली के चमत्कारवत् हैं । जैसे मेघ में बिजली का चमत्कार होता है और फिर मिट जाता है, तैसे ही ये भोग भी होकर मिट जाते हैं और जैसे कमल के पत्र पर जल की बूंद ठहरती है पर उसकी आयु कुछ नहीं होती क्षणपल में गिर पड़ती है, तैसे ही इस शरीर की आयु कुछ नहीं है । जैसे अञ्जली में जल डाला नहीं ठहरता, तैसे ही यौवन अवस्था चली जाती है । क्षणभंगुर है और यौवन असार है उसमें भोगना क्या है? इनसे कदाचित्‌ शान्ति नहीं होता । जो तुझको शान्ति की इच्छा हो तो निर्वाण होने का प्रयत्न कर, तब तू दुःख से मुक्त होगा । अपने हिंसाकर्म को त्याग दे । इसके करनेसे नरक में जावेगा और कदाचित् शान्ति तुझको न प्राप्त होगी । तू अपने हाथ से अपने चरण पर क्यों कुल्हाड़ा मारता है और अपने नाश के निमित्त तू क्यों विष का बीज बोता है? इस कर्म से तू दुःखरूप संसार में भटकता फिरेगा और शान्तिमान् कदा चित् न होगा । इससे अब तू वही उपाय कर जिससे संसारसमुद्र से पार हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मच्छरव्याध वर्णनन्नाम द्विशताधिक षड्विंशतितमस्सर्गः ।।226।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलय वर्णन

अग्नि बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार ऋषीश्वर ने उस वधिक से कहा तब उसने धनुषबाण को डाल दिया और बोला हे भगवन्! जिस प्रकार मैं संसारसमुद्र से पार हो जाऊँ वह उपाय कृपा करके मुझसे कहिये परन्तु वह कैसा उपाय हो जो न दुःसाध्य हो और न मृदु हो अर्थात् जो अल्प भी न हो और कठिन भी न हो । ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! मन को एकाग्र करने का नाम शम है और इन्द्रियों के रोकने को हम दम कहते है--वही मौन है । मन को एकाग्रकरने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण की शुद्धता से आत्मज्ञान उपजता है इससे संसारभ्रम निवृत्त होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है । अग्नि बोले, हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषिश्वर ने कहा तब वह बधिक उठ खड़ा हुआ और प्रणाम करके तप करने लगा । इन्द्रियों को उसने संयम में रक्खा और जो अनिच्छित यथाशास्त्र प्राप्त हो उसका भोजन करने लगा और हृदय से सब क्रियाओं की मौनवृत्ति धारण की । जब उसको कुछ काल तप करते व्यतीत हुआ तब उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और ऋषीश्वर के निकट आ प्रणाम करके बैठ गया और बोला, हे भगवन् बाहर जो दृश्य है सो हृदय में किस प्रकार करती है और स्वप्ने की सृष्टि अन्तर की वाह्य रूप हो कैसे भासती है? यह कृपा करके कहो । ऋषीश्वर बोले, हे वधिक! यह बड़ा गूढ़ प्रश्न तूने किया है । यही प्रश्न मैंन भी गणपति से किया और उनके कहने से मैंनें जो ग्रहण किया है सो सुन । एक समय यही सन्देह दूर करने का उपाय मैंने भी किया था और पद्मासन बाँध, बाहर की इन्द्रियों को रोक मन में लगा मन, बुद्धि आदिक को पुर्यष्टक में स्थित किया । फिर पुर्यष्टक को भी शरीर से विरक्त किया और उसको आकाश में निराधार ठहराया । निदान जब विलक्षण हुआ चाहूँ तब विलक्षण हो जाऊँ और जब शरीर में व्यापा चाहूँ तब व्याप जाऊँ । हे वधिक! इस प्रकार जब मैं योगधारणा से पूर्ण हुआ, तो एक काल में एक पुरुष हमारी कुटी के पास सो रहा था और उसके श्वास भीतर-बाहर जाते थे । उसको देखकर मैंने यह इच्छा की कि इसके भीतर जाकर कौतुक देखूँ कि क्या अवस्था होती है । ऐसे विचार करके मैंने पद्मासन बाँधा और योग की धारण करके उसके श्वासमार्ग से भीतर प्रवेश किया । जैसे उष्ट्र उँघता हो और उसके श्वासमार्ग से सर्प प्रवेश करे । तैसे ही मैंने प्रवेश किया तो उसके भीतर अपने-अपने रस को ग्रहण करनेवाली नाड़ियाँ मुझे दृष्टि आईं । कई वीर्य को ग्रहण करनेवाली हैं, कई रक्त और कफ को ग्रहण करती हैं, कई मलमूत्रवाली हैं और अनेक विकार जो उसके भीतर थे सो सब देखे । इससे मैं अप्रसन्न भया कि महा अपवित्र स्थान है और रक्तमज्जासंयुक्त महानरक के तुल्य अन्धकार है । फिर और आगे गया तो वहाँ एक कमल देखा कि उसमें उसका संवेदन फुरता है और संवित्तशक्ति जो महातेजवान हृदयाकाश है सो भी वहाँ स्थित है । वही त्रिलोकी का आदर्श है और त्रिलोकी में जो पदार्थ हैं, उसका दीपक है और सर्व पदार्थों की सत्ता रूप है । ऐसी संवित्ूरूपी जीवसत्ता वहाँ स्थित थी उसमें मैं तद्रूपता को प्राप्त हुआ फिर मैंने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल,तेज वायु, आकाश पर्वत, समुद्र, देवता, गन्धर्व आदि नाना प्रकार के स्थावर-जंगम विश्व को देखा । ब्रह्मा और रुद्र सहित सम्पूर्ण सृष्टि को उसके भीतर देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि उसके भीतर सृष्टि क्यों कर भासी । हे बधिक! उसने जाग्रत् में उस सृष्टि का अनुभव इन्द्रियों से किया था और भीतर चित्तत्व में उसका संस्कार हुआ था वही भीतर भासने लगा और भीतर जो भूत सत्ता थी सो उसके स्वप्ने में सृष्टिरूप बाहर बनी और मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी । जैसे जाग्रत प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसे ही मुझको यह सृष्टि भासने लगी । हे वधिक! इस जाग्रत् सृष्टि और उस सृष्टि में मैंने कुछ भेद न देखा-दोनों तुल्य हैं । चिरपर्यन्त प्रतीति का

www.tantrik-astrologer.in

नाम जाग्रत् हैं और अल्पकाल की प्रतीति का नाम स्वप्ना है पर स्वरूप से दोनों तुल्य हैं । जो उसके स्वप्ने के अनुभव में था सो मुझको जाग्रत् भासा और जो मुझको जाग्रत भासा सो उसको स्वप्ना भासा । निद्रादोष से उसको स्वप्ना हुआ सो उसको भी उस काल में जाग्रत्‌रूप भासने लगा, क्योंकि स्वप्ना जो स्वप्नरूप है सो जाग्रत् में स्वप्ना है और स्वप्न में तो जाग्रत् है, तैसे जाग्रत् भी अपने काल में जाग्रत् है, नहीं तो, स्वप्नरूप है, सो जाग्रत् में भी जो सत्य प्रतीति है वही प्रमाद है । इन दोनों में कुछ भेद नहीं, क्योंकि जाग्रत् और स्वप्न दोनों का अधिष्ठान चैतन्यसत्ता परब्रह्म ही है- और उसी के प्रमाद से प्राण के साथ सम्बन्ध हुआ है । जब प्राण से चित्तसंवेदन मिलती है तब उस फुरनरूप के इतने नाम होते हैं-जीवमन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदिक । यही संवेदन जो बाह्यरूप हो फुरती है तब जाग्रतरूप जगत् हो भासता है और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्मइन्द्रियाँ और चतुष्टय अन्तःकरण ये चौदह अपने-अपने विषय को ग्रहण करते हैं-इसका नाम जाग्रत् है । जब चित्तस्पन्द निद्रादोष से अन्तर्मुख फुरता है तब नाना प्रकार की स्वप्ने की सृष्टि देखता है और उस काल में वही जाग्रत्‌रूप हो भासता है । अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है जब संवेदन उसकी ओर फुरती है और बाह्य विषय के फुरने से रहित अफुरन होती है तब न जाग्रत् भासती है और न स्वप्ना भासता है केवल निर्विकल्प आत्मसत्ता शेष रहती है । हे बधिक! मैंने विचार देखा है कि जगत् और कुछ वस्तु नहीं फुरने ही का नाम जगत् है । जब चित्त संवेदन फुरनरूप होती है तब जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन फुरने से रहित होती है तब जगत् कल्पना मिट जाती है, इसलिये मैंने निश्चय किया है कि वास्तव में केवल चिन्मात्र है । जगत् कुछ वस्तु नहीं मिथ्या कल्पनामात्र है । हे बधिक! जगत्भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो । अब वही वृत्तान्त फिर सुनो । जब उसके भीतर मैंने स्वप्न और जाग्रत् अवस्था देखीं तब मैंने यह इच्छा की कि सुषुप्ति अवस्था भी देखूँ और विचार किया कि सुषुप्ति प्रलय का नाम है जहाँ दृष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों का अभाव हो जाता है परन्तु जहाँ मैं देखनेवाला हुआ वहाँ महाप्रलय कैसे होगी और जो मैं जाननेवाला न होऊँ तब सुषुप्ति को कौन जानेगा । हे बधिक! तब मैंने विचार के देखा कि और सुषुप्ति कोई नहीं जहाँ चित्त की वृत्ति नहीं फुरती उसी का नाम सुषुप्ति है । ऐसे विचार करके मैंने चित्त को फुरने से रहित किया तब उसकी सुषुप्ति देखी तो क्या देखा कि न कोई वहाँ अहं और त्वं शब्द है, न शुभ है, न अशुभ है, न जाग्रत् है, न स्वप्ना है और न सुषुप्ति की कल्पना है, सर्व कल्पना से रहित केवल चित्तसत्ता मैंने देखी । जो तुम कहो कि सुषुप्ति निर्विकल्प तुमने कैसे देखी तो उसका उत्तर यह है- कि अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा काल में ज्यों का त्यों है और उसमें जैसा आभास फुरता है तैसा ही ज्ञान होता है । यह जो तुम भी दिन प्रतिदिन देखते हो और सुषुप्ति से उठकर जानते हो कि मैं सुख से सोया था सो अनुभव से ही देखते हो, तैसे ही मैंने भी वह देखा जहाँ चित्तसंकल्प कोई नहीं फुरता केवल निर्विकल्प है परन्तु सम्यकबोध से रहित है उस अभाव वृत्ति का नाम सुषुप्ति है । फिर मुझको तुरीया देखने की इच्छा हुई पर तुरीया देखनी महा कठिन है । तुरीया साक्षीभूत वृत्ति का नाम है, वह सम्यकज्ञान से उत्पन्न होती है और जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की साक्षीभूत है और सुषुप्ति की नाईं है । जैसे सुषुप्ति में अहं, त्वं आदिक कल्पना कोई नहीं होती तैसे ही तुरीया में भी नहीं । उसमें ब्रह्म का सम्यकबोध होता है और सुषुप्ति जड़ीभूत तम रूप अविद्या होती है । तुरीया में जड़ता नहीं होती, सुषुप्ति और तुरीया में इतना ही भेद होता है ।सच्चिदानन्द साक्षी वृत्ति होती है सम्यकबोध का नाम तुरीयापद है और तुरीया इससे भिन्न नहीं । ऐसे निश्चय से मैंने उसको देखा । हे वधिक! चारों अवस्था मैंने माया अर्थात् फुरने सहित भिन्न भिन्न देखी पर आत्मसत्ता अपमे आप में

www.tantrik-astrologer.in

स्थित है उसमें कोई जाग्रत है, न स्वप्ना है, न सुषुप्ति है और न तुरीया है-इनका भेद वहाँ नहीं । आत्मसत्ता सदा अद्वैत है और ये चारों चित्त संवेदन में होती हैं । हे वधिक! ऐसा अनुभव करके मैं बाहर आया और बाहर भी मुझको वैसे ही भासने लगा, तब मैंने कहा कि यही जगत् मुझको उसके भीतर भासा था बाहर कैसे आया? तब मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया । प्रथम जो उसके भीतर मैंने प्रवेश किया था और उसके भीतर सृष्टि देखी थी तब उसकी और मेरी संवेदन मिल गई थी पर जब मैंने अपनी संवेदन उसको भिन्न की तब दो ब्रह्माण्ड हो गये और एक उसका संवेदन फुरने में और एक मेरी संवेदन में भासने लगा, क्योंकि मैंने प्रथम उसकी सृष्टि को देख और अर्थरूप जानकर ग्रहण किया था उसका संस्कार दृढ़ हो गया । आत्मसत्ता के आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई तैसे होकर भासने लगा । उसका स्वप्न मुझको भासने लगा-जैसे एक दर्पण में दो प्रतिबिम्ब भासें, तैसे ही एक अनुभव में मुझे दो सृष्टि भासने लगीं । तब मैंने विचार किया कि सृष्टि संकल्परूप है संकल्प जीव-जीव का अपना-अपना है और अपने-अपने संकल्प की भिन्न भिन्न सृष्टि है इससे अनुभव के आश्रय जैसा-जैसा संकल्प फुरता है तैसी-तैसी सृष्टि भासती । सृष्टि का कारण और कोई नहीं । हे बधिक! अष्टनिमेष पर्यन्त मुझको दो सृष्टि भासती रही फिर मैंने उसके और अपने चित्त की वृत्ति इकट्ठी करके मिलाई तो दोनों तद्रूप हो गईं-जैसे जल और दूध मिलकर एक रूप हो जाते हैं और दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया । जैसे भ्रम दृष्टि से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रम के गये से दूसरे चन्द्रमा का अभाव हो जाता है, तैसे ही द्वितीय वृत्ति के अभाव हुए से दूसरी सृष्टि का अभाव हो गया । निदान एक सृष्टि भासने लगी और नाना प्रकार के व्यवहार होते दृष्टि आवें और चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासने लगे । कुछ काल के उपरान्त चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओर आई और स्वप्ने की सृष्टि का विस्तार लीन होने लगा-जैसे सन्ध्या के समय सूर्य की किरणें सूर्य में लय हो जाती हैं । जब वह सृष्टि चित्त में लय होने लगी तब स्वप्ने की सृष्टि मिट गई, सुषुप्ति अवस्था हुई और सर्व इन्द्रियाँ स्थिर हो गईं । हे बधिक! सुषुप्ति तब होती है जब जीव अन्न भोजन करता है और वह समवाही नाड़ी पर आन स्थित होता है, तब जाग्रतवाली नाड़ी ठहर जाती है, उससे प्राण भी ठहर जाते हैं और तब मन भी हर जाता है-उसका नाम सुषुप्ति है । जब मन फिर फुरता है तब जाग्रत् होती है । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जब मन प्राणों से ही चलता है तब मन का अपना रूप तो कहीं न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी परमार्थ से कहिये तो देह ही नहीं तो मन क्या हो । जैसे स्वप्न में पहाड़ भासते हैं तैसे ही यह शरीर भासता है क्योंकि सबका आदि कारण कोई नहीं इससे जगत् मिथ्याभ्रम है- केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जो तत्त्ववेत्ता हैं उनको तो ऐसे ही भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते-जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूक सूर्य के निश्चय को नहीं जानता, तैसे ही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय भिन्न भिन्न होता है । शुद्ध चिन्मात्र आकाश में जगत् भ्रम कोई नहीं पर फुरनभाव से अपने चेतन वपु को भूल ज्ञान बिना ही मननभाव को प्राप्त होता है और तब मन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणवायु को अपना आश्रयभूत कल्पता है कि मेरा प्राण है । हे रामजी! फिर जैसे-जैसे मन कल्पना करता है, तैसे- तैसे देह इन्द्रियों और जगत् भासते हैं । परब्रह्म सर्वशक्तिसम्पन्न है उसमें जैसी जैसी भावना से मन फुरता है तैसा ही तैसा रूप हो भासता है-वास्तव और कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है । मन का फुरना जैसे-जैसे दृढ़ हुआ है तैसे ही तैसे देह, इन्द्रियों और जगत् भासने लगा है । जैसे स्वप्ने में कल्पनामात्र जगत् भासता है तैसे ही इसे जानो । हे रामजी! जितने विकल्प उठते हैं वे सब मन के रचे हुए हैं । जब मन उदय होता है तब यह फुरना

www.tantrikastrologer.in

होता है कि यह पदार्थ सत्य है और यह असत्य है जब चित्तशक्ति का मन से सम्बन्ध होता है तब प्रथम प्राण उदय होते हैं और प्राण को ग्रहण करके मन कहता है कि मैं जीव हूँ, प्राण ही मेरी गति है और प्राण बिना मैं कहाँ था । फिर कहता है कि जब प्राण का वियोग होगा तब मैं मर जाऊँगा-फिर न रहूँगा । फिर ऐसे कहता है कि मुआ हुआ भी मैं जीऊँगा । हे रामजी! संशयवाले को न इस लोक में सुख है और न परलोक में सुख है जब तक आत्मबोध का साक्षात्कार नहीं होता तब तक चित्त भी निर्वाण नहीं होता और विकल्प भी नहीं मिटते । हे रामजी! मन के विस्मरण का उपाय आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं और मन के शान्ति हुए बिना कल्याण भी नहीं होता । दो उपायों से मन शान्त होता है मन की वृत्ति स्थित करने और प्राण स्पन्द के रोकने से मन स्थित होता है तब प्राण रुक जाते हैं और प्राण के स्पन्द को रोकने से मन स्थित होता है तब प्राण रुक जाते हैं और प्राण के स्पन्द को रोकने से मन स्थित होता है जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त भी क्षोभता है और तभी आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापों की अग्नि से जलता है । मन के स्थित करने से परमसुख प्राप्त होता है सो मन की स्थित दो प्रकार की है-एक ज्ञान की स्थिति है और दूसरी अज्ञान् की स्थिति है । जब प्राणी बहुत अन्न भोजनकरता है तब नाड़ी पर जा स्थित होता है और प्राण ठहर जाता है और जब प्राण ठहरे तब मन भी जड़ीभूत हो जाता है-उसी का नाम सुषुप्ति है । वे नाड़ी कौन हैं जिन पर अन्न जाय स्थित होता है? वे नाड़ी वे ही हैं जिनके मार्ग से जाग्रत में प्राण निकलते हैं । जब वासना सहित वे ही नाड़ी रोकी जाती हैं तब मन सुषुप्त हो जाता है । यह अज्ञानी के मन की स्थिति है क्योंकि जड़ता है सो संसार को लिये शीघ्र ही फिर उठ आता है । जैसे पृथ्वी में बीज समय पाकर अंकुर ले आता है तैसे ही वह संस्कार से फिर सुषुप्ति से उठता है । जो ज्ञानवान् सम्यकदर्शी है उसका चित्त चैतन्यता के लिये स्थित होता है वह चैतन्यता दो प्रकार की है-एक तो योगी की होती है जिससे वह समाधि में मन को स्थित करता है । वह समाधिनिष्ठ चित्त है, जड़ता नहीं । जैसे सुषुप्ति में जड़ता होती है तैसी जड़ता वह नहीं है । दूसरे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त के चित्त की वृत्ति सम्यक्ज्ञान से स्थित होती है, क्योंकि उसका चित्त वासना से रहित है । यही स्थिति है । जिसका चित्त उस प्रकार स्थित है उसी पुरुष को शान्ति है और जिसका चित्त वासना सहित है उसको कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती और उसके दुःख भी नहीं मिटते । उसे निर्वासनिक चित्त करने को सम्यक्ज्ञान का कारण यह मेरा शास्त्र ही है इसके समान और कोई उपाय नहीं । हे रामजी! यह जो मोक्ष-उपाय शास्त्र मैंने कहा है उसके विचार से शीघ्र ही स्वरूप की प्राप्ति होवेगी इससे सर्वदा इसी का विचार कर्तव्य है जब इसको भली प्रकार विचारोगे तब चित्त निर्वासनिक हो जावेगा अब वही बधिक का प्रसंग सुनो । मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जब मैंने उस पुरुष के चित्त में प्राण के मार्ग से प्रवेश किया तब क्या देखा कि उसके प्राण रोके गये हैं और अन्न करके जाग्रत नाड़ी जो फुरती थी सो रोकी गई है, क्योंकि अन्न पचा न था इस कारण वह सुषुप्ति में था उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण हो गया । जब कुछ अन्न पचा तब उसके प्राण फुरने लगे और जब प्राण फुरे तब चित्त की वृत्ति भी कुछ जड़ता को त्यागती भई पर सम्पूर्ण जड़ता को त्याग नहीं किया । प्राण के फुरने से चन्द्रमा, सूर्य आदिक जो कुछ विश्व है सो भी फुरा तब मैंने नाना प्रकार के जगत् को देखा और मुझे अपना पूर्वसंस्कार भूल गया । निदान वहाँ मैं भी अपने कुटुम्ब में रहने लगा, साथ ही उसके मुझे अपनी कुटी भासी और स्त्री, पुत्र, भाई जन बान्धव सब भासि आये । फिर मेरे में देखते-देखते प्रलयकाल के पुष्कर मेघ गर्जने लगे, मूशल-धार जल बरसने लगा और सातों समुद्र उछलने लगे । निदान जो कुछ प्रलयकाल के उपद्रव होते हैं सो भी उदय हुए । प्रथम अग्नि लगी, जब अग्नि

लग चुकी और सब स्थान जल गये तब जल का उपद्रव उदय हुआ तब मैंने क्या देखा कि नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पशु, पक्षी सब बहते जाते हैं और हाहाकार शब्द करते निदान बड़ा क्षोभ हुआ और मैंने एक आश्चर्य देखा कि मेरी कुटी भी बही जाती है और स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब जल के प्रवाह में बहे जाते हैं । जिस स्थान में हम थे वह स्थान भी बहा जाता था और मैं भी लुढ़कता जाता था निदान बहते बहते मुझको ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ कि कहने में नहीं आता । एक तरंग से तो मैं ऊर्ध्व को चला जाऊँ और एक तरंग के साथ नीचे चला जाऊँ तब मुझे अपना पूर्व शरीर स्मरण आ गया और जितना कुछ जगत् है वह मुझको सब भासने लगा, मिथ्या राग द्वेष सब मिट गया और शरीर की सब चेष्टा उसी प्रकार होने लगी कि तरंग के साथ कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे आ पड़ा परन्तु मेरा हृदय शान्त हो गया । उस काल में नगर, देश और मण्डल बहते जाते थे और त्रिनेत्र सदाशिव और विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर सिद्ध आदि सब बहते जाते थे। अष्टदल कमल की पंखड़ी पर बैठे ब्रह्माजी और इन्द्र कुबेर और विष्णु जी अपनी अपनी पुरियों सहित बहते जाते थे और पहाड़, द्वीप, लोकपाल भी बहते जाते थे । पातालवासी सब प्रलय के जल में बहते जाते थे और यम भी अपने वाहन सहित बहते जाते थे, ऐसी सामर्थ्य किसी को न थी कि किसी को कोई निकाले, क्योंकि आप ही सब बहते जाते थे और डूबते और गोते खाते थे । बड़े ऐश्वर्य सहित देव भी बहे जाते थे । जो संसार सुख के निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्न करते हैं वे सुख और सुख के देनेवाले सब बहते जाते थे तैसे ही सब ऋषीश्वर भी बहते जाते थे । हे बधिक! मैंने इस प्रकार उसके स्वप्ने में महाप्रलय होती देखी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनन्नाम द्विशताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः ||220||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

हृदयान्तरप्रलयाग्निकदाह वर्णन

बधिक ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमने कही कि जिसमें ब्रह्मादिक भी बहते जाते थे सो ब्रह्मा, विष्णु रुद्रादिक तो स्वतन्त्र ईश्वर हैं परन्तु परतन्त्र हुए बहते जाते तुमने कैसे देखे? वे अन्तर्धान क्यों न हुए? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जो प्रलय हुई सो क्रम से नहीं हुई। जब क्रम से प्रलय होती है तब यह ईश्वर समाधि से शरीर को अन्तर्धान कर लेते हैं परन्तु अन्तर्धान होने से पहिले जल चढ़ गया।इसका कुछ नियम नहीं, क्योंकि यह जगत् भ्रमरूप है, इसमें क्या आस्था करनी है स्वप्ने में क्या नहीं बनता और स्वप्नभ्रान्ति करके विपर्यय भी होते हैं इस लिये उनको बहते देखा है। व्याध ने पूछा, हे मुनीश्वर! जब वह स्वप्न भ्रम था तो उसका वर्णन क्यों करना? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तुझसे इसकी समानता का अर्थ कहता हूँ इससे कि स्थावर जंगम जगत् बहता देखा और साथ ही मैं भी बहता जाता था और जल की लहरें उछलती थीं और उन तरंगों में मैं भी उछलता था परन्तु मुझको कुछ कष्ट न होता था। निदान मैं बहता-बहता एक किनारे पर जा लगा और उसके पास एक पर्वत था उसकी कन्दरा में जा स्थित हुआ। जहाँ मैंने देखा कि जीव बहते हैं और जल भी सूखता जाता है। जल के सूखने से कीचड़ हो गई, किसी ठौर में जल रहा उसमें कई डूबते दृष्टि आते थे, कहीं ब्रह्मा के हंस, कहीं यम के वाहन और कहीं विष्णु के वाहन कीचड़ में पहाड़ की नाईं डूबते दृष्टि आते थे। कहीं इन्द्र के हाथी और विद्याधर आदिक वाहन कीचड़ में दृष्टि आये और देवता, सिद्ध, गन्धर्व, लोकपाल दृष्टि आये इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ। हे बधिक! इस प्रकार देखता हुआ जब मैं पहाड़ की कन्दरा में सो गया तब मुझको अपनी संवित् में स्वप्ना आया और चन्द्रमा, सूर्य आदिक नाना प्रकार के भूत जलते देखे, नगर और पर्वत जलते देखे और जगत् बड़े खेद को प्राप्त हुआ देखा। जब रात्रि हुई तो मैं वहाँ सोया हुआ स्वप्ने को देखता रहा और दूसरे दिन उसमें मैंने फिर जगत् देखा और सूर्य, चन्द्रमा, देश, नदियाँ, समुद्र, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, नाना प्रकार की क्रिया संयुक्त दृष्टि आने लगे। मैंने अपना षोडश वर्ष का शरीर देखा और मुझे अपने पिता और माता दृष्टि आये। उनको देख मैं पिता और माता जानूँ और वे मुझको अपना पुत्र जानें। निदान स्त्री, कुटुम्ब, बान्धव समस्त मुझको दृष्टि आये और मैं बोध से रहित और तूर्ष्णी सहित था इससे मुझे अहं मम का अभिमान आन फुरा और मैंने एक ग्राम में जहाँ मेरा गृह था ईंट और काष्ठ संग्रह करके एक कुटीं बनाई और उसके चौफेर बूटे लगाकर एक आसन बनाया जहाँ कमण्डलु और माला पड़ी रहे। मैं ब्राह्मण था, मुझको धन उपजाने की इच्छा हुई और जो कुछ ब्राह्मण की आचार चेष्टा थी सो भी मैं करता था। बाहर जाके ईंट और काष्ठ ले आऊँ और आनकर कुटी बनाऊँ। यह चेष्टा हमारी होने लगी और शिष्य और सेवक हमारी पूजा करने लगे और मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाद दूँ। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में चेष्टा करूँ और मुझको यह विचार उपजे कि यह कर्तव्य है इसके करने से भला होता है। नदियाँ और तालों में मैं स्नान करूँ, गौ की टहल करूँ और अतिथि की पूजा करूँ। हे बधिक! इस प्रकार चेष्टा करता मैं सौ वर्षपर्यन्त वहाँ रहा तब एक काल मेरे गृह में एक मुनीश्वर आया तो प्रथम मैंने उसको स्नान कराया, फिर भोजन से तृप्त किया और रात्रि के समय उसको शय्या पर शयन कराया। इस प्रकार उसकी टहलकर रात्रि को हम वार्ता चर्चा करने लगे उसमें उसने मुझको बड़े पर्वत,कन्दरा और चित्त के मोहनेवाले सुन्दर देश स्थान और नाना प्रकार के संवाद सुनाये और कहने लगा कि हे ब्राह्मण! जितने सुन्दर स्थान और संवाद तुझको सुनाये हैं उन सबों में सार एक चिन्मात्ररूप है इससे सब चिन्मात्ररूप है। सब जगत् उसका

www.tantrik-astrologer.in

चमत्कार और आभास (किञ्चन) है उससे कोई वस्तु भिन्न नहीं। इससे हे ब्राह्मण! उसी सत्ता को ग्रहण करो जो सबका अनुभव और परमानन्द स्वरूप है। उसी में स्थित हो रहो। हे वधिक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वर ने मुझसे कहा तब आगे जो मेरा मन योग से निर्मल था इससे उसके वचन मेरे चित्त में चुभ गये और अपने स्वभाव सत्ता में मैं जाग उठा। तब मैंने क्या देखा कि सब मेरा ही संकल्प है, मुझसे भिन्न कोई नहीं, मैं तो मुनीश्वर हूँ और यह स्वप्ना आया था। मैंने जागकर देखा कि उसी पुरुष का स्वप्ना था, तब मेरे चित्त में आया कि किसी प्रकार इसके चित्त से बाहर निकलूँ और अपने शरीर में प्रवेश करूँ। तब मैंने फिर विचारा कि यह जगत् तो उस पुरुष का वपु है वही पुरुष विराट् है जिसके स्वप्ने में यह जगत् है परन्तु उस पुरुष को अपने विराट्स्वरूप का प्रमाद है इससे जैसा वपु हमारा बना है उसके स्वप्ने में वह भी तैसा एक विराट् इतर बन पड़ा है तो फिर उस विराट् को कैसे जानिये कि उसके चित्त से निकल जावे। हे वधिक! इस प्रकार विचार करके मैंने पद्मासन बाँधा और योग की धारणा कर उस विराट्स्वरूप के शरीर को देखा। फिर जहाँ चित्त की फुरती थी उसके साथ मिलकर और प्राण के मार्ग से निकलकर अपनी कुटी को देखा और उसमें अपने शरीर को पद्मासन बाँधे देखा। तब उसमें मैंने प्रवेश करके नेत्र खोले तो अपने सम्मुख शिष्य बैठे देखे और वह पुरुष सोया था उसको देखा। एक मुहूर्त बीता तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि भ्रम में क्या-क्या चेष्टा देख पड़ती है कि यहाँ एक मुहूर्त बीता है और वहाँ मैंने सौ वर्ष का अनुभव किया। बड़ा आश्चर्य है कि भ्रम से क्या नहीं होता। फिर मेरे मन में उपजी कि उसके चित्त में प्रवेश करके कुछ और कौतुक भी देखूँ। तब फिर प्राण के मार्ग से उसके चित्त में मैंने प्रवेश किया तो क्या देखा कि अगली कल्पना व्यतीत हो गई है, बान्धव, पुत्र, स्त्री, माता, पिता आदिक सब नष्ट हो गये हैं और दूसरा कल्प हुआ है उसकी भी प्रलय होती है। बारह सूर्य उदय होकर विश्व जलाने लगे हैं, बड़वाग्नि जलाने लगी है, मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत जल-कर टूक-टूक हो गये हैं, पृथ्वी जर्जरीभाव को प्राप्त हुई है, स्थावर-जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं, बिजली चमत्कार करती है और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। हे वधिक! मैं अग्नि में जा पड़ा और मेरा शरीर भी जलने लगा परन्तु मुझको कष्ट न हुआ। जैसे किसी पुरुष को अपने स्वप्ने में कष्ट प्राप्त हो और जाग उठे तो कुछ कष्ट नहीं होता तैसे ही अग्नि का कष्ट मुझको कुछ न हुआ। मैं आपको वही रूप जाग्रत्वाला जानता था और जगत् प्रलय को भ्रममात्र जानता था इस कारण मुझको कष्ट न होता था और चेष्टा तो मैं भी उसी प्रकार देखता और करता था। परन्तु हृदय से ज्यों का त्यों शीतल चित्त था और लोग जो थे सो अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयान्तरप्रलयाग्निकदाहवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः ||228||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

कर्मनिर्णय

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! प्रलय के क्षोभ में भी भटकता था और जल में बहता था परन्तु पूर्व का शरीर मुझको विस्मरण न हुआ इस कारण शरीर का दुःख मुझको स्पर्श न करता था । मैंने विचारा कि यह जगत् तो मिथ्या है इसमें बिचरने से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? यह तो स्वप्नमात्र है इसमें मैं किस निमित्त खेद पाऊँ-इससे जगत् से बाहर निकलूँ । वधिक ने पूछा, हे मुनीश्वर! तुमने जो इस स्वप्ने में जगत् को देखा वह जगत् क्या वस्तु था और स्वप्ना क्या था? उसकी संवित् में जगत् था और उस जगत् का उसको ज्ञान था व वह प्रमादी था? तुमने तो जाग्रत् होकर के उसका स्वप्ना देखा था, उसके हृदय में पहाड़ कहाँ से आया और नदियाँ, वृक्ष आदि नाना प्रकार के भूतजात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्व की रचना कहाँ से आई? वह सब क्या था यह संशय मेरा दूर करो । जो तुम कहो कि अपने स्वप्ने में भी अपनी सृष्टि देखते हो तो हे भगवन्! हमको जो स्वप्ना आता है उसको हम अपने स्वप्न के प्रमाद से देखते हैं और तुमने जाग्रत् होकर देखा तो कैसे देखा? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! प्रथम जो मैंने देखा था सो आपको विस्मरण करके उसके हृदय में जगत् देखा था- और दूसरी बार जो देखा था सो आपको जानकर जगत् देखा था सो क्या वस्तु है सुनो । हे बधिक! जो वस्तु कारण से होती है सो सत्य होती है और जो कारण बिना भासती है सो मिथ्या होती है । मुझको जो सृष्टि उसके स्वप्न में भासी थी सो कारण बिना थी, क्योंकि कारण दो प्रकार का होता है-एक निमित्त कारण, जैसे घट का कारण कुलाल होता है और दूसरा समवायकारण, जैसे घट मृत्तिका का होता है । जो दोनों कारणों से उत्पन्न हो वह कारण कहाता है पर आत्मा तो दोनों प्रकार से जगत् का कारण नहीं, वह अद्वैत है इससे निमित्त कारण नहीं और समवायकारण भी इससे नहीं कि अपने स्वरूप से अन्यथा भाव नहीं हुआ । जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट होता है तैसे ही आत्मा का परिणाम जगत् नहीं । आत्मा अच्युत है । वह जगत् कारण बिना भासि आया था इससे भ्रममात्र ही था । हे वधिक! वस्तु वही होती है तो जगत् की भ्रान्ति आत्मा में भासी सो जगत् आत्म रूप हुआ । जब सृष्टि फुरी न थी तब अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् हुए की नाईं उदय हुआ सो क्या हुआ- जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है सो किरण ही जलरूप भासती है, तैसे ही यह जगत् आत्मा का आभास है सो आत्मा ही जगद्ूरूप हो भासता है । वहाँ न कोई शरीर था, न कोई हृदय था, न पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश था और न उत्पत्ति और प्रलय थी न और कोई था, केवल चिन्मात्ररूप ही था । हे वधिक! ज्ञानदृष्टि से हमको तो सच्चिदानन्द ही भासता है जो शुद्ध और सर्वदुःखों से रहित परमानन्द है, और जगत् भी वही रूप है । तुम सरीखे को जो जगत् शब्द अर्थरूप भासता है सो आत्मा में कुछ हुआ नहीं केवल चिन्मात्र सत्ता है । सर्वदा हमको आत्मरूप ही भासता है । जो तू चाहे कि मुझको भी चिन्मात्र ही भासे तो सर्वकल्पना मन से त्यागकर उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता है और सबका अनुभवरूप वही है और प्रत्यक्ष शुद्ध, सर्वदा स्वभावसत्ता में स्थित है और अमर है । तुम भी उस स्वभाव में स्थित हो रहो । हे वधिक! आत्मसत्ता परमसूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है- जैसे सूक्ष्म अणु से पर्वत स्थूल होता है, तैसे ही आत्मा से आकाश भी स्थूल है । आत्मा में यही सूक्ष्मता है कि आत्मत्वमात्र है जिसमें कोई उत्थान नहीं केवल निर्मल स्वभावसत्ता और निराभास है उसी में यह जगत् भासता है इससे वही रूप है । जैसे काल में क्षण, पल, घड़ी, पहर, दिन, मास वर्ष और युगसंज्ञा होती है सो काल ही है, तैसे ही एक ही आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होता है ।

www.tantrik-astrologer.in

जैसे एक बीज में पत्र, टहनी, फूल फल नाम होते हैं तैसे ही एक आत्मा में अनेक नामरूप जगत् होता है सो आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं सब आत्मास्वरूप है और जो आत्मा से भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो जैसे संकल्पपुर होता है तैसे ही यह जगत् है । हे वधिक! आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं । वही आत्मा तेरा अपना आप अनुभवरूप है और परमशुद्ध है । उसमे न जन्म है न मृत्यु है और चिदाकाश अपना आप है जो तेरा आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ता है-उसको नमस्कार है । हे वधिक! तू उसमें स्थित हो रह तब तेरे दुःख नष्ट हो जावेंगे । यह जगत् अज्ञानी को सत्य भासता है और ज्ञानवान् को सदा आकाशरूप भासता है । जैसे एक पुरुष सोया है और एक जागता है तो जो सोया है उसको स्वप्ने में महल आदिक जगत् भासता है और जो जाग्रत् है उसको आकाशरूप है, तैसे ही अज्ञानी को जगत् भासता है और ज्ञानवान् को आत्मरूप है । वधिक बोला, हे मुनीश्वर कितने कहते हैं कि यह जीव कर्म से होता है और कितने कहते हैं कि कर्मबिना उत्पन्न होता है तो इन दोनों में सत्य क्या है? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! आदि जो परमात्मा से ब्रह्मादिक फुरे हैं सो कर्म से नहीं हुए वे कर्म बिना ही उत्पन्न हुए हैं और उन्हें न कहीं जन्म है और न कर्म है । वे ब्रह्मस्वरूप ही हैं और उनका शरीर भी ज्ञानरूप है । वे और अवस्था को नहीं प्राप्त होते सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मा में अहंप्रतीति है । हे वधिक! सृष्टि आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं और जो अनन्त जीव फुरे हैं और जिसका आदि ही आत्मपद से प्रकट होना हुआ है वे भी ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं- आदि सबका ब्रह्मचेतन स्वयंभू हैं परन्तु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक को अविद्या ने स्पर्श नहीं किया वे विद्यारूप हैं और दूसरे जीव अविद्या के वश से प्रमाद करके परतन्त्र हुए हैं और कर्म करके कर्म के वश हुए हैं और संसार में शरीर धारते हैं । जब उनको आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है तब वे कर्म के बन्धन से मुक्त होकर आत्मपद को पाते हैं । हे वधिक! आदि जो सृष्टि हुई है सो कर्म बिना उपजती है और पीछे अज्ञान के वश से कर्म के अनुसार जन्म-मरण देखते हैं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि आदि कर्म बिना उत्पन्न होती है और पीछे कर्म से उत्पन्न होती भासती है, तैसे ही यह जगत् है । आदि जीव कर्म बिना उपजे हैं और पीछे कर्म के अनुसार जन्म पाते हैं ।ब्रह्मादिक के शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं । ईश्वर में जीवभाव दृष्टि आता है पर उस काल में भी ब्रह्म ही स्वरूप है, क्योंकि उनके कर्म कोई नहीं केवल आत्मा ही उनको भासता है- आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने में द्रष्टा ही दृश्यरूप होता है और नाना प्रकार के कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु और कुछ हुआ नहीं तैसे ही जो कुछ जगत् भासता है सो सब चिन्मात्ररूप है और कुछ नहीं । सुख दुःख भी वही भासता है परन्तु अज्ञानी को जबतक जगत् प्रतीति होती है तबतक कर्मरूपी फाँसी से बँधा हुआ दुःख पाता है और जब स्वरूप में स्थित होगा तब कर्म के बन्धन से मुक्त होगा वास्तव में न कोई कर्म है और न किसी को बन्धन है । यह मिथ्या भ्रम है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है दूसरा कुछ हो तो कहूँ कि इस कर्म ने इसको बन्धन किया है । यह जगत् आत्मा में ऐसा है जैसे जल में तरंग होता है सो भिन्न कुछ नहीं । जल से तरंग उत्पन्न होता है सो किस कर्म से होता है और क्या उसका रूप है? जैसे वह जल ही रूप है, तैसे ही यह जगत् भी आत्मस्वरूप है-आत्मा से इतर कुछ नहीं जो कुछ कल्पना कीजिये सो अविद्यामात्र है । हे वधिक! जबतक यह संवित् बहिर्मुख फुरती है तबतक जगत् भासता है और कर्म होते दृष्टि आते हैं और जब संवित् अन्तर्मुख होगी तब न कोई जगत् रहेगा और न कोई कर्म दृष्टि आवेगा, तब सब आत्मसत्ता ही भासेगी । जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसे ही तुमको भी भासेगी । हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष है उनको जगत् आत्मत्व दिखाई देता है और जो अज्ञानी हैं उनको प्रमाद से द्वैतरूप भासता है इससे वह पदार्थों को सुखरूप जानकर पाने का यत्न

www.tantrikastrologer.in

करता है और सुख से सुखी और दुःख से द्वेष करता है पर परमानन्द जो आत्मपद है उसके पाने का यत्न नहीं करता । ज्ञानवान् सदा परमानन्द में स्थित है और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासता है । हे वधिक! सर्वजगत् जो तुझको दृष्टि आता है चिन्मात्रास्वरूप ब्रह्म है, न कोई स्वप्ना है, न कोई जाग्रत् है, न कोई कर्म है और न कोई अविद्या है सर्व ब्रह्मस्वरूप सदा अपने आपमें स्थित है-उसमें और कुछ नहीं जैसे जल में आवर्त स्थित होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता, तैसे ही ब्रह्म में जगत् हुए की नाईं भासता है परन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचार करके देख तब तेरे दुःख मिट जावेंगे । जबतक विचार करके स्वरूप को न पावेगा तबतक दुःख न मिटेगा । जब स्वरूप को पावेगा तब सब कर्म नष्ट हो जावेंगे । जितना विचार होता है उतना ही उतना सुख है जहाँ विचार उत्पन् होता है वहाँ अविद्या नष्ट हो जाती है । जैसे जहाँ प्रकाश होता है वहाँ अन्धकार नहीं रहता, तैसे ही जहाँ सत्य-असत्य का विचार उत्पन्न होता है वहाँ अविद्या का अभाव हो जाता है और फिर वह संसारचक्र में नहीं गिरता बल्कि परमपद को प्राप्त होता है । जिस ज्ञानवान् को यह पद प्राप्त हुआ है वह दुःखी नहीं होता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मनिर्णयोनाम द्विशताधिककैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ||229||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेश

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुष है वह अवश्य उस परमानन्द को प्राप्त होता है जिसके पाये से इन्द्रियों का आनन्द सुख तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है और वैसा सुख पृथ्वी, आकाश और पाताल में भी कहीं नहीं मिलता जैसा सुख ज्ञानवान् को प्राप्त होता है । जिसको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है वह किसको इच्छा करे? आत्मानन्द तब प्राप्त होता है जब आत्म अभ्यास होता है । आत्मा शुद्ध और सर्वदा अपने आपमें स्थित है और जो आगे दृष्टि आता है सो अविद्या का विलास है । जब तू अपने स्वरूप में स्थित होगा तब तुमको सब ब्रह्म ही भासेगा । हे वधिक! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो दृष्टि आते हैं सो हैं नहीं, ये जो कुछ होते तो इनका कारण भी कोई होता पर जो ये ही नहीं हैं तो इनका कारण किसको कहिये और जो इनका कारण नहीं तो कार्य किसका कहिये इसलिये ये भ्रममात्र हैं । विचार किये से जगत् का अभाव हो जाता है और आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों भासती है । जैसे किसी को रस्सी में सर्प भासता है पर जब वह भली प्रकार देखता है तब सर्पभ्रम मिट जाता है और ज्यों की त्यों रस्सी ही भासती है, तैसे ही विचार किये से आत्मसत्ता ही भासती है । जैसे आकाश में संकल्प का कल्पवृक्ष अथवा देवता की प्रतिमा रच कर उससे प्रार्थना की तो अनुभव से कार्य सिद्ध होता है तैसे ही जितना जगत् तू देखता है सो संकल्पमात्र और अनुभवरूप है । जैसे स्वप्नों में नाना प्रकार की सृष्टि स्वप्नमात्र है तैसे ही यह सर्वविश्व ब्रह्म के संकल्प में स्थित है । आदि परमात्मा से कर्म बिना जो सृष्टि उपजी है वह किञ्चन आभासरूप है, फिर आगे जो ब्रह्मा ने रचा है सो संकल्प है और फिर आगे अज्ञान से कर्म करने लगे तब उन कर्मों से उत्पत्ति होती दृष्टि आई है । जैसे स्वप्न में स्वप्ने की सृष्टि भ्रममात्र ही दृढ़ हो भासती है, जब तक स्वप्ने की अवस्था है तबतक जैसा वहाँ कर्म करेगा तैसा ही भासेगा और जो जाग उठे तो न कहीं कर्म है न जगत् है, तैसे ही यह सब संकल्पमात्र है ज्ञान से इसका अभाव हो जाता है । हे वधिक! ये जो तुझको मनुष्य भासते हैं सो मनुष्य नहीं तो उनके कर्म मैं तुझसे कैसे कहूँ? जैसे स्वप्ने के निवृत्त हुए स्वप्ने की सृष्टि का अभाव होता है तैसे ही अविद्या के निवृत्त हुए अविद्या की सृष्टि का भी अभाव हो जाता है । आत्म सत्ता अद्वैत है उसमें जगत् कुछ बना नहीं- वही रूप है । जैसे आकाश और शून्यता, अथवा वायु और स्पन्द में भेद नहीं होता, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकर भासती है और जब नहीं फुरती तब अद्वैत होकर स्थित होती है- पर आत्मसत्ता फुरने और न फुरने में ज्यों की त्यों है । जन्म, मरण और बढ़ना, घटना, मिथ्या है, क्योंकि दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे किसी ने जल और किसी ने पानी कहा तो दोनों एक ही वस्तु के नाम होते हैं , तैसे ही आत्मा और जगत् एक ही के नाम हैं परन्तु अज्ञान से भिन्न भिन्न भासते हैं । जैसे स्वप्ने में कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं, तैसे ही जाग्रत में कारण-कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं-वास्तव में आत्मतत्त्व है । उस आत्मा में जो अहं मम चित्त फुरता है और उस उत्थान से आगे जो कुछ फुरना होता है वही जगत् है, उस जगत् में जैसा-जैसा निश्चय होता है वैसा ही वैसा भासने लगता है-इसका नाम नेति है । उसमें देश, काल और पदार्थ की संज्ञा होने लगती है और कारण-कार्य दृष्टि आते हैं सो क्या है, केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कुछ हुआ नहीं , परन्तु हुए की नाईं भासता है, तैसे ही स्वप्ने में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण-कार्य भी दृष्टि आता है परन्तु जागने पर कुछ दृष्टि नहीं आता, क्योंकि है ही नहीं, तैसे ही यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्टि आता है परन्तु है नहीं आत्मा से दृष्टि आता है इससे आत्मा ही है । जैसे संकल्प नगर

www.tantrik-astrologer.in

दृष्टि आता है, तैसे ही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है सो वही रूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसा आत्मा में निश्चय होता है तैसा ही प्रत्यक्ष अनुभव होता है । यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प ही जहाँ तहाँ उड़ते फिरते हैं और अनुभवसत्ता ज्यों की त्यों है-संकल्प से ही मर के परलोक देखता है । वधिक बोला, हे भगवन्! परलोक में जो यह मर के जाता है तो उस शरीर का कारण कौन होता है और वह हत होता और हन्ता कौन है? यह शरीर तो यहीं रहता है वहाँ भोगता शरीर कौन होता है जिससे सुख दुःख भोगता है? जो तुम कहो कि उस शरीर का कारण धर्म अधर्म होता है तो धर्म अधर्म तो अमूर्ति है उससे समूर्ति और साकाररूप क्योंकर उत्पन्न हुआ? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसके फुरने की इतनी संज्ञा होती हैं-कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म आदि नाना प्रकार के नाम होते हैं । जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं का उत्थान होता है तब देह की भावना होती है और देह ही भासने लगती है, आगे जगत् भासता है और स्वरूप के प्रमाद से संकल्परूप जगत् दृढ़ हो जाता है, फिर उसमें जैसा-जैसा फुरता है तैसा तैसा हो भसता है । हे वधिक! यह जगत् संकल्पमात्र है परन्तु स्वरूप के प्रमाद से सत्य हो भासता है । प्रमाद से शरीर में अभिमान हो गया है उससे कर्तव्य-भोक्तव्य अपने में मानता है और वासना दृढ़ हो जाती है उसके अनुसार परलोक देखता है । हे वधिक! वहाँ न कोई परलोक है और न यह लोक है, जैसे मनुष्य एक स्वप्ने को छोड़कर और स्वप्ने को प्राप्त हो, तैसे ही अविदित वासना से इस लोक को त्यागकर जीव परलोक को देखता है । जैसे स्वप्ने में निराकार ही साकार शरीर उत्पन्न होता है, तैसे ही परलोक है पर वास्तव में संकल्प ही पिण्डाकर होकर भासता है जैसी-जैसी वासना होती है तैसा ही उसके अनुसार होकर भासता है वास्तव में शरीर और पदार्थ सब ही आकाशरूप हैं । हे वधिक! असत्य ही सत्य होकर जन्म मरण भासता है और जैसा-जैसा फुरना होता है तैसा ही तैसा भासता है-जगत् आभासमात्र है । जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको आत्मभाव ही सत्य है और उसमें जैसा निश्चय होता है तैसा होकर भासता है । ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप जगत् जो भासता है वह अनुभव से भिन्न नहीं । जैसे स्वप्ने में अनेक पदार्थ भासते हैं सो अनुभव ही अनेकरूप हो भासता है और प्रलय में एक हो जाते हैं तैसे ही ज्ञानरूपी प्रलय में सब एकरूप हो जाते हैं । जब संवित् फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब संवित् अफुर होती है तब प्रलय हो जाती है और एकरूप हो जाता है । एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित और पृथ्वी आदिक पदार्थ उसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है और उसमें निराकार और साकार भी कल्पित है । जो पुरुष दृश्य से मिले चेतन हैं वे जड़धर्मी हैं और उसको नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं, ज्ञानवान् को सत्यरूप चिन्मात्र ही भासता है । हे वधिक! यह जगत् सब चिन्मात्र है, जब चित्त संवित् फुरती है तब स्वप्नरूप जगत् भासता है और जब चित्तसंवित् फुरने से रहित होती है तब सुषुप्ति होती है । ऐसे ही चित्त संवित्त के फुरने से सृष्टि होती है और चित्त के स्थित होने से प्रलय हो जाती है । जैसे स्वप्न और सुषुप्ति आत्मा में कल्पित है, तैसे ही आत्मा में कल्पित सृष्टि और प्रलय आभासमात्र है और जगत् कुछ बना नहीं फुरने से जगत् भासता है इससे जगत् भी आत्मरूप है और पञ्चतत्त्व भी आत्मा का नाम है सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्र है । जैसे आत्मा में साकार कल्पित है तैसे ही निराकार भी कल्पित है जैसे स्वप्ने में किसी को साकार जानता है और किसी को निराकार जानता है पर दोनों फुरनमात्र है । जो फुरने से रहित है सो आत्मसत्ता है साकार और निराकार भी वही है । आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है और निराकार ही साकार हो भासता है । हे वधिक! सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है सो चिन्मात्रस्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं, परन्तु अज्ञान से

www.tantrikastrologer.in

नाना प्रकार के कार्य-कारण और जन्म-मरण आदि विकार भासते हैं वास्तव में न कोई जन्म है और न मरण है, न कोई कार्य है और न कारण है । यदि जीव मरण होता तो परलोक भी न देखता और अपने मरने को भी न जानता जो मर के परलोक देखता है सो मरता नहीं । यदि मनुष्य मृतक हो तो पूर्व के संस्कार को न पावे और पूर्वस्मृति इसको न हो पर तू तो पूर्वसंस्कार से क्रिया में प्रवर्तता है और प्रतियोग से तुझे पदार्थों की स्मृति भी हो आती है फिर कर्म भोगता है । लोकमें तो पुरुष मृतक नहीं होता केवल भ्रम से मरण भासता है और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं जब मरके परलोक देखता है सुख दुःख भोगता है तो वह शरीर किसी कारण से नहीं बना । जैसे वह शरीर अकारण है तैसे ही और जो आकार दृष्टि आते हैं वे भी अकारण हैं-इसी से आभासमात्र हैं, जैसे स्वप्ने के शरीर से नाना प्रकार की क्रिया होती है और देश देशान्तर देखता है सो सब मिथ्या है, तैसे ही यह जगत् मिथ्या है और मरण भी मिथ्या है । जो तू कहे कि इसके आकार का अभाव देखता है सो मृतक है तो हे वधिक! जो यह पुरुष परदेश जाता है तो भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता । जैसे दृष्टि के अभाव में असत्य होता है, तैसे ही देह के त्याग में भी इसका असत्यभाव होता है पर इस पुरुष का अभाव कदाचित् नहीं होता । जो तू कहे कि परदेश गया फिर आ मिलता है शरीर के त्याग से फिर मिलता तो परदेश गया फिर मिलकर वार्त्ता चर्चा करता है और मुआ तो कदाचित् चर्चा नहीं करता पर जिसके पितर प्रीति बँधे हुए मरते हैं और जिनकी यथाशास्त्र क्रिया नहीं होती तो वे स्वप्ने में आ मिलते हैं और यथार्थ कहते हैं कि हमारी क्रिया तुमने नहीं की, हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक द्रव्य अमुक स्थान में पड़ा है तुम निकाल लो, तो जैसे परदेशीगण मिलते हैं और वार्ता चर्चा करते हैं तैसे ही मुये भी करते हैं । हे वधिक! वास्तव में न कोई जगत् है और न कोई मरता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और जैसा-जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसा हो भासता है । हे वधिक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसा-जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसा ही तैसा हो भासता है । एक संकल्पसिद्ध और एक दृष्टिसिद्ध वस्तु है, जब इनकी दृढ़ भावना होती है तब ये दोनों सिद्ध होती हैं । जो इन्द्रियों में द्रव पदार्थ हैं सो दृष्टसिद्ध वस्तु कहाती है, जो इसी की भावना होती है तो भी प्राप्त होती है और जो अपने मन में आपही मान लीजिये कि मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण हूँ अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वा सन्यासी आश्रम हूँ तो यह संकल्प सिद्ध है । जबतक इनमें अभ्यास होता है तबतक आत्मसत्ता की प्राप्ति नहीं होती और जब आत्मसत्ता का अभ्यास होता है तब दोनों का अभाव हो जाता है और आत्मा ही प्रत्यक्ष अनुभव से भासता है । हे बधिक! जिस वस्तु का अभ्यास होता है उसकी यदि भावना करे और थककर फिरे नहीं तो वह अवश्य प्राप्त होती है पर अभ्यास बिना कुछ सिद्ध नहीं होता । जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं अमुक देश जाता हूँ तो तबतक उसकी ओर वह चले नहीं तबतक अनेक उपाय करे भी नहीं प्राप्त होता और जब उसकी ओर चलेगा तब पहुँच रहेगा, तैसे ही जब आत्मा का अभ्यास बहुत एकाग्र होकर करेगा तब उसको प्राप्त होगा अन्यथा आत्मपद को न प्राप्त होगा । हे बधिक! जिस पुरुष को जगत् के पदार्थों की इच्छा है उसको आत्मपद नहीं प्राप्त होता और जिसको आत्मपद की इच्छा है उसको वही प्राप्त होवेगा, जगत् के पदार्थ न ` भासेंगे । यदि ऐसी भावना हो कि मेरी देवता की सी मूर्ति हो और उससे मैं स्वर्ग में विचरूँ और एक रूप से भूलोक में मृग होके भ्रमण करूँ तो दृढ़ अभ्यास से वही हो जाता है, क्योंकि जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा निश्चय होता है तैसा ही भासि आता है । हे वधिक! दो रूप की वार्त्ता है जो जो सहस्त्रमूर्ति की भावना करे तो वही तद्रूप हो जावेगा । यह मनुष्य

www.tantrikastrologer.in

जैसी भावना करता है तैसा ही रूप हो जाता है । यह अविद्यक भ्रममात्र जगत् है इसकी भावना त्यागकर आत्मपद का अभ्यास कर तब तेरे दुःख मिट जावेंगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशवोपाख्याने निर्णयोपदेशोनाम द्विशताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः ||230||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

कार्यकारणाकारणनिर्णय

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जैसे अगाध समुद्र में अनेक तरंग फुरते हैं तैसे ही आत्मा में अनेक सृष्टि फुरती है और जीव-जीव प्रति अपनी-अपनी सृष्टि है परन्तु परस्पर अज्ञात हैं और एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता और दूसरे की सृष्टि को वह नहीं जानता । जैसे एक ही स्थान में दो पुरुष सोये हों तो उनको अपने-अपने फुरने की सृष्टि भासि आती है पर एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता परस्पर दोनों अज्ञात होते हैं, तैसे ही सब जो धारणाभ्यासी योगी है उसको अन्तवाहक शरीर प्रत्यक्ष होता है और वह दूसरे की सृष्टि को भी जानता है । जैसे एक तालाब का दर्दुर होता है, एक कूप का दर्दुर होता है और एक समुद्र का दर्दुर होता है सो स्थान तो भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु जल एक ही है इससे चाहे जैसा दर्दुर हो पर उसको जल जानता है कि मेरे में हैं तैसे जगत् भिन्न-भिन्न अन्तःकरणों में है परन्तु आत्मसत्ता के आश्रय है और आदि जो संवेदन उसमें फुरी है सो अन्तवाहक है । जब अन्तवाहक में योगी स्थित होता है तब और के अन्तवाहक को भी जानता है- इस प्रकार अनन्त सृष्टि आत्मा के आश्रय अन्तवाहक में फुरती हैं सो आत्मा का किञ्चन है, फुरती भी है और मिट जाती है । संवेदन के फुरने से सृष्टि उत्पन्न होती है और संवेदन के ठहरने से मिट जाती है, क्योंकि आकाशरूप होती है । जैसे वायु के ठहरने से जल एक रूप हो जाता है और जल से इतर कुछ नहीं भासता, तैसे ही संवेदन के फुरने से आत्मा में अनन्त सृष्टि भासती है और संवेदन के ठहरने से सब आत्मरूप हो जाती है तब आत्मा से इतर कुछ नहीं भासती, क्योंकि इससे इतर प्रमाद से भासता है फिर कारण कार्य भ्रम भासता है । प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो कारण-कार्य के क्रम और संस्कार से रहित है, पीछे कारण-कार्य क्रम भासित हुआ और फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ तब संस्कार के वश से भासने लगी । जिनको स्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको सदा पर ब्रह्म का निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासता है और जिनको स्वरूप का प्रमाद होता है उनको संस्कारपूर्वक जगत् भासता है-संस्कार भी कुछ वस्तु नहीं । हे वधिक! जो जगत् ही मिथ्या है तो उसका संस्कार कैसे सत्य हो? परन्तु ज्ञानवान् को इस भासता है और जो अज्ञानी हैं उनको स्पष्ट भासता है । हे वधिक! जैसे तुम संकल्प के रचे पदार्थ, स्मृति और स्वप्नसृष्टि को असत् जानते हो, तैसे ही हम इस जाग्रत् सृष्टि को असत् जानते हैं और जैसे मृगतृष्णा का जल असत् भासता है तैसे ही हमको यह जगत् असत्य है तो फिर कारण, कार्य, कर्म-संस्कार हमको कैसे भासे? अज्ञानी को तीनों भासते हैं । हे वधिक! जब चित्तसंवित बहिर्मुख होता है तब जगत् भासता है और जब अन्त र्मुख होती है तब अपने स्वरूप को देखती है । जब आत्मतत्त्व का किञ्चन संवेदन फुरती है तब स्वप्न जगत् हो भासता है और जब ठहर जाती है तब सुषुप्ति प्रलय हो जाती है। फुरने का नाम सृष्टि की उत्पत्ति है और ठहरने का नाम प्रलय है । जिसके आश्रय फुरना फुरता है सो शुद्धसता अव्यक्त और निराकार है--वही आकाररूप हो भासती है और जो अकारण निराकार है उसमें अकारण आकार भासता है इससे जानता है कि वही रूप है और कुछ नहीं । आकार भी निराकार है, दृष्टि ही सृष्टिरूप हो भासती है और जगत् आभासमात्र है । जैसे समुद्र का आभास तरंग होते हैं तैसे ही आत्मा का अभास जगत् है सो आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत् का अपना आप है । बधिक बोला, हे मुनीश्वर! तुम जगत् को अकार कहते हो तो कारण बिना कैसे उत्पन्न होता है क्योंकि प्रत्यक्ष भासता है और जो कारण से उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो? स्वप्नसृष्टि तो कारण बिना होती है इससे यह कहो कि यह सृष्टि कारणसहित है अथवा कारण से रहित अकारण है?

www.tantrik-astrologer.in

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह जगत् आदि अकारण है और आत्मा का अभासमात्र है, इसका आत्मा में अत्यंताभाव है और कुछ पदार्थ बने नहीं आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है सो चिदाकाश चिन्मात्र है और उसका किञ्चन चैतन्यता है। जैसे सूर्य की किरणों का आभास जल भासता है परन्तु मिथ्या है, तैसे ही आत्मा का किञ्चन चेतन है । वह किञ्चन संवेदन अहंभाव को लेकर फुरती गई हैं और जैसे जैसे फुरती है तैसा जगत् हो भासता है । जो उसमें निश्चय किया है कि यह कर्तव्य है, इसके करने से पाप है, यह करना है, यह नहीं करना है और देश, काल, क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है । यह ऋषि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इससे इनका बन्धन है, इससे इनका मोक्ष है । हे बधिक! जो आदि नेति रची है तैसे ही अब तक स्थित है अन्यथा नहीं होती-उसी में कारण कार्य क्रम है । प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो बुद्धिपूर्वक नहीं बनी-आकाशमात्र फुरी है और जैसे फुरी है तैसे ही स्थित है । फिर पदार्थ जो एकभाव को त्यागकर और भाव को अंगीकार करते हैं सो कारण से करते हैं, कारण बिना नहीं होते, क्योंकि प्रथम सृष्टि अकारण हुई है और पीछे सृष्टिकाल में कारण कार्य हुए हैं, परन्तु हे बधिक! जिन पुरुषों को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है उनको यह जगत् कारण बिना ब्रह्मस्वरूप भासता है और जिनको आत्मसत्ता का प्रमाद है उनको कार्य कारण सत्य भासता है, परन्तु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है उसमें संवेदन के फुरने से अब्रह्मता भासती है, निराकार में आकार भासता है और अकारण में कारण भासता है । जब संवेदन जो मन का फुरना है सो स्थित हो जाता है तब सर्व जगत् कारण-कार्य सहित भासता है पर प्रथम अकारण फुरा है पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी , जल, तेज, वायु, आकाश पदार्थों की मर्यादा भई है और बन्धमोक्ष की नेति हुई है सो ज्यों की त्यों है कि जल शीतल ही है और अग्नि उष्ण ही है । जब जीव आत्मसत्तामें जागता है तब कारण-कार्य सहित जगत् नहीं भासता । जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है और जब दृढ़ हो जाती है तब कारण से कार्य होता है सो दृढ़ हो आता है, जैसे मृत्तिका बिना घट नहीं बनता पर जाग उठे से सर्व जगत् आत्मरूप हो जाता है । हे बधिक! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जबतक अहंभाव का फुरना है तबतक जगत् है और जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है । जबतक अहं फुरती है तब तक नाना प्रकार का जगत् भासता है और जैसी भावना होती है तैसा भासता है । सर्व पदार्थ सर्वदा काल अपनी अपनी शक्ति में और जैसे आदि नेति हुई है तैसे ही स्थित हैं । जो जीव जैसी क्रिया का अभ्यास करेगा उसका फल पावेगा , जो बन्धन के निमित्त अभ्यास करेगा सो बन्धन पावेगा और मोक्ष के निमित्त करेगा सो मोक्ष पावेगा-ऐसे ही आदि नेति हुई है । हे बधिक इस प्रकार किञ्चन होकर मिट जाती है और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है । जगत् की उत्पत्ति और प्रलय ऐसे हैं जैसे हाथी अपनी सूँड को पसारे और खैंचे और ऐसे ही चित्तसंवेदन के पसरने से जगत्ुत्पत्ति होती है और निस्पन्द में प्रलय हो जाती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कार्यकारणाकारणनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ||231||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति विचार

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह सम्पूर्ण जगत् चिद्अणु के ओज में है और उस सम्बन्ध के अभ्यास से आत्मा चिद्अणु की संज्ञा पाता है । ओज, अन्तःकरण और हृदय तीनों अभेद हैं और चैतन्यसत्ता उसमें स्थित है जो वाह्यदृष्टि से मृतकवत् है और उनमें जीवितरूप है और वहाँ बड़े प्रकाश से प्रकाशती है । उस सत्ता का आगे चित्त से संयोग हुआ है- और चित्त और प्राणकला का संयोग हुआ है । हे वधिक! जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त खेद को प्राप्त होता है और जब चित्त खेद को पाता है तब प्राण भी खेद पाते हैं । जब प्राण स्थित होते हैं तब जीव शान्ति पाता है और जो प्राण स्थिर नहीं होते तो जीव जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकता है । जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था भिन्न भिन्न होती है सो सुनो, हे वधिक! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है तब वह अन्न जाग्रत्वाली नाड़ी पर स्थिर होता है और वह नाड़ी रुक जाती है उससे सुषुप्ति आती है । जिन नाड़ियों में गई हुई चित्त की वृत्ति जाग्रत् को देखती है सो जाग्रत् नाड़ी कहाती है । उन पर अन्न जाय स्थित होता है और चित्तसत्ता जो चित्त में प्रतिबिम्बित है वह चित्तनाड़ी उसके तले आ जाती है तब प्राणवायु भी उस नाड़ी में ठहर जाता है और चित्त स्पन्द भी ठहर जाता है तब सुषुप्ति होती है । जो चित्त बहुत होता है तो सूर्य, अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ स्वप्ने में दिखते हैं और जब वह अन्न पचता है और उन नाड़ियों में प्राण जाते हैं तब स्वप्न अवस्था आती है । जब जल के शोषने को वायु बहता है तब जीव स्वप्ने में उड़ता है और जो कफ बहुत होता है तब जल को देखता है और नदियाँ, ताल आदि देखता है और जाकर डूबता है । जब उष्ण नाड़ी में अन्न-जल पहुँचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है । इसी प्रकार जीव तीनों अवस्थाओं में भटकता है । जगत् न कुछ भीतर है और न बाहर है केवल अद्वैतसत्ता ज्यों की त्यों है । उसके प्रमाद से चित्त की वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है तब जगत् को जाग्रत् देखता है, जब बाहर की इन्द्रियों को त्याग के भीतर आती है तब अन्तर स्वप्न जगत् देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होती है तब और कल्पना मिट जाती है सर्वब्रह्म ही भासता है इससे सर्वकल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति विचारो नाम द्विशताधिकद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ।।232।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति वर्णन

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह तीनों अवस्था आती और जाती हैं इनके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है सो आत्मसत्ता है और वह सदा एक रस है । जिस पुरुष को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है उसको अपना किञ्चन भासता है और जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है यह जगत् चित्त का कल्पा हुआ है और स्वरूप का जिसको प्रमाद है उसको जगत् भासता है । जब इन्द्रियाँ विषयों के सम्मुख होती हैं तब जगत् देखती हैं और उस संकल्पजगत् को देखकर राग-द्वेषवान् होती हैं । फिर इन्द्रियों के अर्थ पाकर जीव हर्ष शोकवान् होता है । हे वधिक! जिस चिद्अणु का इन्द्रियों से सम्बन्ध है उसको संसार का अभाव नहीं होता । नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और श्रोत्र से देखता, स्पर्श करता, रस लेता, सूँघता, सुनता और मानता है तब संसारी होकर दुःख पाता है और जब इनके अर्थ को त्याग के अपने स्वभाव की ओर आता है तब सर्व जगत् को आत्मरूप जानकर सुखी होता है । हे बधिक! चित्त के फुरने का नाम जगत् है और चित्त के स्थित होने का नाम ब्रह्म है-जगत् और कुछ वस्तु नहीं इसी का अभास है चित्त के आश्रय सब नाड़ी हैं उनमें स्थित होकर जीव तीनों अवस्था देखता है पर वास्तव में जीव चिदाकाश आत्मा है-अज्ञान से जीवसंज्ञा पाई है । हे वधिक! ओज धातु जो हृदय है उसमें चिद्अणु स्थित होकर-दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशता है और उसी के ओज के आश्रय सब नाड़ी हैं सो अपने-अपने रस को ग्रहण करती हैं । जब प्राणी भोजन करता है और अन्न जाग्रत नाड़ी में पूर्ण होता है तब जाग्रत् का अभाव हो जाता है और चित्त की वृत्ति और प्राण आने-जाने से रहित हो जाते हैं-वह नाड़ी मुँद जाती है । फिर जब कफनाड़ी में प्राण फुरते हैं तब स्वप्ना भासता है । हे बधिक! जब इन्द्रियों को ग्रहण करके चित्त की वृत्ति बाहर निकलती है तब जाग्रत् जगत् हो भासता है । जब तन्मात्रा को लेकर चित्त की वृत्ति ओज धातु में फुरती है तब स्वप्ना भासता है और जब ओज धातु पर अन्न आदिक द्रव्य का बोझ पड़ता है तब सुषुप्ति होती है । जब निद्रा और जाग्रत का बल होता है तब दोनों भासते हैं और जब दोनों में से एक का बल अधिक होता है तब वही जाग्रत् अथवा सुषुप्ति भासती है । जब निद्रा से रहित मन्द संकल्प होता है- तब उसको मनोराज कहते हैं और जब बाह्य विषयों को त्याग कर चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होती हैं तब स्वप्ना होता है । वहाँ जिस सिद्धान्त में जाता है उसके अनुसार भीतर जगत् भासता है । कफ के बल से चन्द्रमा, क्षीरसमुद्र, नदियाँ, जल से पूर्ण ताल और ताल और वृक्ष, फूल, फल, बगीचे, सुन्दरवन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल, सुन्दर स्त्रियाँ, बेलें, बावलियाँ, इत्यादि सुन्दर और शीतल स्थान देखता है । जब पित्त का बल अधिक होता है तब सूर्य, अग्नि और सूखे वृक्ष, फल और टास देखता है, सन्ध्याकाल के मेघ की लाली देखता है, वन और दूसरे स्थानों में अग्निलगी देखता है और पृथ्वी और रेत तपी हुई और मरुस्थल की नदी दृष्टि आती हैं, जल उष्ण लगता है, हिमालय का शिखर भी उष्ण लगता है और नाना उष्ण पदार्थ दृष्टि आते हैं । जब वायु का बल अधिक होता है तब स्वप्ने में अधिक वायु देखता है और पाषाण की वर्षा होती दृष्टि आती है, अन्धे कूप में गिरता देखता है और हाथी घोड़े दृष्टि आते हैं, आपको उड़ता फिरता देखता है, अप्सरा के पीछे दौड़ता है, पहाड़ों की वर्षा होती, वायु तीक्ष्णवेग से चलती और अन्न से आदि लेकर पदार्थ चलते दृष्टि आते हैं और विपरीत होकर भासते हैं । इस प्रकार वात, पित्त और कफ से स्वप्ने में जगत् देखता है और जिसका बल विशेष होता है वह उस धर्म में दृष्टि आता है । वासना के अनुसार जीव न्यूनाधिक राजसी, तामसी और सात्त्विकी पदार्थ देखता है और जब तीनों इकट्ठे होकर कुपित होते हैं तब

www.tantrik-astrologer.in

प्रलयकाल दृष्टि आता है हे बधिक! जबतक वात, पित्त और कफ के अंश के साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफ के स्थान में प्रवेश करता है तबतक समान जल के क्षोभ भासते हैं । इसी प्रकार वात्, पित्त और कफ जिसके स्थान में जाता है और अन्य के स्वभाव को लेता है तबतक समान क्षोभ भासता है, जब केवल वात का क्षोभ होता है तब महाप्रलय काल के पवन चलते और पहाड़ पर पहाड़ गिरते और भूकम्प आदि क्षोभ होते हैं, जब कफ का क्षोभ होता है तब समुद्र उछलते हैं और पित्त से अग्नि लगती है और महाप्रलय की नाईं तत्त्व क्षोभवान् होते हैं । जब प्राण जाग्रत् नाड़ी में जाते हैं और वह अन्न से पूर्ण होती है तब संवित् उसके नीचे आ जाती है । जैसे भीत के नीचे दर्दुर आवे, पाषाण की शिला में कीट आ जावे और काष्ठ की पुतली काष्ठ में हो । जैसे इनमें अवकाश नहीं रहता तैसे ही और नाड़ी में फुरने का अवकाश नहीं रहता रुक जाती है तब इसको सुषुप्ति होती है । जब कुछ अन्न पचता है तब चित्त संवित् अपने भीतर स्वप्ना देखती है जिसको जिसका विकार विशेष होता है उसी का कार्य देखता है । जब अन्न और जल पचता है तब फिर जाग्रत् जगत् देखता है और जब जाग्रत् और स्वप्न दोनों का बल सम होता है तब दोनों को देखता और अनुभव करता है । हे वधिक! इसी प्रकार तीनों अवस्था होती और मिट जाती है सो तीनों गुणों से होती है । इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवाला है सो गुणों से अतीत है और सर्व का आत्मा है । यह जगत् और स्वप्न-जगत् संकल्पमात्र है, कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता ही किञ्चन करके जगत्ूरूप हो भासता है परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानते हैं और जगत् को सत्य जानकर इष्ट-अनिष्ट में राग द्वेष करते हैं जब बाहर की इन्द्रियाँ सुषुप्ति हो जाती हैं तब भीतर स्वप्ने में भटकता है और उसमें सूर्य, चन्द्रमा, वन,फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् देखता है और जब स्वरूप का अनुभव होता है तब सर्व भटकना मिट जाती है तब शान्ति पाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ||233||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सुषुप्ति वर्णन

बधिकबोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने जगत् और प्रलय देखी थी उसके अनन्तर क्या किया और क्या अवस्था देखी? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! उसके चित्तस्पन्द में मैंने देखा कि बड़े बड़े पहाड़ प्रलय की वायु से सूखे तृण की नाईं उड़ते हैं और पाषाण की वर्षा होती है । इस प्रकार मैंने प्रलय के क्षोभ को देखा और मेरे देखते देखते जाग्रतवाली नाड़ी में अन्न स्थित हुआ तो वहाँ जो अन्न के दाने गिरे सो पर्वत वत् भासे और चित्तस्पन्द जो संवित् थी सो रोकी गई एवं उसमें मैं था सो तामस नरक में जा पड़ा-मानो वहाँ मैं भी जड़ हो गया- और मुझको कुछ ज्ञान न रहा । जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ तब प्राण का स्पन्द फुरा और जैसे वायु निस्पन्द हुई स्पन्द होकर चले तैसे ही वहाँ संवित् फुरी तब सुषुप्ति होकर भासने लगी-मानो आत्मा दृष्टा ही दृश्यरूप होकर भासने लगा परन्तु और कुछ नहीं बना । जैसे अग्नि और उष्णता, जल और द्रवता और मिरच और तीक्ष्णता में भेद नहीं तैसे ही आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं । हे बधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को देखा और सुषुप्ति से जाग्रत् दृश्य उपजी भासी और मुझको दृष्टि आई-जैसे कुमारी कन्या से सन्तान उपजे । वधिक बोला, हे मुनीश्वर! जो सुषुप्ति आत्मा में दृश्य उपजी सो सुषुप्ति क्या है जिसमें तुम दब गये थे वही सुषुप्ति है जिससे जगत् उपजता है? मुनीश्वर बोले, हे बधिक! जहाँ सर्वसम्बन्ध का अभाव है केवल आत्मसत्ता से भिन्न कुछ कहना नहीं बनता उसका नाम सुषुप्ति है और उसमें जो फुरना हुआ उसके तीन पर्याय हैं सो सब सन्मात्र में हैं । जो वस्तु देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है वह सन्मात्र है, उस सन्मात्र में और कुछ बना नहीं उसके जो पर्याय हैं वे ही रूप हैं । वही सत्य वस्तु अपने आपमें विराजता है और कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्त होता, किञ्चन में भी वही रूप है और अकिञ्चन में भी वही रूप है । आत्मा ही का नाम सुषुप्ति है और उसी से सब जगत् होता है । जिस सत्ता का नाम सुषुप्ति है वही स्वप्नदृश्य होकर भासता है-उससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे वायु निस्स्पन्द स्पन्द में वही रूप है, तैसे ही आत्मा दोनों अवस्थाओं में एक ही है । हे वधिक! हम सरीखों की बुद्धि में और कुछ नहीं बना आत्मा ही सदा ज्यों का त्यों स्थित है और शरीर के आदि भी और अन्त भी वही रूप है । उसमें जो किञ्चन द्वारा भासित हुआ है वह भी वही रूप है । जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैत का अनुभव होता है और कहीं फुरना नहीं होता और उसमें जो स्वप्न और जाग्रत् भासि आता है सो भी वही रूप है और जिसमें फुरती और जिसमें भासती है उससे भिन्न कुछ नहीं इससे यह जगत् आत्मा का किञ्चन आत्मरूप है । जब तू जागकर देखेगा तब तुझको आत्मरूप ही भासेगा । जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर का अनुभव होता है वह आकाशरूप है तैसे ही यह जगत् आकाश रूप है और शक्ति भी वही है । सर्वशक्ति आत्मा निष्किञ्चन भी और किञ्चन भी और शून्य भी वही है जो वाणी से कहा नहीं जाता । उस अवस्था में ज्ञानी स्थित है । हे बधिक! ज्ञानवान् को प्रत्यक्ष करके अनुभवरूप ही भासता है जैसे स्वप्ने में जीव और ईश्वर भिन्न-भिन्न भासते हैं और उपाधि करके अनुभवभेद भासता है-वास्तव में कुछ भेद नहीं, तैसे ही जाग्रत् में अज्ञान उपाधि से भेद भासता है पर स्वरूप से आत्मा एकरूप है और जब अज्ञान निवृत्त होता है तब सर्व आत्मरूप ही भासता है । हे वधिक! सर्व जगत् अपना स्वरूप है परन्तु अज्ञान से भेद होता है, जब आपको जाने तब द्वैतभेद भी मिट जावे । जैसे किसी पुरुष ने अपनी भुजा पर सिंह की मूर्ति लिखी हो और उसके भय से दौड़ता फिरे और कष्ट पावे तो वह प्रमाद से भयवान् होता है, क्योंकि वह तो अपना ही अंग है और अपने अंग के जाने से भय

www.tantrik-astrologer.in

मिट जाता है, तैसे ही स्वरूप के ज्ञान से जगत्-भय मिट जाता है । जैसे स्वप्ने में अज्ञान से नानात्व भासता है पर बना कुछ नहीं, तैसे ही जाग्रत् में नानात्व भासता है परन्तु बना कुछ नहीं । जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है तब बोध की दृढ़ता हो आती है । जैसे प्रातःकाल को ज्यों-ज्यों सूर्य की किरणें प्रकट होती हैं त्यों-त्यों सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे ही ज्यों ज्यों मनुष्य अन्त र्मुख होता है त्यों-त्यों बोध खिलता है । विषयों से वैराग्य और आत्मा के अभ्यास से बुद्धि अन्तर्मुख होकर आत्मपद की प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्व एकरस भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिक चतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ||234||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सुषुप्तिवर्णन

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जागकर जगत् को देखा-जैसे कोई पुरुष समुद्र से निकल आवे जैसे संकल्प सृष्टि फुर आवें, जैसे आकाश में बादल फुरते हैं और वृक्ष से फल निकल आते हैं, तैसे ही उसकी सुषुप्ति से सृष्टि निकल आई-मानो आकाश से उड़ आई वा मानो कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकल आई है । जैसे शरीर के रोम खड़े हो आते हैं, जैसे गन्धर्वनगर फुरि आता है, अथवा जैसे पृथ्वी अंकुर निकल आता है, तैसे ही सृष्टि फुरि आई । जैसे भीत पर पुतलियाँ लिखी हों और जैसे थम्भ में पुतलियाँ हों, तैसे ही मैंने सृष्टि को देखा । जैसे थम्भे में पुतलियाँ निकली नहीं परन्तु शिल्पी कल्पता है कि इतनी पुतलियाँ निकलेंगी, तैसे ही अनहोनी सृष्टि आत्मरूपी थम्भ से निकल आती है । आत्मरूपी माटी से पदार्थरूपी बासन निकलते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि आकाश में चित्र होते हैं और निराकार चैतन्य आकाश में पुतलियाँ मनुष्य कल्पता है । हे वधिक! जैसे आकाश में मकड़ी के समूह निकल आते हैं, तैसे ही शून्याकाश से सृष्टि निकल उस पुरुष के हृदय में मुझको स्पष्ट भासने लगी । देश काल क्रिया और द्रव्य से अकस्मात् सत्यासत्य पदार्थ भासने लगते हैं और असत्य पदार्थ सत्य हो भासते हैं । जैसे मणि मन्त्र औषधद्रव के बल से असत्य पदार्थ सत्य हो भासने लगते हैं और सत्य पदार्थ असत्य भासते हैं, तैसे ही अभ्यास के बल से मुझको उस पुरुष के हृदय में सृष्टि भासने लगी । हे वधिक! जैसे निश्चय संवित् में दृढ़ होता है तैसा ही रूप होकर भासता है, वास्तव में न कोई पदार्थ है, न भीतर है, न बाहर है, न जाग्रत है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है, यह सब सृष्टि इसके भीतर ही स्थित है और प्रमाददोष से बाहर से उत्पन्न होते देखता है । जैसे स्वप्न में सब पदार्थ अपने भीतर-बाहर होते भासते हैं तैसे ही ये पदार्थ अपने भीतर से बाहर फुरते भासते हैं । हे वधिक! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्टि आता है सो सब निराकार है और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता ही अज्ञान से जगत्-रूप हो भासती है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् सत्य-असत्य कुछ नहीं भासता केवल ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित भासती है और जो अज्ञानी हैं उनको भिन्न-भिन्न नाम रूप भासता है । जब चित्त की वृत्ति वाह्य फुरती है उसको जाग्रत् कहते हैं, जब अन्तर फुरती है तब उसको स्वप्न कहते हैं और जब स्थिर होती है तब उसको सुषुप्ति कहते हैं, तो एक ही चित्तवृत्ति के तीन पर्याय हुए कुछ वास्तव से नहीं । जगत् के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी और उसमें जब चित्तसंवित् फुरी तब जगत् रूप भासने लगी और किसी कारण जगत् उपजा नहीं । जिसका कारण कोई नहीं उसको असत्य जानिये-वास्तव में कुछ बना नहीं सर्वजगत् शान्तरूप ब्रह्म ही है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिक पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ।।235।।

अनुक्रम

www.astrologer.in

स्वप्ननिर्णय

वधिक बोला, हे मुनीश्वर! प्रलय के अन्तर तुमको क्या अनुभव हुआ था? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तब मुझको उसके भीतर सृष्टि फुर आई और अपने पुत्र, कलत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण कुटुम्ब भासि आये । उनको देखकर मुझको मनत्व फुर आया और पूर्व की स्मृति भूल गई । अपनी षोडशवर्ष की आयु भासी और गृहस्थाश्रम में स्थित हुआ तब राग-द्वेषसहित मुझको जीव के धर्म फुर आये, क्योंकि दृढ़ बोध मुझको न हुआ था । हे वधिक! जब दृढ़ बोध होता है तब राग-द्वेषादिक जीव धर्म चला नहीं सकते और संसार को सत्य जानकर कोई वासना नहीं होती उसी कारण चलायमान नहीं होता । जिसको बोध की दृढ़ता नहीं हुई उसको जगत् की वासना खैंच ले जाती है । हे बधिक! अब मुझको दृढ़बोध हुआ है । इस वासना को तरना महाकठिन है, यह पिशाचिनी महाबली है, क्योंकि चिरकाल से दृश्य का अभ्यास हुआ इस कारण चला ले जाती है । जब सत्शास्त्र का विचार और सन्तों का संग जीव को प्राप्त होता है और अभ्यास दृढ़ होता है तब दृश्य का सद्भाव निवृत्त हो जाता है । जबतक यह मोक्ष का उपाय नहीं प्राप्त होता तब तक वह भ्रम दृढ़ रहता है और जब सन्तों के संग और सत्ःशास्त्रों के विचार से यह विचार उपजते हैं कि `मैं कौन हूँ' और यह जगत् क्या है' और इसको विचारकर आत्मपद का दृढ़ अभ्यास होता है तब दृश्यभ्रम मिट जाता है, क्योंकर असम्यक्ःज्ञान से जगत् सत् भासित हुआ है, जब सम्यक्ज्ञान हुआ तब जगत् का सद्भाव कैसे रहे । जैसे आकाश में नीलता, बाजीगर की बाजी और रस्सी में सर्प भ्रम से भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है । जब प्राणी अपने स्वरूप में जागता है तब जगत्ःभ्रम मिट जाता है- पर जबतक स्वरूप में नहीं जागता तबतक जगत्ःभ्रम नहीं मिटता । बधिक बोला, हे मुनीश्वर जगत्भ्रम यह तुम सत्य कहते हो कि जगत्ःभ्रम मिटना कठिन है । मैं तुम्हारे मुख से बारम्बार सुनता हूँ और बिचारता हूँ और पदपदार्थ का ज्ञान भी मुझको दृढ़ हो गया है परन्तु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता । यह मैं जानता और सुनता हूँ कि सन्तों के संग और सत्शास्त्रो के विचार बिना शान्ति नहीं होती पर यह संशय मुझको होता है कि तुम जाग्रत् को स्वप्नवत् कैसे कहते हो? कई पदार्थ सत्य भासते हैं और कई असत्य भासते हैं । मुनीश्वर बोले, हे बधिक! यह सर्वजगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासते हैं और शशे के सींग आदिक असत्य भासते हैं सो सब मिथ्या हैं जैसे स्वप्ने में सत्य-असत्य पदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्य हैं, तैसे ही यह जगत् असत्य है पर उसमें अल्प और चिरकाल की प्रतीति का भेद है । जाग्रत चिरकाल की प्रतीति है उसमें पदार्थ सत्य भासते हैं और स्वप्ना अल्पकाल की प्रतीति है इससे स्वप्ने के पदार्थ असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रमरूप और असत्य हैं इस कारण मैं तुल्य- कहता हूँ । असत्य ही पदार्थ भ्रम से सत्य की नाईं भासते हैं और यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है उसमें सत्य और असत्य क्या कहूँ । जैसे स्वप्न में कई पदार्थ सत्य और कई असत्य भासते हैं पर सब ही असत्य हैं, तैसे ही जाग्रत् में कई पदार्थ सत्य भासते और कई असत्य भासते हैं परन्तु दोनों भ्रममात्र हैं इसी से असत्य हैं । हे वधिक! प्रतीति का भेद है, पदार्थोंमें भेद कुछ नहीं । जिसमें प्रतीति दृढ़ हो रही है उसको सत्य कहते हैं और जिसमें प्रतीति दृढ़ नहीं उसको असत्य कहते हैं । एक ऐसे पदार्थ हैं कि स्वप्ने में उनकी भावना दृड़ हो गई है सो जाग्रत् में भी प्रत्यक्ष भासते हैं और मनोराज की दृढ़ता जाग्रत्ःरूप हो जाती है सो भावना ही की दृढ़ता है और भेद नहीं । जिसमें भावना दृढ़ हो गई है वह सत्य भासने लगा है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् संकल्पमात्र ही भासता है संकल्प से भिन्न जगत् का कुछ रूप नहीं तो उनमें मैं सत्य और असत्य क्या कहूँ? सब जगत्

www.tantrik-astrologer.in

भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं उनको सत्य-असत्य कुछ नहीं सब ज्ञानरूप ही भासता है । जैसे जिसको स्वप्ने में जाग्रत् की स्मृति आई है उसको फिर स्वप्ना नहीं भासता है, तैसे ही जिसको स्वप्न में भी स्वरूपका बोध हुआ है वह फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता । इससे न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्ना है और न कोई नेति है, क्योंकि नेति भी कुछ और वस्तु नहीं । जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उनकी मर्यादा नेति भी भासती है तो वह नेति किससे है? सब ज्ञानरूप होती है, तैसे ही जाग्रत् में भी सब ज्ञानरूप है और संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और उसमें नेति भी भासती है, इससे न कोई जगत् और न कोई नेति है । इसका कारण कोई नहीं, कारण बिना ही जगत् अकस्मात् फुर आता है और मिट भी जाता है । संवेदन के फुरने से जगत् फुर आता है और संवेदन के मिटे से मिट जाता है-इससे जगत् संवेदनरूप है । जैसे वायु स्पन्दरूप होती है, तैसे ही संवेदन ही जगत्ूरूप हो भासता है । जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब फुरनरूप हो भासती है और निस्स्पन्द को कोई नहीं जानता परन्तु वायु को दोनों तुल्य हैं, तैसे ही चित्तसंवेदन के फुरने में जगत् भासता है और ठहरने में जगत् किञ्चन मिट जाता है-फुरना और ठहरना दोनों उसके किञ्चन हैं और आप दोनों में तुल्य है । हे वधिक! नेति भी अज्ञानी के समझाने के निमित्त कही है । स्वप्ना भी असत्य है सब कोई जानता है पर स्वप्ने का वृत्तान्त जाग्रत् में सिद्ध होता दृष्टि आता है, कोई कहता है कि रात्रि में मुझको स्वप्ना आया है कि अमुक कार्य इसी प्रकार होगा और जाग्रत् में वैसा ही होता दृष्टि आता है, पिता पुत्र से कहजाता है कि मेरी गति करना और अमुक स्थान में द्रव्य गड़ा है तुम निकाल लो सो उसी प्रकार होता दृष्टि आया है । जो नेति होती तो कोई कार्य सिद्ध न होता पर सो तो होता है इससे नेति भी कुछ वस्तु नहीं । आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं ।जाग्रत् उसका नाम है जिसको आत्मशब्द कहते हैं और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो सो कुछ वस्तु नहीं । और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो सो कुछ वस्तु नहीं । जाग्रत् मन सहित षटइन्द्रियों की संवेदन होती है सो स्वप्न में भी मानसहित षटइन्द्रियों की संवेदन होती हैं और उनमें ग्रहण होता है इससे जाग्रत कुछ वस्तु नहीं । जो जाग्रत् में अर्थ सिद्ध होता है और स्वप्ने में भी होवे तो जाग्रत् कुछ वस्तु न हुई और जो तू कहे कि स्वप्ना कुछ वस्तु है तो स्वप्ना भी कुछ वस्तु नहीं, क्योंकि स्वप्ना तहाँ होता है जहाँ निद्राभ्रम होता है । केवल शुद्ध चिन्मात्र सत्ता का जगत् किञ्चन है जैसे रत्नों का चमत्कार स्थित होता है सो रत्नों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं रत्न ही व्यापा है, तैसे ही जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है । बोध सत्ता केवल अपने आपमें स्थित है सो अनन्त है उसमें जगत् कुछ बना नहीं । जो आत्मा से भिन्न जगत् भासता है सो नाशरूप है और आत्मा सदा अविनाशी है । हे वधिक! जब यह पुरुष शरीर को छोड़ता है तब परलोक में सुख-दुःख ऐसे भोगता है जैसे कि जल में तरंग उठकर मिट जाता है और दूसरी ठौर और प्रकार से उठता है सो जल ही जल है, आगे भी जल था, पीछे भी जल है, तरंग भी जल है और जल ही का विलास इस प्रकार फुरता है, तैसे ही यह शरीर भी अनुभवरूप है-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं । जैसे मनुष्य एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्ना देखता है तो क्या है, अपना ही आप है, तैसे ही यह जगत् भी आत्मरूप है । हे वधिक! जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया ये ही चारों वपु हैं । जाग्रत् जो सृष्टि की समष्टिता है उसका नाम विराट् है, स्वप्न जो लिंग शरीर की समष्टिता है उसका नाम हिरण्यगर्भ है, सुषुप्ति शरीर की समष्टिता अव्याकृत माया है और तुरीया सर्वशरीरों की समष्टिता है सो चैतन्यरूप आत्मा है । तुरीया साक्षीभूत के जानने को कहते हैं, उसकी समष्टितारूप चैतन्यवपु है, चारों शरीर उसके हैं और वह सदा निराकार अचेत चिन्मात्र है । हे वधिक!

www.tantrikastrologer.in

ये चारों परमात्मा के शरीर हैं वह परमात्मा निराकार है और आकार जो उसमें दृष्टि आता है सो भी वही रूप है । आकार कल्पनामात्र है और आत्मा सर्वकल्पना से रहित है-इससे सब जगत् चिदाकाश रूप है । जैसे पत्थर की शिला में कमल के फूल नहीं लगते-उनका होना असंभव है, तैसे ही आत्मा में जगत् का होना असंभव है । हे वधिक! आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, तू जागकर देख कि सर्वपदार्थ संकल्पमात्र हैं और जिसमें कल्पित हैं वह नामरूप से रहित है । जब तू उसको देखेगा तब सब जगत् आत्मरूप भासेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्ननिर्णयो नाम द्विशताधिक षट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ।।236।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

स्वप्न विचार

बधिक बोला, हे मुनीश्वर! उस पुरुष के हृदय में जो तुमने सृष्टि देखी थी उसमें तुम किस प्रकार विचरते थे और क्या देखा था सो कहो? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जो कुछ वृत्तान्त है सो तू सुन । जब मैंने उसके हृदय में नाना प्रकार का जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्ब में रहने लगा और पूर्व की स्मृति विस्मरणकर षोडशवर्ष पर्यन्त उसी को सत्य जानकर चेष्टा करता रहा । तब मेरे गृह में मान करने योग्य उग्रतपा नाम एक ऋषीश्वर आया और उसका मैंने बहुत आदर किया । उसके चरण धोकर मैंने सिंहासन पर बैठाया और नाना प्रकार के भोजनों से उसको तृप्त किया । जब उस ऋषि ने भोजन करके विश्राम किया तब मैंने कहा, हे ऋषिश्वर! यह मैं जानता हूँ । तुम परम बोधवान् हो, क्योंकि आपको आपही जानते हो । जब तुम आये थे तब थके हुए थे परन्तु तुम में क्रोध न दृष्टि आया और जब तुमने नाना प्रकार के भोजन किये तब तुम हर्षवान् भी न हुए, इस कारण मैंने जाना कि तुम परम बोधवान हो और तुम्हारे में रागद्वेष कुछ नहीं है । इससे मैं संशययुक्त होकर एक प्रश्न करता हूँ कृपा करके उसका उत्तर देकर मेरे संशय को दूर कीजिये । हे भगवन्! इस जगत् में जो दुर्भिक्ष पड़ता है और सब इकट्ठे मर जाते हैं और कष्ट पाते हैं इसका क्या कारण है? यह तो मैं जानता हूँ कि जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म जीव करता है उसका फल पाता है । जैसे धान को बोता है तो समय पाकर फल भी अवश्य आता है, तैसे ही कर्म का फल भी अवश्य प्राप्त होता है और जिसने किया है वही भोगता है पर दुर्भिक्ष में इकट्ठा कष्ट क्योंकर प्राप्त होता है? उग्रतपा बोले, हे साधो । प्रथम यह सुनो कि जगत् क्या वस्तु है । यह जगत् कारणबिना उत्पन्न हुआ है और जो कारण बिना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये इससे तू विचारकर देख कि `यह जगत् क्या है' `तू कौन है', `इसमें क्या है' और इसका अन्त कहाँ तक है? हे वधिक! यह जगत् स्वप्नमात्र है और यह शरीर भी स्वप्नमात्र है । तू मेरा स्वप्ननर है मैं तेरा स्वप्ननर हूँ और सब जगत् स्वप्नरूप है । कारण कार्य कोई नहीं,सब आभासमात्र है, आभास में कुछ और वस्तु नहीं होती इससे सब जगत् आत्मस्वरूप है । जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होता है, सर्प नहीं रस्सी ही है, तैसे ही सब जगत् चिन्मात्ररूप है । उसमें जगत् कुछ बना नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें अहं होकर इस प्रकार चैतन्यता संवेदन फुरती है तब जगत् आकार का स्मरण होता है और जैसे जैसे संकल्प फुरता है तैसा ही तैसा जगत् भासता है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि और संकल्पनगर नाना प्रकार के भासते हैं पर अनुभव से भिन्न नहीं, तैसे ही यह जगत् भासता है । जिस संवित् में अपना स्वरूप विस्मरण होता है उसको जगत् कारण कार्यरूप भासता है-वही जीव है और जिस संवित् को कर्म की कल्पना स्पर्श करती है उसको उन कर्मों का फल लगता है ज्ञानवान् कर्तव्य करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसके हृदयमें कर्तव्य का अभिमान नहीं स्पर्श करता । जिसके हृदय में कर्तव्य का अभिमान होता है उसको फल भी होता है । हे साधो! यह जो सृष्टि है उसका एक विराट् पुरुष है उसी का यह शरीर है और यह विराट् भी और विराट् के संकल्प में है । यह विराट् उस विराट् का रोमाञ्च है । जब विराट्पुरुष के अंग में क्षोभ होता है । और जीव की पापवासना उदय होती है तब वासना और अंग का क्षोभ इकट्ठा होकर उस स्थान में उपद्रव और कष्ट होता है । जैसे वन में बहुत वृक्ष होते हैं और उन पर वज्र आन पड़ता है तो उससे सब चूर्ण हो जाते हैं तैसे ही इकट्ठे ही मर जाते हैं और इकट्ठे दुर्भिक्ष से कष्ट पाते हैं । जैसे किसी पुरुष के अंग पर मक्खी काटे तो उससे वह अंग काँपता है और उस अंग के काँपने से रोम भी काँपने लग जाते हैं और जो सर्पादिक जीव कहीं डसता है तो

www.tantrik-astrologer.in

सारा शरीर कष्ट पाता है और सब रोम कष्ट पाते हैं, तैसे ही यह जगत् विराट पुरुष का शरीर है जब किसी नगर में पाप उदय होता हे तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्ट पाते हैं और जो सारे अंगरूपी देश में पाप उदय होता है तब सर्प के काटने के समान विराट् का सारा शरीर क्षोभवान् होता है- और उसके शरीर पर रोमरूपी सब जीव कष्ट पाते हैं । आत्मसत्ता केवल अनुभवरूप है उसके प्रमाद से यह आपदा दृष्टि आती है । यह जगत् कारण से उपजा होता तो सत्य होता सो तो कारण से उपजा नहीं सत्य कैसे हो? इस जगत् में सत्य प्रतीति करनी ही अज्ञानता है । हे साधो! इस आकाश का कारण कोई नहीं, पृथ्वी का कारण कोई नहीं और अविद्या का कारण भी कोई नहीं । स्वयंभू अकारण है । स्वयंभू उसका नाम है कि जो अपने आपसे प्रकट है तो उसका कारण कौन हो? अग्नि, जल, वायु का कारण भी कहीं नहीं । जो तुम कहो कि सबका कारण आत्मा है तो आत्मा को निमित्तकारण कहोगे अथवा समवायकारण कहोगे? यदि प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहिये तो नहीं बनता क्योंकि आत्मा अद्वैत है और दूसरी वस्तु कोई नहीं तो निमित्तकारण कैसे हो? यदि समवायकारण कहिये तो भी नहीं बनता, क्योंकि समवायकारण आप परिणाम करके कार्य होता है पर आत्मा अच्युत है और अपने स्वरूप को नहीं त्यागता सो समवायकारण कैसे हो? इससे यदि आत्मा में कारण-कार्यभाव नहीं तो फिर जगत् किसका कार्य हो? हे अंग! जो कारण से रहित दृष्टि आवे उसको जानिये कि भ्रम मात्र भासता है और जो तू कहे कि कारण बिना पिण्डाकार नहीं होते कहीं कारण भी होगा, तो हे अंग! जैसे मनुष्य देह को त्यागता है और परलोक जा देखता है तो कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है पर उस शरीर का कारण किसे कहिये? वह तो कारण से नहीं उपजा भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रममात्र जानो । जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के आकार भासि आते हैं सो किसी कारण से नहीं उपजते और आकाश में तरुवरे और रंग भासते हैं सो भ्रममात्र हैं, तैसे ही यह जगत् भी भ्रममात्र है । जैसे बालक को अनहोता वैताल भासता है और उससे वह भयवान् होता है तैसे ही यह जगत् भी अनहोता स्वरूप के प्रमाद से भासता है, वास्तव में परमात्मसत्ता ज्यों की त्यों है वही संवेदन से जगत्‌रूप हो भासती है-उसमें वही रूप है । जैसे वायु चलने और ठहरने में एक ही रूप है परन्तु चलने से भासती है और ठहरने से नहीं भासती, तैसे ही चित्त संवित् फुरने से जगत् आकार हो भासता है- और उसमें नाना प्रकार के शब्द अर्थ दृष्टि आते हैं जब फुरने से रहित होती है तब अपने स्वभाव को देखती है जब संकल्प की दृढ़ता होती है तब कारण कार्य भासने लगते हैं जिसको कारणकार्य भासता है उसको जगत् सत्य भासता है और जिसको कारणकार्य से रहित भासता है उसको जगत् आत्मरूप है । जिसको कारणकार्य बुद्धि है उसको वही सत्य है । वह पुरुष करेगा तो स्वर्ग में सुख पावेगा और पाप करेगा तो नरक में दुःख भोगेगा-इससे उस को पुण्य ही करना भला है । जब जीव के पाप इकट्ठे होते हैं तब दुर्भिक्ष पड़ता और मृत्यु आती है । जैसे पत्थर की वर्षा हो तैसे ही वे कष्ट पाते हैं और जो मेरा निश्चय पूछो तो न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख और न जगत् है । जब स्वरूप के प्रमाद से अहन्ता उदय होती है तब नाना प्रकार के विकार भासते हैं और जब प्रमाद निवृत्त होता है तब सब आत्मरूप भासता है-इससे तुम सर्व कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो तब सर्व संशय मिट जावेंगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्नविचारो नाम द्विशताधिक सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ||237||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

रात्रिसंवाद

मुनीश्वर बोले, हे बधिक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर ने उपदेश किया उससे मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ और अकृत्रिमपद को प्राप्त हुआ । उग्रतपा के साथ मानो विष्णु भगवान् उपदेश करने आन बैठे थे, उन्हीं के उपदेश से मैं जागा । जैसे कोई रज से वेष्टित स्नान से उज्ज्वल हो तैसे ही मैं हुआ । अपनी पूर्वस्मृति और अवस्था को स्मरणकर और समाधिवाले शरीर और आत्मवपु को भी जान, यह उग्रतपा तेरे पास बैठा है । अग्नि बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब वधिक विस्मय को प्राप्त हुआ और बोला, हे मुनीश्वर! बड़ा आश्चर्य है जो तुम कहते हो कि स्वप्न में मुझको उग्रतपा ने उपदेश किया था और फिर जाग्रत् में कहते हो कि यह बैठा है । यह वार्त्ता तुम्हारी कैसे मानिये? जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पे और कहे यह प्रत्यक्ष बैठा है तो जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता, तैसे ही यह तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता । यह अपूर्व वार्ता सुनकर मुझको संशय उपजा है सो तुम दूर करो । मुनीश्वर बोले, हे वधिक! यह बात आश्चर्य के उपजानेवाली है परन्तु जैसे यह वृत्तान्त हुआ है सो संक्षेप से तुम से कहता हूँ सुनो । जब ऊग्रतपा ने मुझको उपदेश किया तब मैंने कहा, हे भगवन्! तुम यहाँ विश्राम करो और जिस प्रकार मैं रहता हूँ तैसे ही तुम भी रहो । तब मैं वहाँ रहने लगा और उसका उपदेश पाकर विचारा कि यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है और इसके सुख के निमित्त मैं क्यों यत्न करता हूँ? इन्द्रियाँ तो ऐसी हैं जैसे सर्प होते हैं, इनके सेवनेवाला संसाररूप बन्धन से कदाचित् मुक्त नहीं होता । मेरे जीने को धिक्कार है । जो इनके सुख की वाञ्छा करते हैं वे मूर्ख हैं और मृग की नाईं मरुस्थल के जलपान करने के निमित्त दौड़ते हैं और थक पड़ते हैं पर तृप्त कदाचित् न होंगे । मैं अविद्या से सुख के निमित्त यत्न करता था पर इनसे तृप्ति कदाचित् नहीं होती । हे वधिक! ममता के रूप जो बान्धव हैं सो ही चरणों में जंजीर है और अन्धकूप में गिरने का कारण हैं इनसे बँधा हुआ मैं इन्द्रियों के विषयरूपी कूप में गिरा था । अब मैंने विचार किया है कि बन्धन का कारण कुटुम्ब है उसको मैं त्याग दूँ । फिर विचार किया कि इनके त्याग में भी सुख नहीं प्राप्त होता जबतक अविद्या को नष्ट न करूँ । हे वधिक! ऐसे विचारकर मैं गुरु के पास गया और मन में विचार किया कि जगत् भ्रममात्र है और गुरु भी स्वप्नमात्र है इनसे क्या प्राप्त होगा? फिर विचार किया कि नहीं ये ज्ञानवान् पुरुष हैं और इनको `अहंब्रह्म' का निश्चय है इससे ये ब्रह्मस्वरूप हैं और कल्याणमूर्ति हैं इनसे जाके प्रश्न करूँ । तब मैंने जाकर उनको प्रणाम किया और कहा, हे भगवन्! उस अपने शरीर को देख आऊँ और इसके शरीर को भी देखूँ कि कहाँ है । इस जगत् का विराट्पुरुष है । हे वधिक! जब इस प्रकार मैंने कहा तब ऋषि ने हँसकर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! वह तेरा शरीर कहाँ है? वह शरीर तो दूर गया है अब उसे कहाँ देखेगा? तू आप ही जानेगा । तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषि से कहा, हे ऋषे! अब मैं जाता हूँ, मेरे आने तक तुम यहाँ बैठे रहना । हे वधिक! ऐसे कहकर मैं आधिभौतिक देह के अभिमान को त्यागकर अन्तवाहक शरीर से उड़ा और आकाशमार्ग में उड़ता-उड़ता थक गया परन्तु शरीर कहीं न पाया । तब मैं फिर ऋषि के पास आया और कहा हे पूर्व अपर के वेत्ता और भूत भविष्यत् के जाननेवाले! वे दोनों शरीर कहाँ गये? न इस सृष्टि के विराट् का शरीर भासता है जिसके मार्ग से हम आये थे और न अपना शरीर भासता है? हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य! आप इसका कारण बताइये । उग्रतपा बोले, हे कमलनयन और तपरूपी कमल की खानि के सूर्य और ज्ञानरूपी कमल के धारण करनेहारे विष्णु की नाभि और आनन्दरूपी कमल की खानि तू सब कुछ जानता है और आत्मपद

www.tantrik-astrologer.in

में जागा है । तू तो योगीश्वर है, ध्यान करके देख कि सब वृत्तान्त तुझको दृष्टि आये आवे । हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूप है इसमें स्थिर कोई वस्तु नहीं । विचारकर देखो कि शरीर की अवस्था तुमको दृष्टि आवे और जो मुझको पूछते हो तो मैं कहता हूँ । हे मुनीश्वर! जिस वन में तुम रहते थे और जहाँ तुम्हारे शरीर थे उस वन में एक काल में अग्नि लगी और सब प्रकार के वृक्ष और बेलि जल गईं जल भी अग्नि से क्षोभने लगा और वनचारी पशु-पक्षी सब जल गये और महाकष्ट को प्राप्त हुए उसी के साथ तुम्हारा शरीर भी जल गया और कुटी भी जल गई । मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! उस अग्नि से जो सम्पूर्ण वन जल गया तो उसका कारण कौन था? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! यह जगत् जिसमें हम और तुम बैठे हैं इसी का विराट् है और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था और जिसमें उसका और तेरा समाधिवाला शरीर है उसका विराट् और है-वह सृष्टि उस विराट् का शरीर है । हे मुनीश्वर! उस विराट् के शरीर में जो क्षोभ हुआ इस कारण अग्नि उत्पन्न हुई और शरीर, वृक्ष इत्यादिक सब जल गये । इस सृष्टि के विराट् का नाम ब्रह्मा है, उस ब्रह्मा का विराट् और है और उसका विराट् आत्मा है जो सदा अपने आपमें स्थित है । और उसमें कुछ और नहीं बना । जिस पुरुष को उसका प्रमाद है उसको उपद्रव और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं उससे वह कर्मों के अनुसार दुःख सुख भोगता है और जिसको स्वरूप का साक्षात््कार है उसको जगत् आत्मा भासता है अर्थात् सर्वओर से ब्रह्म भासता है । हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वन के पशुपक्षी सब जले तब तुम्हारी कुटी में भी आग लगी इससे वह कुटी और तुम्हारा शरीर अग्नि से जल गया और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था वह भी जलगया । तुम्हारे शिष्य और उसका ओज भी जल गया । और तुम दोनों की संवित् आकाशरूप हो गई । वह अग्नि भी वन को जलाकर अन्तर्धान हो गई ।जैसे अगस्त्य मुनि समुद्र काआचमन करके अन्तर्धान हो गये थे,तैसे ही वह अग्नि भी वन को जलाकर अन्तर्धान हो गई और अब तुम्हारे शरीर की राख भी नहीं रही । जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में नहीं दिखाई देती तैसे ही तुम्हारे शरीर अदृष्ट हो गये । हे मुनीश्वर! यह सर्वजगत् स्वप्नमात्र है । मैं तेरे स्वप्न में हूँ और सब जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सो सबका अपना आप है, जगत् उसी का आभास है । जैसे संकल्पसृष्टि, स्वप्ननगर और गन्धर्वनगर होता है, तैसे ही यह जगत् भी है । हे मुनीश्वर! यह जगत् तेरे स्वप्ने में स्थित है और तुमको चिरकाल की प्रतीति से जाग्रत् रूप कारण कार्य नाना प्रकार का सत्य होकर भासता है । मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत्य हो गया है तो सबही स्वप्ननगर सत्य होंगे? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्य को जान कि सत्य क्या वस्तु है, पर जगत् जो तुझको भासता है सो सबही स्वप्ननगर है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं । इस जगत् को तू समाधि वाले शरीर की अपेक्षा से असत्य कहता है और जिसको तू जाग्रत् वपु कहता है सो किसकी अपेक्षा से कहेगा? यह तो अदृष्टिरूप है इससे इसको स्वप्ना जाना । जिस सत्ता में यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्ना है उस सत्ता को जान तब तुझको सत्यपद की प्राप्ति होगी । जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभास फुरा है, तैसे ही वह भी है । तू जागकर देख तो इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं और सर्व जगत् जो भासता है सो सब आत्मरूप रत्न का चमत्कार है । जैसे सूर्य की किरणों में अनहोता ही जल भासता है, तैसे ही सब जगत् आत्मा में अनहोता भासता है और आत्मा के प्रमाद से सत्य भासता है । तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख । मुनीश्वर बोले, हे वधिक! उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रि के समय इस प्रकार कहते हुए शय्या पर सो गया और जब कुछ काल में जागा तब मैंने कहा कि हे भगवन्! और वृत्तान्त मैं फिर पूछूँगा परन्तु यह संशय प्रथम दूर करो कि व्याध का गुरु तुमने मुझको किस निमित्त कहा, मैं तो व्याध को जानता भी नहीं? उग्र तपा बोले, हे

www.tantrik-astrologer.in

दीर्घतपस्विन्! ध्यान करके देख, तू तो सब कुछ जानता है जिस प्रकार वृत्तान्त है उसको जानेगा । जो मुझ से पूछता है तो मैं भी कहता हूँ और यह वृत्तान्त तो बड़ा है पर मैं तुझको संक्षेप से कहता हूँ, हे मुनीश्वर! तुम्हारे देश में राजा के बान्धव और सब लोग अपना धर्म छोड़ देंगे तब दुर्भिक्ष पड़ेगा और वर्षा न होगी इससे लोग दुःख पावेंगे और मर-मर जावेंगे । तेरे कुटुम्बी भी मरेंगे और कुटी भी नष्ट हो जावेगी और वृक्ष, फल, फूल से रहित होवेंगे । केवल तू और मैं दोनों वन में रह जावेंगे क्योंकि हमको सुख-दुःख की वासना नहीं हम विदितवेद हैं- विदितवेद को दुःख कैसे हो? हे मुनीश्वर! कुछ काल तो इस प्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटी के चौफैर फूल, फल तमाल वृक्ष, कल्पतरु, कमलताल आदि नाना प्रकार की सामग्री होगी, बड़ी सुगन्ध फैलेगी, मोर और कोकिला विराजेंगे और भँवरे कमल पर गुञ्जार करेंगे निदान ऐसा विलास प्रकट होगा मानो इन्द्र का नन्दनवन आन लगा है और ऐसी दशा फिर होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रात्रिसंवादो नाम द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ।।238।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! उग्रतपा ऋषीश्वर ने मुझसे फिर कहा कि हे मुनीश्वर! इस प्रकार वह वन होगा तब तू और मैं एक समय तप करने को उठेंगे और वहाँ एक व्याध मृग के पीछे दौड़ता तेरी कुटी के निकट आवेगा, उसको तू सुन्दर और पवित्र कथा उपदेश करेगा और उसमें स्वप्ने का प्रसंग चलेगा । उस प्रसंग को पाकर स्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा, उससे तू स्वप्ने का प्रसंग कहेगा और उस स्वप्ने के प्रसंग में उसको तू परमार्थ उपदेश करेगा, क्योंकि संत का स्वभाव यही है और मेरे समागम का वृत्तान्त उपदेश करेगा । तेरे वचनों को पाकर वह पुरुष विरक्तचित्त होकर तप करेगा, उससे उसका अन्तःकरण निर्मल होगा और सत्यपद को प्राप्त होगा । हे मुनीश्वर! इस प्रकार होगा सो मैंने तुझे संक्षेप से कहा है, तू भी ध्यान करके देख इस कारण मैंने तुझको व्याध का गुरु कहा है । हे व्याध! इस प्रकार जब उग्रतपा ने मुझसे कहा तब मैं सुनकर विस्मित हुआ कि इसने क्या कहा? बड़ा आश्चर्य है, ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि क्या होना है हे वधिक! इस प्रकार मेरी और उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत हो गई और मैंने स्नान करके प्रीति बढ़ाने के निमित्त भली प्रकार उसकी टहल की तब वह वहाँ रहने लगा । फिर मैं विचार करने लगा कि यह जगत् क्या है, इसका कारण कौन है और मैं क्या हूँ । तब मैंने विचार किया कि यह जगत् अकारण है, किसी का बनाया नहीं और स्वप्नमात्र है । आत्मरूपी चन्द्रमा की जगत्‌रूपी चाँदनी है, उसी का चमत्कार है और वही आत्मसत्ता घट, पट आदिक आकार हो भासती है वास्तव में न कोई कर्म है, न क्रिया है, न कर्त्ता है, न मैं हूँ और न जगत् है । जो तू कहे कि क्यों नहीं सर्व अर्थ और ग्रहण त्याग तो सिद्ध होते हैं तो ग्रहण त्याग पिण्ड से होता है और पिण्ड तत्त्वों से होता है, सो तो यह पिण्ड न किसी तत्त्व से बना है और न किसी माता-पिता से है, यह तो स्वप्ने में फुर आया है तो इसका कारण किसे कहिये? और जो कहिये कि भ्रममात्र है तो भ्रम का कारण कौन है और भ्रान्ति का दृष्टा कौन है? जिस शरीर से दृष्टि आता था उसका दृष्टारूप मैं तो भस्म हो गया इससे जगत् और कुछ वस्तु नहीं, केवल आदि अन्त से रहित आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है सो ही मेरा स्वरूप है । वहाँ यह जगत्‌रूप होकर भासता है, पर केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूप हैं । जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है परन्तु कुछ और नहीं होता, तैसे ही आत्मा नाना प्रकार हो भासता है पर कुछ और नहीं होता ब्रह्मसत्ता ही निराभास है और आभास भी कुछ हुआ नहीं केवल चैतन्यसत्ता ऐसे रूप होकर भासती । हे वधिक! इस प्रकार विचार करके मैं विगत मैं विगतज्वर हुआ और मुनीश्वर के वचनों से पर्वत की नाईं अपने स्वभाव में अचल स्थित हुआ । जो कुछ इष्ट-अनिष्ट पदार्थ प्राप्त हो उसमें सम रहूँ अभिलाषा से रहित सब अपनी चेष्टा को करूँ अपने स्वभाव में स्थित रहूँ । हे बधिक! सुख भोगने के निमित्त न मुझको जीने की इच्छा है और न मरने की इच्छा है, न जीने में हर्ष है और न मरने में शोक है, मैं सदा आत्मपद में स्थित हूँ कुछ संशय मुझको नहीं । संपूर्ण संशय फुरने में है सो फुरना मेरे में नहीं रहा इसलिये संसार भी नहीं है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकैकोनचत्वारिंतमस्सर्गः ||239||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

यथार्थोपदेश

मुनीश्वर बोले, हे व्याध! इस प्रकार जब मैंने निर्णय किया तब तीनों ताप मेरे नष्ट हो गये और वीतराग होकर निःशंक हुआ । तब किसी पदार्थ की मुझको तृष्णा न रही और निरहंकार हुआ और अनात्मा में जो आत्माभिमान था सो निवृत्त होकर निर्वाण और निराधार और निराधेय हुआ और अपने स्वभाव आत्मत्व में मैं स्थित होकर सर्वात्मा हुआ । हे वधिक! जो कुछ शरीर का प्रारब्ध है उसमें मैं यथाशास्त्र बिचरूँ परन्तु कर्तृत्व का अभिमान न हो जगत् मुझको आत्मरूप भासे और तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि अभाव हुई किन्तु आभास कुछ वस्तु नहीं-चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । हे वधिक! मुनीश्वर का कहा वृत्तान्त सत्य होता गया । तुम मेरे पास आये हो इसलिए जो कुछ उपदेश मैंने किया है वह परम पावन और सबका सार है । जिस प्रकार जगत् के पदार्थ तुम और मैं जो वृत्तान्त है सो मैंने तुझसे कहा । व्याध ने पूछा, हे मुनीश्वर! यदि इस प्रकार हैं तो तुम, मैं और ब्रह्मादिक भी सब स्वप्ने के हुए और असत्य ही सत्य की नाईं भासते हैं? मुनीश्वर बोले, हे व्याध! तुम, मैं और ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब स्वप्ने के पदार्थ है, न यह जगत् सत्य है, न असत्य है और न सत्यासत्य के मध्य है, न अनिर्वचनीय है, क्योंकि अनुभवरूप है । हे व्याध! जो अनुभव से देखिये तो वही रूप है और जो अनुभव से भिन्न कहिये तो है ही नहीं । स्वप्ने की सृष्टि अनुभव में फुरती है, जो अधिष्ठान की ओर देखिये तो वही रूप है और उससे भिन्न कहने में नहीं आता । हे बधिक! जैसे कोई नगर देखा है और वह दूर हे तो यदि स्मृति करके देखिये तो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं स्मृतिमात्र है, तैसे ही सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं कुछ बने नहीं । अपने स्वभाव में स्थित होकर देख, तू तो बोधवान् है मिथ्याभ्रम में क्यों पड़ा है? ब्याध! तू मेरे उपदेश से विश्रामवान् हुआ कि नहीं हुआ? मैं जानता हूँ कि परमपद सत्ता में तुमने क्षण भी विश्राम नहीं पाया, क्योंकि दृढ़ भावना नहीं हुई । हे वधिक! परमपद पाने का मार्ग यही है कि सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार करे किन्तु उसमें दृढ़ अभ्यास करे । इस मार्ग बिना शान्ति नहीं होती । जब दृढ़ अभ्यास हो तब शान्ति हो और चित्त निर्वाण हो तब द्वैत अद्वैत कल्पना मिटे । इसी का नाम निर्वाण कहते हैं, जबतक चित्त निर्वाण नहीं होता तबतक राग-द्वेष नहीं मिटता और जब अभ्यास के बल से चित्त निर्वाण हो जाता है तब अविद्या नर्ट हो जअती है और आत्मपद और शान्त शिवपद प्राप्त होता है जो मान और मोह से रहित है । जिसने कुसंग को त्यागा है और किसी के संग से बन्धायमान नहीं होता, जो अध्यात्मविचार नित्य करता है और जिसकी सर्वकामनायें निवृत्त हुई हैं, जो इष्ट के रागद्वेषरूप द्वन्द्वों से मुक्त है और जो सुख दुःख में सम है ऐसा ज्ञान वान् पुरुष अविनाशी आत्मपद को पाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशो नाम द्विशताधिक चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||240||

अनुक्रम

www.antrik-astrologer.in

भविष्यत्कथा वर्णन

अग्नि बोले, हे राजा विपश्चित्! जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब वधिक बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ और मुनीश्वर के वचन सुनकर मूर्तिवत् हो गया । जैसे कागज पर मूर्ति लिखी होती है तैसे ही वह आश्चर्यवान हुआ और संशय के समुद्र में डूब गया जैसे चक्र पर चढ़ा बासन भ्रमता है तैसे ही वह संशय में भ्रमने लगा, मुनीश्वर का उपदेश उसने सुना परन्तु अभ्यास बिना आत्मपद में विश्रान्ति न पाई । हे राजन् परम वचनों को उसने अंगीकार न किया । जैसे राख में डाली आहुति निर्थक होती है- तैसे ही मूर्ख को उपदेश करना निरर्थक होता है मूर्खता से ही वह संशय में रहा और विचारने लगा कि यह संसार अविद्यक है तो मैं इनका अन्त लेऊँ जो मुझको आत्मपद भासे इससे तप करूँ । हे राजा, विपश्चित्! इस प्रकार विचारकर वह उठा और उनके पास फिरने लगा । पवित्र चेष्टा अंगीकार करके उसने व्याध का धर्म त्याग किया और जिस प्रकार वह चेष्टा करे तैसे ही वह भी अधिक चेष्टा करे । निदान सहस्त्र वर्षपर्यन्त बड़ा तप किया परन्तु मन में कामना यही रखी कि मेरा शरीर बड़ा हो और दिन-दिन बहुत भोजन बढ़े, मैं अविद्यक संसार का अन्त लेऊँ कि कहाँ तक चला जाता है, क्योंकि जब अविद्या का अन्त आवेगा तब आत्मा का दर्शन होगा । सहस्त्र वर्ष के उपरान्त जब समाधि से उतरा तो गुरु के निकट जाकर प्रणाम किया और बोला, हे भगवन्! मैंने इतने काल तप किया है परन्तु शान्ति मुझको न हुई । मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तुझको जो मैंने उपदेश किया था उसका तूने भली प्रकार अभ्यास न किया इस कारण तुझको शान्ति न हुई । हे वधिक! मैंने तेरे हृदय में ज्ञानरूपी अग्नि की चिनगारी डाली थी परन्तु तूने अभ्यासरूपी पवन से उसे प्रज्ज्वलित न किया इससे वह ढँप गई-जैसे बड़े काष्ठ के नीचे रञ्चक चिनगारी ढँप जाती है । हे वधिक! तू न मूर्ख है और पण्डित है, क्योंकि जो तू पण्डित होता तो आत्मपद में स्थित पाता । जब अविद्या नष्ट होगी और अभ्यास की दृढ़ता होगी तब ज्ञान और शान्ति उदय होगी । जो तेरी भविष्यत् है वह मैं तुझको कहता हूँ । हे व्याध! यही तूने भली प्रकार विचारा है कि संसार अविद्यक है और इसका अन्त लेऊँ कि कहाँ तक चला जाता है । अब तेरे चित्त में यही निश्चय है और आगे तू यही करेगा कि सौ युगपर्यन्त उग्र तप करेगा तब तुझपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होंगे और देवताओं सहित तेरे गृह में आकर तुझसे कहेंगे कि कुछ वर माँग । तब तू कहेगा, हे देव! अविद्यक जगत् है, वह अविद्या किसी और अणु में है । जैसे दर्पण में किसी ठौर मलीनता होती है और उसके नाश हुए दर्पण शुद्ध होता है, तैसे ही आत्मा के किसी कोण में अविद्यारूपी मलीनता है, उसके नाश हुए चिदात्मा का साक्षात्कार होगा इसलिये जब अविद्यारूपी जगत् का अन्त देखूँगा तब मुझको आत्मा भासेगा । मेरा शरीर घड़ी घड़ी में योजनपर्यन्त बढ़ता जावे । जैसे गरुड़ का वेग होता है तैसे ही मेरा शरीर बढ़ता जावे और मृत्यु भी मेरे वश हो, शरीर भी आरोग्य रहे और ब्रह्माण्ड खप्पर को भी मैं लाँघ जाऊँ । जहाँ मेरी इच्छा हो वहाँ चला जाऊँ और मुझको कोई न रोके, जब मैं संसार का अन्त देखूँगा तब आत्मा को प्राप्त होऊँगा । हे देव! इतने वर दो कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो, और कुछ नहीं चाहिये । हे वधिक! जब इस प्रकार तू वर माँगेगा तब ब्रह्माजी कहेंगे कि ऐसे ही हो । तब तेरा तप से दुर्बल हुआ शरीर फिर चन्द्रमा और सूर्य की नाईं प्रकाशवान् होगा और घड़ी-घड़ी में योजनपर्यन्त बढ़ता जावेगा । और जैसे गरुड़ का तीक्ष्ण वेग से चलना है, तैसे ही तेरा शरीर वेग से बढ़ता जायेगा । जैसे प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है और प्रकाश बढ़ता जाता है, तैसे ही तेरा शरीर बढ़ता जावेगा और चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की नाईं प्रकाशवान् होगा । ब्रह्माजी वर देकर अन्तर्धान हो जावेंगे और अपनी

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मपुरी में प्राप्त होंगे और तेरा शरीर प्रलयकाल के समुद्र की नाईं बढ़ता जावेगा । जैसे वायु से सूखे तृण उड़ते हैं, तैसे ही तुझको ब्रह्माण्ड उड़ते भासेंगे तब तेरा शरीर बढ़ता-बढ़ता ब्रह्माण्ड खप्पर को भी लाँघ जावेगा और उसके परे आकाश भासेगा फिर ब्रह्माण्ड भासेगा और आगे फिर ब्रह्माण्ड भासेगा, इसी प्रकार तू कई ब्रह्माण्ड लाँघता जावेगा परन्तु तुझको खेद कुछ न होगा । निदान महाआकाश को भी तू ढाँप लेगा और जहाँ किसी तत्त्व का आवरण आवेगा उसको तू वर प्राप्त देह से सूक्ष्मतासहित लाँघता जावेगा । हे वधिक! इसी प्रकार तू कई सृष्टि लाँघ जावेगा, जो इन्द्रजाल हैं । जो दीर्घदर्शी हैं वे इनको असत्य जानते हैं और जो प्राकृतजन हैं उनको जगत् सत्य भासता है । ज्ञानवान् को मिथ्या भासता है, उस मिथ्या जगत् को तू लाँघता जावेगा और तहाँ जा स्थित होगा जहाँ अनन्तसृष्टि फुरती भासेंगी । जैसे समुद्र में अनेक तरंग उठते हैं, तैसे ही तुमको सृष्टि फुरती भासेंगी परन्तु जिसमें सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठान का तुझको ज्ञान न होगा । वहाँ तू देखेगा कि मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआ हूँ और जब तुझको ऐसा अभिमान उदय होगा तब साथ ही तप का फल वैराग्य भी उदय होगा और उसके साथ यह संस्कार तेरे हृदय में फुरेगा कि इससे तू उस शरीर का निरादर करेगा और कहेगा कि हा कष्ट हा कष्ट! हे देव! क्या शरीर तूने मुझको दिया है जगत् के अन्त लेने को जो मैंने शरीर बढ़ाया था सो तो अन्त कहीं न आया, क्योंकि अविद्या नष्ट न हुई । अविद्या तब नष्ट होती है जब ज्ञान होता है और आत्मज्ञान तब होता है जब सत्शास्त्रों का विचार और सन्तों का संग होता है जब संग और सत्शास्त्र मुझको प्राप्त होवें तब ज्ञान उपजेगा । यह तो मुझको ऐसा शरीर प्राप्त हुआ है कि बढ़ा भार उठाये फिरता हूँ और अनेक सुमेरु पर्वत भी इसके पास तृणवत् हैं । ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है, इस शरीर से मैं किसकी संगति करूँ और किस प्रकार शास्त्र का श्रवण करूँ? यह शरीर मुझको दुःख दायी हैं इससे इस शरीर का त्याग करूँ । हे वधिक! ऐसे विचारकर तू प्राणायाम करेगा और उसकी धारणा से शरीर त्याग देगा । जैसे पक्षीफल को खाकर गुठली को त्याग देता है और जैसे इन्द्र के वज्र से खण्डित हुए पर्वत गिरते हैं तैसे ही एकसृष्टि भ्रम में तेरा शरीर गिरेगा और उसके नीचे कई पर्वत, नदियाँ और जीव चूर्ण होंगे और वहाँ बड़ा खेद होगा, तब सब देवता चण्डिका का आराधन करेंगे और वह चण्डिका भगवती तेरे शरीर को भोजन कर जावेगी तब सृष्टि में फिर कल्याण होवेगा । इस वन में जो तमाल वृक्ष हैं उनके नीचे तू तप करेगा । यह मैंने तेरी भविष्य कहीं, अब जैसी तेरी इच्छा हो तैसे कर व्याध बोला, हे भगवन्! बड़ा कष्ट है कि मैं इतने खेद को प्राप्त होऊँगा, इससे कोई ऐसा उपाय करो जिससे यह भावना निवृत्त हो जावे । मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जो कुछ वस्तु होनी है सो अन्यथा कदाचित् नहीं होती-जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होती है जैसे चिल्ले से छूटा बाण तबतक चला जाता है जबतक उसमें वेग होता है और जब वेग पूर्ण हो जाता है तबतक पृथ्वी पर गिर पड़ता है अन्यथा नहीं गिरता, तैसे ही जैसा प्रारब्ध का वेग है तैसे ही होगा । भावी फिरने की नहीं अतः जीव उसमें बायाँ चरण दाहिने और दाहिना बायें नहीं कर सकता-जो होना है वही होगा । ज्योतिष शास्त्रवाले जो भविष्यत्ृदशा आगे कहते हैं तैसे ही होता है,क्योंकि होनी होती है-जो न हो तो क्यों कहें इससे भावी मिटती नहीं । हे वधिक! मैंने तुझको दो मार्ग कहे हैं । जबतक कर्म की कल्पना स्पर्श करती है तबतक कर्मके बन्धन से नहीं छूटता और जो कर्म की कल्पना आत्मा को स्पर्श न करे तो कोई कर्म नहीं बन्धन करता, क्योंकि उसको आत्मा का अनुभव होता है और द्वैतरूप कर्म नहीं दिखाई देते सर्व सुख-दुःख आत्मरूप हो जाते हैं । कर्म तबतक बन्धन हैं जबतक आत्मबोध नहीं हुआ, जब आत्म बोध होता है तब सर्व कर्म दग्ध हो जाते हैं ।

www.tantrik-astrologer.in

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भविष्यत्कथावर्णनन्नाम द्विशताधिकै- -कचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||241||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सिद्धनिर्वाण वर्णन

व्याध बोला, हे भगवन्! यह जो तुमने मुझको कहा सो मैं सुन के आश्चर्य को प्राप्त हुआ । शरीर गिरने के उपरांत मेरी क्या अवस्था होगी । मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जब तेरा शरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप महासूक्ष्म अणुवत् हो जावेगी और उस संवित् में तुझको फिर नाना प्रकार का जगत् भासेगा और पृथ्वी, देश, काल पदार्थ सब भासि आवेंगे । जैसे सूक्ष्म संवित् में स्वप्न का जगत् भासि आता है तैसे ही तुझको जगत् भासि आवेगा । वहाँ तेरी संवित् में यह फुरेगा कि मैं अष्टवसुओं के समान राजा हूँ और मेरे पिता का नाम इन्द्र है और माता का नाम प्रद्युम्न की पुत्री बधलेखा है, मेरे पिता मुझको राज्य देकर वन को गये हैं और तप करने लगे हैं और चारों ओर समुद्रपर्यन्त हमारा राज्य है । हे वधिक! वहाँ तेरा नाम सिद्ध होगा और कई सौ वर्षपर्यन्त तू राज्य करेगा और नाना प्रकार के विषयों को भोगेगा । हे वधिक! विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वी में होगा जो तेरे साथ शत्रु भाव करेगा और पृथ्वी और सीमा लेने का यत्न करेगा तब तू मन में विचार करेगा कि मैं बड़ा सिद्ध हूँ और कई सौ वर्ष मैंने निर्विघ्न भोग भोगे हैं- परन्तु एक विदूरथ नाम शत्रु को नाश करूँ । हे वधिक! उसके मारने के निमित्त तू सेना लेके चढ़ेगा और वह चारों प्रकार की सेना नाश को प्राप्त होगी अर्थात् हाथी, घोड़े रथ और प्यादा दोनों ओर की सेना नष्ट होगी और तुम रथ से उतर कर परस्पर युद्ध करोगे । तुम्हारे भी बहुत शस्त्र लगेंगे और शरीर काटा जावेगा, तो भी तुम सम्मुख जो युद्ध करोगे और उसकी टाँग काटकर कुल्हाड़े से उसको मार के अपने गृह में आवोगे । सब दिक्पाल तुमसे भय पावेंगे और तुम बड़े तेजवान् होगे । बड़ा आश्चर्य है कि विदूरथ को जीतकर तुम यमपुरी पठावोगे तब तुम कहोगे कि हे मन्त्रियों! इसमें क्या आश्चर्य है? मेरे भय से तो दिक्पाल भी काँपते है और प्रलयकाल के समुद्र और मेघवत् मेरी सेना है जिसका किसी ओर से आदि और अंत नहीं आता । विदूरथ के जीतने में मुझको क्या आश्चर्य है? तब मंत्री कहेगा, हे राजन्! इतनी सेना तेरे साथ है तो क्या हुआ उस विदूरथ की स्त्री लीला को तुम नहीं जानते, उसने तप करके एक देवी को प्रसन्न किया है जिसके क्रोध करने से सम्पूर्ण विश्व का नाश हो जाता है । वह माता सरस्वती ज्ञानशक्ति और सर्वभूतों के हृदय में स्थित है जैसा उसमें कोई अभ्यास करता है वही सरस्वती सिद्ध करती है । हे राजन् वह राजा और उसकी स्त्री लीला सरस्वती से मोक्ष माँगते थे कि किसी प्रकार हम संसारबन्धन से मुक्त हों, इस कारण वे मुक्त हुए और तुम्हारी जय हुई । राजा ने पूछा, हे अंग! जो सरस्वती मेरे हृदय में स्थित है तो मुझको मुक्त क्यों नहीं करती? मैं भी तो सदा सरस्वती की उपासना करता हूँ । मंत्री बोला, हे राजन्! सरस्वती जो चिद्संवित् है उसमें जैसा निश्चय होता है उसी की सिद्धता होती है । हे राजन्! तुम सदा अपनी जय ही माँगते थे इससे तुम्हारी जय हुई और वह मुक्ति माँगता था इससे उसकी मुक्ति हुई उसका पिछला संस्कार उज्ज्वल था इससे मुक्त हुआ और तुम्हारा पिछले जन्म का संस्कार तामसी था इस कारण तुमको इच्छा न हुई और शान्ति भी प्राप्त न हुई । आदि परमात्मसत्ता से सब पदार्थ प्रकट हुए हैं । केवल आत्मसत्ता जो निष्किञ्चन पद है सो सदा अपने स्वभाव में स्थित है उसी में चेतनता (संवेदन) फुरती है । अहं अस्मि' अर्थात् `मैं हूँ' इस भावना का नाम चित्त है, इसी चेतनता ने देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है । उस कल्पना से विश्व चित्त में स्थित है और चित्त ने आत्मा से फुरकर प्रमाद से देहादिक को कल्पा है । राजा ने पूछा, हे साधो! आत्मा तो निष्किञ्चन और केवल निर्विकार है उसमें तामसीदेह कहाँ से उपजी? मन्त्री बोले, हे राजन्!

www.tantrik-astrologer.in

जैसे स्वप्ने में प्रमाद से तामसी वपु दृष्टि आता है परन्तु है नहीं, तैसे ही यह आकार भी दृष्टि आते हैं परन्तु हैं नहीं अज्ञान से भासते हैं । इससे तुझको प्रमाद हुआ है तब वासना के अनुसार जन्म पाता फिरा है, इस प्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं परन्तु पिछला शरीर जो तू ने भोगा है वह तामस तामसी था इस कारण तुझको मोक्ष की इच्छा न हुई । हे राजन्! तुम्हारे जो जन्म बीते हैं उनको मैं जानता हूँ पर तुम नहीं जानते । राजा ने पूछा, हे निर्मल आत्मन्! तामस-तामसी किसको कहते हैं? मंत्री बोले, हे राजन्! एक सात्त्विक सात्त्विकी है, दूसरा केवल सात्त्विकी हैं, तीसरा राजस-राजसी है, एक तामस तामसी है और केवल तामसी है सो भिन्न-भिन्न सुनो । हे राजन्! निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र सत्ता से जो संवित् फुरी है और जिसकी अहंप्रतीति अधिष्ठान में रही है और निश्चय को नहीं प्राप्त हुए और अनात्मभाव को भी स्पर्श नहीं किया ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्त्विक-सात्त्विकी हैं । जिनको सात्त्विकी पदार्थ भासने लगे हैं और स्वरूप का प्रमाद है बुद्धि से स्पर्श हुआ अथवा न हुआ वे केवल सात्त्विकी हैं । जिनकी संवित् का बुद्धि से सम्बन्ध हुआ है और नाना प्रकार के राजसी पदार्थों में सत्यप्रतीति हुई है, जिन्हें राजसकर्मों में दृढ़अभ्यास है और उसके अनुसार शरीर को धारते चले गये पर स्वरूप की ओर नहीं आये और चिर पर्यन्त ऐसे ही रहे वे राजस राजसी हैं । जिनकी बोध में अहंप्रतीति नहीं स्वरूप का प्रमाद है और जगत् सत्य भासता है एवं राजसी पदार्थों में अधिक प्रीति है और राजसीकर्मों का अभ्यास है उसके अनुसार वे जन्म पाते हैं - और फिर शीघ्र ही स्वरूप की ओर आते हैं उनका नाम केवल राजसी है, वे राजस-राजसी से श्रेष्ठ हैं । जिनको स्वरूप का प्रमाद है और जगत् में सत्य प्रतीति हुई है एवं उस जगत् के तामस कर्मों में दृढ़ अभ्यास हुआ है वे महामूढ़ उसमें चिरपर्यन्त जन्म पाते चले जाते हैं और यदि दैवसंयोग से कभी मुक्त पुरुष की संगति प्राप्त भी होती है तो उसे त्याग जाते हैं वर तामसतामसी हैं । जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है और तामसी कर्मों की रुचि है वे उन कर्मों के अनुसार जन्म पाते जाते हैं और जो हट पड़ा और तामसी कर्मों को त्यागकर मोक्षपरायण होते हैं सो केवल तामसी हैं पर तामस-तामसी से श्रेष्ठ हैं । हे राजन्! तुम तामस-तामसी थे इस कारण सरस्वती से तुम अपनी जय ही माँगते रहे और मोक्ष का अभ्यास तुमने नहीं किया । राजा बोला, हे निर्मल चित्त, मन्त्रिन्! मैं तामस-तामसी था इस कारण मोक्ष की इच्छा न की परन्तु अब मुझसे तुम वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्त हो और आत्मपद की प्राप्ति हो । मन्त्री बोला, हे राजन्! निश्चय करके जानो जो कोई कैसे ही पदार्थ की इच्छा करे अभ्यास से वह पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और जिसकी भावना करके वह अभ्यास करता है वह पदार्थ निस्सन्देह प्राप्त होता है, जिसका जो दृढ़ अभ्यास करता है वह वही रूप हो जाता है । ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जो अभ्यास से न पाइये । जो प्रथम दिन में कोई विकर्म किसी से हुआ और अगले दिन शुभकर्म करे तो वह विकर्म लोप हो जाता है और शुभ कर्म ही मुख्य हो जाता है । जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगे तब तुमको आत्मपद प्राप्त होगा और तुम्हारा जो तामस-तामसी भाव है सो निवृत्त हो जावेगा । हे राजन्! जो पुरुष किसी पदार्थ के पाने की इच्छा करता है और हटकर नहीं फिरता तो वह अवश्य उसको पाता है देह इन्द्रियों का अभ्यास मनुष्य को दृढ़ हो रहा है उससे फिर-फिर देह इन्द्रियाँ ही पाता है, जब उनसे उलटकर आत्मा का अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और देह इन्द्रियों का वियोग हो जावेगा । इसलिये आप भी सदा आत्मपद का अभ्यास करें तो उससे आत्मपद प्राप्त होगा इतना कह फिर मुनीश्वर बोले हे वधिक! इस प्रकार तू सिद्ध राजा होगा और मन्त्री तुझको उपदेश करेगा तब तू राज्य को त्यागकर वन में जावेगा और उपदेश करनेवाला मन्त्री दूसरे मन्त्रियों और सेनासंयुक्त तुझको कहेंगे कि तू राज्य कर

www.tantrik-astrologer.in

परन्तु तेरा चित्त विरक्त होगा और तू राज्य अंगीकार न करेगा उस वन में किसी सन्त के स्थान में जाकर तू स्थित होगा और परम वैरागसंपन्न होगा तब उनकी कथा और प्रसंग तुझको स्पर्श करेगी । यदि सन्तों से कुछ न माँगिये तो भी वे अमृत-रूपी वचनों की वर्षा करते हैं-जैसे पुष्पों से वे माँगे सुगन्ध प्राप्त होती है तैसे ही सन्तजनों से माँगे बिना ही अमृत प्राप्त होता है । जब मनुष्य सन्तों के अमृत वचन सुनता है तब उसको विचार उत्पन्न होता है कि `मैं कौन हूँ' `यह जगत् क्या है'और `जगत् किससे उपजा है' निदान तू उनका उपदेश पाकर इस प्रकार जानेगा कि मैं अचेत चिन्मात्र स्वरूप हूँ और जगत् मेरा आभास है । चित्त का फुरना ही जगत् का कारण है सो चित्त ही मेरे में नहीं है तो जगत् कैसे हो? जगत् तो मेरे में नहीं है मैं अपने ही आप में स्थित हूँ । हे वधिक! इस प्रकार जब तू सब अर्थों से मन को शून्य करके अपने स्वरूप में स्थित होगा तब परमानन्द निर्वाण पद को प्राप्त होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सिद्धनिर्वाणवर्णनन्नाम द्विशताधिक चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||242||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

मुनिश्वर बोले, हे वधिक! इस प्रकार तेरी भावी है सो सब मैंने तुझसे कही आगे जो भला जानता हो सो कर । अग्नि बोले, हे राजन्, विपश्चित्! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने वधिक से कहा तब वह आश्चर्यमान् हुआ और वहाँ से उठकर मुनीश्वर सहित स्नान को गया । निदान दोनों तप करने और शास्त्र को विचारने लगे तब कुछ काल के उपरान्त मुनीश्वर निर्वाण हो गया और केवल वधिक ही तप करने को समर्थ हुआ कि किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट हो । हे राजन्, विपश्चित्! सौ युग पर्यन्त जब वधिक ने तप किया तब ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर आये और बोले कि कुछ वर माँग, तब उस वधिक ने कहा कि मेरा शरीर बड़ा हो और में अविद्या को देखूँ । हे राजन्! यद्यपि वधिक ने जाना कि इस वर के माँगे से मेरा भला नहीं है परन्तु दृढ़ भावना के बल से जानकर भी यही वर माँगा कि घड़ी-घड़ी में मेरा शरीर योजन पर्यन्त बढ़े । ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसे ही होगा । इस प्रकार कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये तब उसका शरीर बढ़ने लगा और एक घड़ी में एक योजन बढ़ते बढ़ते कल्पपर्यन्त बढ़ता गया और कई ब्रह्माण्डों पर्यन्त चला गया पर जिस ओर को वह देखे उस ओर अविद्या रूपी अनन्त सृष्टियाँ उसे दीखें । निदान जब वह चलते चलते थका तब उसने विचारा कि अविद्या का तो अन्त नहीं आता इस शरीर को मैं कहाँ तक उठाये फिरूँ अब इसका त्याग करूँ तब आत्मपद को प्राप्त होऊँगा । हे राजन्, विपश्चित्! तब उसने प्राण को ऊर्ध्व खैंचकर शरीर को त्याग दिया वही शरीर यहाँ आन पड़ा है । जिस ब्रह्माण्ड से यह गिरा है वह हमारे स्वप्ने की सृष्टि है अर्थात् यह अन्य सृष्टि का था इसकी इस सृष्टि में स्वप्नवत् प्रतिभा हुई थी और यहाँ जाग्रत् सृष्टि में आन पड़ा है और पृथ्वी, पहाड़ आदि सब नाश कर डाले हैं जहाँ से यह गिरा है वहाँ आकाश में तरुवरे की नाईं भासता था और यहाँ इस प्रकार गिरा है जैसे इन्द्र का वज्र हो । हे विपश्चितों में श्रेष्ठ! वही वधिक का महाशव था । जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्तपान किया इसलिये उसका नाम रक्ता भगवती हुआ और जो शरीर की सामग्री रही सो पृथ्वी हुई । जब चिरकाल व्यतीत हुआ तब मृत्तिका पृथ्वी हो गई और उस पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा । ब्रह्माजी ने जो नवीन सृष्टि रची है उस पृथ्वी पर अब कल्याण हुआ है इससे अब जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा और मैं भी अब जाता हूँ । इन्द्र को यज्ञ करना है और उसने मेरा आवाहन किया है वहाँ मैं जाता हूँ । भास बोले, हे राजन्, दशरथ! इस प्रकार मुझको कहकर अग्नि देवता अन्तर्धान हो गये । जैसे महाश्याम मेघ से दामिनी चमत्कार करके अन्तर्धान हो जाती है तैसे ही अग्नि जब अन्तर्धान हो गया तब मैं वहाँ से चला और एक सृष्टि में गया तो वहाँ और प्रकार के शास्त्र और और ही प्रकार के प्राणी थे । फिर आगे और सृष्टि में गया वहाँ ऐसे प्राणी देखे कि जिनकी टाँगे काष्ठ की और आचार मनुष्य का था । आगे और सृष्टि में गया तो उसमें लोगों के शरीर तो पाषाण के थे पर दौड़ते और व्यवहार करते थे । उसके उपरान्त और सृष्टि में गया तो वहाँ शास्त्ररूपी उनको मूर्ति थी । उनके आगे गया तो वहाँ क्या देखा कि प्राणी बैठे ही रहते हैं और बल से वार्ता करते हैं परन्तु न कुछ खाते हैं और न पीते हैं । हे राजन् दशरथ! इस प्रकार जब मैं चिरकाल पर्यन्त फिरता रहा परन्तु अविद्या का अन्त कहीं न आया तब मैंने विचार किया कि आत्मज्ञानी हो रहूँ तब अन्त आवेगा और किसी प्रकार अन्त न आवेगा । इस प्रकार विचार करके मैं एक वन में गया और ज्ञान की सिद्धि के लिये तप करने लगा । जब कुछ काल तप किया तब चित्त में यह उपजी कि किसी प्रकार सन्तों के निकट जाऊँ तो उनकी संगति से मुझको शान्तिपद प्राप्त होगा । हे राजन्! ऐसे विचार कर मैं

www.tantrik-astrologer.in

वहाँ से चला और कल्पवृक्ष के वन में आया तो वहाँ एक पुरुष मुझको मिला और उसने कहा, हे साधो! तू कहाँ चला है, मेरे निकट तो आ? तब मैंने उससे पूछा कि तू कौन है? तब उसने कहा कि मैं तेरा तप हूँ जो तूने किया है अब तू कुछ वर माँग सो मैं तुझको दे दूँ । तब मैंने कहा कि हे साधो! मेरी इच्छा यही है कि मैं आत्मपद को प्राप्त होऊँ । उसने कहा हे साधो! अब मुझे एक जन्म और मृग का पाना है । जब वह तेरा शरीर अग्नि में जलेगा तब तू मनुष्य शरीर पावेगा और ज्ञानवानों की सभा में जावेगा । उस सभा में जब तू मनुष्य शरीर धरेगा तब तुझे सब जन्मों और क्रियाओं की स्मृति हो आवेगी और स्वरूप की प्राप्ति होगी इसलिये तू अब मृग शरीर धारण कर । हे राजन् दशरथ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिन्तना की कि मृग होऊँ और मुझे स्वरूपरूप प्रतिमा फुरी कि मैं मृग हो गया । तुम्हारी सृष्टि में एक पहाड़ की कन्दरा में मैं विचरता था कि उसका राजा शिकार खेलने चला और उसने मुझको देख मेरे पीछे घोड़ा उड़ाया । आगे आगे मैं दौड़ता जाता था और पीछे घोड़ा था पर उसका वेग ऐसा तीक्ष्ण था कि उसने मुझको पकड़ लिया और अपने गृह में ले आया । तीन दिन उसने मुझे गृह में रखा परन्तु मेरी बहुत सुन्दर चेष्टा देखी इस कारण प्रसन्नता से यहाँ ले आया । हे राजन्, दशरथ! अब मैंने मृग के शरीर को त्यागकर मनुष्य का शरीर पाया है और जो कुछ तुमने पूछा था सो सब तुमसे कहा । वाल्मीकिजी बोले, हे अंग! जब इस प्रकार विपश्चित् कह चुका तब रामजी ने विपश्चित् से प्रश्न किया कि हे विपश्चित्! वह मृग तो और सृष्टि का था यहाँ क्योंकर आया? भास बोले, हे रामजी! जहाँ वहाँ मिला था वह भी और सृष्टि का था । एक काल में दुर्वासा ऋषीश्वर आकाशमार्ग में ध्यान लगाये बैठा था उसी मार्ग से इन्द्र पृथ्वी में यज्ञ के निमित्त चला और दुर्वासा को शव जानकर चरण लगाया तब दुर्वासा ने समाधि से उतरकर इन्द्र की ओर देखा और शाप दिया कि हे शक्र! तूने मुझे जानकर भी गर्व करके चरण लगाया इसलिये तेरे यज्ञ का एक शव नाश करेगा और जिस स्थान पर वह पड़ेगा सो पृथ्वी भी नाश होगी जब ऐसे उस ऋषि ने शाप दिया और इन्द्र यज्ञ करने लगा तब और सृष्टि से वह शव आन पड़ा और पृथ्वी चूर्ण हो गई । वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तपरूपी मुनीश्वर के वर से मृग होकर तुम्हारी सभा में आया । हे रामजी! जो असत्य होता तो प्रकट न होता और जो सत्य होता तो स्वप्नरूप न होता-जो स्वप्न की सृष्टि का था । हे रामजी! तुम हमारी स्वप्ने की सृष्टि में हो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्ने में है । जैसे स्वप्न पदार्थों का होना हुआ है तैसे ही शव का होना भी हुआ है और मृग का भी हुआ है जैसे यह सृष्टि है तैसे ही वह सृष्टि भी है, जो यह सृष्टि सत्य है तो वह भी सत्य है परन्तु वास्तव में न यह सत्य है और न वह सत्य है, यह भी भ्रममात्र है और वह भी भ्रममात्र है । सत्य वस्तु वही है जो मनसहित षट्‌इन्द्रियों से अगम है और वह आत्म सत्ता है जिससे यह सर्व है और जिसमें सर्व है । ऐसी जो परमात्मसत्ता है सो परमसत्ता है और उसमें सब कुछ बनता है । हे रामजी! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्प का मिलना क्या आश्चर्य है? जैसे छाया और धूप एक नहीं होते और सत्य और झूठ और ज्ञान- अज्ञान इकट्ठे नहीं होते परन्तु आत्मा में इकट्ठे दीखते हैं । हे रामजी! जब मनुष्य शयन करता है तब अनुभवरूप होता है, फिर स्वप्ने में स्वप्न नगर भासि आता है, छाया धूप भी भासि आता है और ज्ञान-अज्ञान, सब झूठ भी भासते हैं । जैसे आकाश में विरुद्ध पदार्थ भासि आते हैं, तैसे ही संकल्प से संकल्प मिल जाता है इसमें क्या आश्चर्य है? सब जगत् आकाशवत् शून्य निराकार निर्विकार है, निराकार में आकार और निर्विकार में विकार भासते हैं यही आश्चर्य है । सर्व आकार दृष्टि आते हैं सो वही निराकार रूप हैं, ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार होकर भासती है । जगत् को असत्य कहना भी नहीं बनता, जो असत्य होता तो प्रलय होकर पृथ्वी,

www.tantrikastrologer.in

अप्, तेज और वायु से आकाश फिर प्रकट न होता पर प्रलय होकर जो फिर उत्पन्न होते हैं इससे असत्य नहीं । चैतन्यरूप आत्मा का ही स्वभाव है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार होकर भासती है । हे रामजी! जब प्रलय होती है तब सब भूत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और फिर उत्पन्न होते हैं इसी से यह सृष्टि आत्मा का आभासमात्र है । ब्रह्मसत्ता में अनन्त जगत् फुरते हैं पर अपनी-अपनी सृष्टि ही को जीव जानते हैं । सब जीव ब्रह्मरूपी समुद्र के कणके हैं सो एक सृष्टि को दूसरा नहीं जानता । जैसे सिद्धों की सृष्टि अपने-अपने अनुभव में फुरती है और जैसे स्वप्ने भिन्न-भिन्न होते हैं, तैसे ही यह अपनी अपनी सृष्टि पृथक है और मिल भी जाती है । आत्मा में सब कुछ बनता है जो कि अनादि और आदि, विधि और निषेध और विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाश में आत्मसत्ता और स्वप्ने में इकट्ठे दृष्टि आते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं । जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । हे रामजी! चार सत्ता इस जगत् में फुरी हैं-सारधी, गोपती, समान ब्रह्मसत्ता और अविद्या-उनमें से सारधी और गोपतीसत्ता तो जिज्ञासु की भावना में भासती है, समानसत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानी को भासती है । ये चारों भी ब्रह्म से भिन्न नहीं, ब्रह्म ही के नाम हैं । ब्रह्मसत्ता स्वभाव चेतनता से ऐसे ही भासती है । जैसे वायु फुरने से चलती भासती है और ठहरने से अचल भासती है- तैसे ही चेतनता (फुरने) से नाना प्रकार के कौतुक उठते हैं और फुरने से रहित निर्वि कल्प हो जाता है! ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि उसमें सत्य नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं कि असत्य नहीं-सब समान हैं । जैसे आकाश के फूल हैं, तैसे ही घट पटादिक हैं और जैसे इनके उत्थान का अनुभव होता है , तैसे ही उनका अनुभव होता है । सर्व पदार्थ सत्ता ही से सत्य भासते हैं सर्व शब्द अर्थ जो फुरे हैं सो सब मिट जाते हैं इससे असत्य हैं और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है कदाचित् अन्यथा नहीं होती । जो मरके न जन्मे तो आनन्द है, क्योंकि मुक्त हुआ और जो मरके जन्म लेता है वह भी अविनाशी हुआ इसलिये शोक करना व्यर्थ है । हे रामजी! जगत् के आदि में भी ब्रह्मसत्ता थी और अन्त में भी वही रहेगी, जो आदि और अन्त में वही है तो मध्य में भी उसे ही जानिये । इससे सब जगत् आत्मरूप है और सर्व शब्द अर्थसंयुक्त है और सर्व शब्द और अधिकार का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता ही है जिसको यथार्थ अनुभव होता है उसको ऐसे भासता है और जिसको यथार्थ अनुभव नहीं होता उसको नाना प्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं सब आकाशरूप है और ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है । ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रममात्र और नाशरूप है । सब दृश्य पदार्थ नाशरूप हैं जिसने उन्हें सत्य जाना है उनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं । जो दूसरा कुछ बना नहीं तो मैं क्या कहूँ? जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं उस अधिष्ठान को देखे तो सब वही रूप भासेंगे । जो पुरुष स्वभाव में स्थित है उसको यह वचन शोभावान् होते हैं । मैंने अनन्त सृष्टियाँ देखी हैं और उनके भिन्न आचार भी देखे हैं । दशो दिशाओं में मैं फिरा हूँ और बहुत भोग भोगे हैं, बड़ी बड़ी विभूति पाई और देखी और अनेक प्रकार की चेष्टा की है, परन्तु मुझको स्वप्ना प्राप्त हुआ, क्योंकि सब भोग पदार्थ और कर्म अविद्या के रचे हुए हैं । उसी अविद्या के अन्त लेने को मैं अनेक युगपर्यन्त फिरा पर अन्त कहीं न पाया वशिष्ठजी की कृपा से अब मुझको स्वरूप का साक्षात्कार हुआ, अविद्या नष्ट हुई और मैं परमानन्द को प्राप्त हुआ हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||243||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

स्वर्गनरकप्रारब्ध वर्णन

बाल्मीकिजी बोले, हे साधो! जब इस प्रकार विपश्चित् ने कहा तब सायंकाल हुआ और सूर्य अन्तर्धान हो गये-मानों विपश्चित् के वृत्तान्त देखने को अन्यसृष्टि में गये-और नौबत नगारे बजने लगे मानो दशरथ की जय-जय करते हैं । उस समय राजा दशरथ ने धन, जवाहिर और वस्त्राभूषण से राजा विपश्चित् का यथायोग्य पूजन किया, दशरथ से आदि लेकर सब राजाओं ने वशिष्ठजी को प्रणाम किया और परस्पर प्रणाम करके सर्वसभा ने अपने-अपने स्थानों को जा स्नान करके यथाक्रम भोजन किया और नियम करके विचारसहित रात्रि व्यतीत की और जब सूर्य की किरणें उदय हुई तो फिर अपने अपने स्थानों पर परस्पर नमस्कार करके आ बैठे तब वशिष्ठजी पूर्व के प्रसंग को लेकर बोले, हे रामजी! यह अविद्यमान है और है नहीं पर भासती है यही आश्चर्य है । जो वस्तु सदा विद्यमान है सो नहीं भासती और जो अविद्या है ही नहीं सो सदा भासती है इसी से इसका नाम अविद्या है । हे रामजी! आत्मसत्ता अनुभवरूप है, उसका अनुभव होना अनिश्चित हो रहा है और अविद्यक जगत् जो कभी कुछ हुआ नहीं सो स्पष्ट होकर भासता है-यही अविद्या है । हे रामजी! सिद्ध राजा के मन्त्री का उपदेश भी तुमने सुना और विपश्चित् का वृत्तान्त भी विपश्चित् के मुख से ही सुना, अब इस विपश्चित् की अविद्या हमारे आशीर्वाद और यथार्थ वचनों से नष्ट होती है और अब यह जीवन्मुक्त होकर बिचरेगा । मेरे उपदेश से इसकी अविद्या अब नष्ट होती है अतः जीवन्मुक्त होकर जहाँ जहाँ इसकी इच्छा हो बिचरे । जब जीव आत्मा की ओर आता है तब अविद्या नष्ट हो जाती है । आत्मतत्त्व को यथार्थ न जानने ही का नाम अविद्या है जो आत्मज्ञान से नष्ट हो जाता है । जैसे अन्धकार तब तक रहता है, जबतक सूर्य उदय नहीं हुआ पर जब सूर्य उदय होता है तब अन्धकार नष्ट हो जाता है, तैसे ही अविद्या तबतक अन्त है जबतक मनुष्य आत्मा की ओर नहीं आया पर जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब अविद्या का अत्यन्त अभाव हो जाता है । अविद्या अविद्यमान है पर असम्यक् दर्शी को सत्य भासती है । जैसे मृगतृष्णा का जल अविद्यमान है और विचार किये से उसका अभाव हो जाता है, तैसे ही भली प्रकार विचार किये से अविद्या का अभाव का अभाव हो जाता है । हे रामजी अविद्या रूपी विष की बेलि देखनेमात्र फूल सहित सुन्दर भासती है परन्तु स्पर्श किये से काँटे चुभते हैं और फल भक्षण किये से कष्ट होता है । यह सब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियों के विषय देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं यही फूल फल हैं पर जब इनका स्पर्श होता है तब तृष्णारूपी कण्टक चुभते हैं और इन्द्रियों के भोग भोगने से राग, द्वेष और कष्ट प्राप्त होता है । हे रामजी! अविद्या भीतर से शून्य है और बाहर से बड़े अर्थसंयुक्त भासती है । जैसे आकाश में इन्द्रधनुष नाना प्रकार के रंग सहित दृष्टि आता है परन्तु अन्तर से शून्य है-अनहोता ही भासता है, तैसे ही अविद्या अनहोती ही भासती है, और जैसे इन्द्रधनुष जलरूप मेघ के आश्रय रहता है, तैसे ही यह अविद्या जड़ मूर्खों के आश्रय रहती है । अविद्यारूपी धूलि जिसको स्पर्श करती है उसको आवरण कर लेती है, जबतक अर्थ नहीं जाना तबतक भासती है और विचार किये से कुछ नहीं निकलता जैसे सीपी में रूपा भासता है पर विचार किये से उसका अभाव हो जाता है तैसे ही विचार किये से अविद्या का भी अभाव हो जाता है । विचार किये से ही अविद्या नष्ट हो जाती है और वह चञ्चल है और भासती है । हे रामजी! अविद्यारूपी नदी में तृष्णारूपी जल है, इन्द्रियों के अर्थरूपी भँवर हैं और रागद्वेषरूपी तेंदुये (ग्राह) हैं जो पुरुष इस नदी के प्रवाह में पड़ता है उसको बड़े कष्ट प्राप्त होते हैं । जो तृष्णारूपी प्रवाह में बहते हैं उनको अविद्यारूपी नदी का अन्त नहीं आता और जो किनारे के सन्मुख होकर वैराग्य और

www.tantrik-astrologer.in

अभ्यासरूपी नाव पर चढ़के पार हुए हैं उनको कोई कष्ट नहीं होता । जो पदार्थ अविद्यारूप हैं उनमें जो भावना करते हैं वे मूर्ख हैं । यह सब अविद्या का विलास है । एक ऐसी सृष्टि है जिसमें सैकड़ों चन्द्रमा और सहस्त्रों सूर्य उदय होते हैं, कई ऐसी सृष्टियाँ हैं जिनमें जीव सदा समताभाव को लिये बिचरते हैं और सदा आनन्दी रहते हैं, कई ऐसी सृष्टि हैं कि जिनमें अन्धकार कभी नहीं होता, कई ऐसी सृष्टि हैं जहाँ प्रकाश और तम जीवों के अधीन है कि जितना प्रकाश चाहें उतना ही करें और कई ऐसी सृष्टि हैं जहाँ जीव न मरते हैं और न बूढ़े होते हैं सदा एकरस रहते हैं और प्रलयकाल में सब इकट्ठे ही मरते हैं । कहीं ऐसी सृष्टि है जहाँ स्त्री कोई नहीं, कहीं पहाड़ की नाईं जीवों के शरीर हैं । हे रामजी! इनसे अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं सो सब अविद्या का विलास है । जैसे समुद्र में वायु से तरंग फुरते हैं, वायु बिना नहीं फुरते, तैसे ही परमात्मरूपी समुद्र में जगत्ारूपी तरंग अविद्यारूपी वायु के संयोग से उठते हैं और मिट भी जाते हैं । हे रामजी! बड़े-बड़े मणि, मोती, सुवर्ण और धातुमय स्थान, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चारों प्रकार के तृप्ति कर्ता पदार्थ, घृतरूप स्थान, ऊख के रस के समुद्र माखन, दही और दूध के समुद्र, अमृत के तालाब, बड़े-बड़े कल्प और तमाल वृक्ष से आदि लेकर सुन्दर स्थान और सुन्दर अप्सरा और बड़े दिव्य वस्त्रों से आदि लेकर जो पदार्थ हैं वे सब संकल्परूप अविद्या के रचे हुये हैं, जो इनकी तृष्णा करते हैं वे मूर्ख हैं उनके जीने को धिक्कार है । हे रामजी! यह अविद्या का विलास है विचार किये से कुछ नहीं निकलता । जैसे मरु स्थल में अनहोती नदी भासती है और विचार किये से उसका अभाव होजाता है, तैसे ही आत्मविचार किये से अविद्या के विलासरूप जगत् का अभाव हो जाता है । जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक इष्ट-अनिष्ट अनेक प्रकार के पदार्थ भासते हैं और कारण कार्य भाव से जगत् भी स्पष्ट भासता है पर जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है उसको सर्व आत्मा ही भासता है । हे रामजी! एक सद्दृष्ट सृष्टि है और दूसरी अदृष्ट सृष्टि है । यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सद्दृष्ट सृष्टि है और जो दृष्टि नहीं आती वह अदृष्ट सृष्टि है पर दोनों तुल्य हैं जैसे सिद्धलोग आकाश में जो सृष्टि रच लेते हैं सो संकल्पमात्र होती है । उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है और अनेक प्रकार की रचना है । उनकी सुवर्ण की पृथ्वी है और रत्न और मणियों से जड़ी हुई, अनेक प्रकार के विषय हैं और अमृत के कुण्ड भरे हुए हैं, उनके अधीन तम और प्रकाश हैं- और अनेक प्रकार की रचना बनी हुई है सो सब संकल्पमात्र है । इसी प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है जैसा-जैसा संकल्प होता है तैसी ही तैसी सृष्टि आत्मा में हो भासती है । हे रामजी! आत्मारूपी डब्बे में सृष्टिरूपी अनेक रत्न हैं, जिस पुरुष को आत्म दृष्टि हुई है उसकी सर्वसृष्टि आत्मरूप है और जिसको आत्मदृष्टि नहीं हुई उसको सर्व जगत् भिन्न-भिन्न भासता है । जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसा ही पदार्थ हो भासता है । जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है, जो तुमको ऐसा तीव्र संवेग हो कि आकाश में नगर स्थित हो तो वहीं भासने लगे । हे रामजी! जिस ओर मनुष्य दृढ़ निश्चय करता है वही सिद्ध होता है । जो आत्मा की ओर एकत्र होता है तो वही सिद्ध होता है और जो दोनों ओर होता है तो भटकता है । जो जगत् की सत्यता को छोड़कर आत्मपरायण हो रहे तो तीव्र भावना से मोक्ष प्राप्त होती है और जो संसार की ओर भावना होती है तो संसार की प्राप्ति होती है निदान जैसा अभ्यास करता है वही सिद्ध होता है । वास्तव में सृष्टि कुछ हुई नहीं वही रूप है जैसी-जैसी भावना होती उसके अनुसार जगत् भासता है । जिसकी भावना धर्म की ओर होती है और सकाम होती है उसको स्वर्गादिक सुख भासते हैं और जिसकी भावना अधर्म में होती है उसको नरकादिक भासते हैं । शुभकर्मों से शान्ति की आशा हो सकती है । शुभ भी दो प्रकार के हैं-एक से स्वर्गसुख भासते हैं और दूसरे को सिद्ध की भावना से सिद्धलोक भासते

www.tantrikastrologer.in

हैं । जिसको अशुभ भावना होती है उसको नाना प्रकार के नरक भासते हैं । हे रामजी! जब यह संवित्त अनात्म में आत्म अभिमान करती है और उनके कर्मों में आपको कर्ता जानती है वह पाप करके ऐसे अनेक दुखों को प्राप्त होती है जो कहे नहीं जाते-जैसे पहाड़ों में दबे जाने से बड़ा कष्ट होता है अथवा अंगारों की वर्षा और अन्ध कूप में गिरने से कष्ट होता है । पर स्त्री के भोगने से अंगारों के साथ स्पर्श करना होता है और अग्नि तप्त लोहे को कण्ठ लगाना पड़ता है । जिस स्त्री ने परपुरुष को भोगा है अन्धे कूपरूप उखली में खड्गरूपी मूसल से कुटती है और जो देहाभिमानी देवतों, पितरों और अतिथि के दिये बिना भोजन करता है उसको भी यम के दूत बड़ा कष्ट देते हैं और खड्ग और बरछी से उसके माँस को काटते और प्रहार करते हैं और वे परलोक में क्षुधा और तृष्णा से कष्टवान् होते हैं । जिन नेत्रों से व्यभिचारियों ने पर स्त्री देखी है उनपर छुरी का प्रहार होता है । एक वृक्ष है जिसके पत्र खड्ग के प्रहार की नाईं लगते हैं और शूली के ऊपर चढ़ने से आदि लेकर उनको कष्ट होते हैं । जो शुभकर्म करते हैं वे स्वर्ग भोगते हैं । इससे जैसे-जैसे कर्म करते हैं उनके अनुसार जगत् देखते हैं और जिस-जिस भाव को चिन्तना करते शरीर त्यागते हैं वह उनको प्राप्त होते हैं । केवल वासनामात्र संसार है जैसा निश्चय होता है तैसा ही भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वर्गनरकप्रारब्ध वर्णनं नाम द्विशताधिक चतुरश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||244||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाणोपदेश

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और वधिक का वृत्तान्त कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है । यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्य से हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्र से तरंग उठते हैं, तैसे ही ब्रह्म में यह प्रतिमा स्वाभाविक उठती है और जैसे पवन में फुरना स्वाभाविक होता है, तैसे ही आत्मा का चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होती है सो वही रूप है, उससे भिन्न नहीं । चिन्मात्र में जो चेतना फुरी है वह जैसी फुरी है तैसे ही स्थित है जबतक इससे भिन्न और फुरना नहीं होता तबतक वही रहता है । जिस प्रतिभा से कार्य कारण भासता है- जैसे शुद्ध चिदाकाश में स्वप्ने की सृष्टि भासती है-उसमें साररूप वही है । वही चित्त चमत्कार से फुरता है-जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं सो समुद्ररूप हैं उससे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तैसे ही सर्व शब्द अर्थ जगत् जो भासता है वही चिन्मात्र है भिन्न वस्तु नहीं । जिनको ऐसा यथार्थ अनुभव हुआ है उनको स्वप्नपुर और संकल्पनगर वत् भासता है और पृथ्वी आदि पदार्थ पिण्डाकार नहीं भासते सब ब्रह्मरूप हो भासता है । हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी और नाशवन्त है वह अविद्या रूप है और जो अव्यभि चारी और अविनाशी है वह ब्रह्मसत्ता है । वह ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवित्ःरूप है और अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागती । वह अनुभव से सर्वदा काल प्रकाशती है उसमें अविद्या कैसे हो? जैसे समुद्र में धूलि का अभाव है, तैसे ही आत्मा में अविद्या का अभाव है जो सर्व आकार दृष्टि आते हैं सो सब चिदाकाशरूप हैं-जैसे तुम अपने मन में, संकल्प धारकर इन्द्र हो बैठो और चेष्टा भी इन्द्र की सी करने लगो अथवा ध्यान में इन्द्र रचो और ध्यान से प्रतिमा सिद्ध हो आवे तो जबतक वह संकल्प रहे तब तक वही भासता है और जब इन्द्र का संकल्प क्षीण हो जाता है तब इन्द्र की चेष्टा भी निवृत्त हो जाती है सो संकल्प से वही चिन्मात्र इन्द्ररूप हो भासता है, तैसे ही यह सर्वजगत् जो भासता है सो सब चिन्मात्ररूप है पर संवेदन द्वारा पिण्डाकार हो भासता है और जब संवेदन फुरना निवृत्त होता है तब सब जगत् आत्मरूप भासता है । ब्रह्मसत्ता तो सदा अपने आप में स्थित है पर जैसा फुरना होता है, तैसा हो भासता है-सब जगत् उसी का चमत्कार है । जैसे समुद्र में तरंग समुद्ररूप होते हैं । तैसे ही निराकार परमात्मा में जगत् भी आकाशरूप है, भिन्न कुछ नहीं सर्व ब्रह्मस्वरूप है । इसका नाम परमबोध है । जब इस बोध की दृढ़ता होती है तब मोक्ष होता है । जिसको सम्यक्ःबोध होता है उसको सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप अपना आप भासता है जिसको सम्यक्ःबोध नहीं हुआ उसको नानाप्रकार का द्वैतरूप जगत् भासता है । हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रों से तीक्ष्ण हुई है और वैराग्य अभ्यास से सम्पन्न और निर्मल है उसको आत्मपद प्राप्त होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के अर्थ से निर्मल नहीं भई उसको अज्ञानसहित जगत् भासता है । जैसे किसी पुरुष के नेत्र में दूषण होता है तो उसको आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रम से तारे भासते हैं, तैसे अज्ञान से जगत् भासता है यह सर्व जाग्रत् जगत् स्वप्नामात्र है । जब जीव स्वप्ने में होता है तब स्वप्ना भी जाग्रत् भासता है और जाग्रत् स्वप्ना हो जाता है और जाग्रत् में स्वप्न का अभाव हो जाता है और जाग्रत सत्य भासती है । अल्पकाल का नाम स्वप्ना है और दीर्घकाल का नाम जाग्रत् है पर आत्मा में दोनों तुल्य हैं । जैसे दो भाई जोड़े जन्मते हैं सो नाममात्र दो हैं वास्तव में एकरूप हैं, तैसे ही जाग्रत् स्वप्न तुल्य ही है । जब पुरुष शरीर को त्यागता है तब परलोक जाग्रत् हो जाता है और यह जगत् स्वप्नवत् हो जाता है जैसे स्वप्ने से जाग कर स्वप्ने के पदार्थों भ्रममात्र जानता है और जाग्रत को सत जानता है, तैसे ही सब जीव परलोक को जाता है तब इस जगत् को स्वप्न जानता है और

www.tantrik-astrologer.in

कहता है कि स्वप्ना सा मैंने देखा था और वह परलोक सत्य हो भासता है । फिर वहाँ से गिरकर इस लोक में आ पड़ता है तब इस लोक को सत्य जानता है और जाग्रत् मानता है और उस परलोक को स्वप्नभ्रम मानता है । हे रामजी! जबतक शरीर से सम्बन्ध है तब तक अनेक बार जाग्रत् देखता है और अनन्त ही स्वप्ने देखता है । हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यन्त अनेक स्वप्ने आते हैं, तैसे ही मोक्षपर्यन्त अनेक जाग्रत्ूप जगत् भासते हैं और भ्रमान्तर में इनकी सत्यता और जाग्रत् में स्वप्ने के पदार्थ स्मरण करता है । जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकर अपने जन्म को स्मरण करता है और कहता है कि सब भ्रममात्र थे, तैसे ही यह जब जागेगा तब कहेगा कि सब भ्रममात्र प्रतिमा मुझको भासी थी, न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है, क्योंकि दृश्य अविद्यक बन्ध मोक्ष ऐसा है कि जब चित्त की वृत्ति निर्विकल्प होती है तब मोक्ष भासता है और जबतक वासना विकल्प सत्य है तबतक बन्ध भासता है । हे रामजी! आत्मा में बन्ध मोक्ष दोनों नहीं, क्योंकि बन्ध हो तो मोक्ष भी हो पर बन्ध ही नहीं तो मोक्ष कैसे हो? बन्ध और मोक्ष दोनों चित्तसंवेदन में भासते हैं इससे चित्त को निर्वाण करो तब सब कल्पना मिट जावेगी । जितने पदार्थों के प्रतिपादन करनेवाले शब्द है उनको त्यागकर निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है उसमें स्थित हो रहो और खाना, पीना, बोलना, चलना आदि सब क्रिया करो परन्तु हृदय से परमपद पाने का यत्न करो । हे रामजी! प्रथम नेति नेति करके सर्वशब्दों का अभाव करो, फिर अभाव का भी अभाव करो तब उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता परमनिर्वाणरूप है उसी में स्थित हो रहो जो कुछ अपना आचार कर्म है उसे यथाशास्त्र करके हृदय से सर्वकल्पना का त्याग करो-इस प्रकार आत्मसत्ता में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणोपदेशो नाम द्विशताधिक पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||245||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब चिदाकाश आत्मरूप हैं । ज्ञानवान् को सदा वही भासता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता । रूप, दृश्य, अवलोक, इन्द्रियाँ और मनस्कार फुरने का नाम संसार है सो यह भी आत्मरूप है-आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । जैसे अपनी ही संवित स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कार हो भासती है । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु अज्ञान् से भिन्न-भिन्न भासते हैं । जो जागा है उसको अपना आप भासता है । जैसे अपनी चैतन्यता ही स्वप्नपुर होकर भासती है, तैसे ही जगत् के पूर्व जो चैतन्यसत्ता थी वही जगत्ूरूप होकर भासती है । जगत् आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु नहीं वही स्वरूप है । जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत होता है इससे तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही आत्मा का स्वभाव चैतन्य है । वही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत् आकार हो भासती है इस प्रकार जानकर जो परमशान्ति निर्वाणपद है उसमें स्थित हो रहो । हे रामजी! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासता है, असत्य ही सत्य होकर भासता है । यही आश्चर्य है कि निष्किञ्चन और किञ्चन की नाईं होकर भासता है । आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निर्विकार है परन्तु दृष्टि से नाना प्रकार के विकार भासते हैं । जब सर्व विकारों को निषेध करके असत् रूप जानिये तब सर्व के अभाव हुए आत्म सत्ता शेष रहती है । जैसे शून्य स्थान में अनहोता वैताल भासि आता है, तैसे ही अज्ञानी को अनहोता जगत् आत्मा में भासि आता है, जो पुरुष स्वभाव में स्थित हुए हैं उनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है । जब सत्ूशास्त्रों और सन्तों की संगति होती है और उनके तात्पर्य अर्थ में दृढ़ अभ्यास होता है तब स्वभाव सत्ता में स्थिति होती है । जिन पदार्थों के पाने के निमित्त मनुष्य यत्न करता है वे मायिक पदार्थ बिजली के चमत्कारवत् उदय भी होते हैं और नष्ट भी होते हैं । ये पदार्थ विचार बिना सुन्दर भासते हैं और इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं, क्योंकि उनका जगत् सत्य भासता है । ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थों की तृष्णा नहीं होती, क्योंकि वह जगत् को मृगतृष्णा की नाईं असत्य जानता है और ब्रह्मभावना में दृढ़ है । अज्ञानी को जगत् की भावना है इससे ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता पर अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी जानता है । जैसे सोये हुए पुरुष को निद्रा दोष से स्वप्ना आता है और उसमें जगत् भासता है पर जाग्रत् पुरुष जो उसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्ने का जगत् नहीं भासता । वह असत् है इसलिये उसके निश्चय को स्वप्नवाला नहीं जानता और स्वप्न वाले के निश्चय को वह जाग्रत्ूवाला नहीं जानता है, तैसे ही ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता । मृत्तिका की सेना को बालक सेना करि मानता है पर जो जाननेवाले बड़े पुरुष हैं उनको वह सब सेना मृत्तिकारूप भासती है और जब वह बालक भी भली प्रकार जानता है तब उसको भी सेना और वैताल का अभाव हो जाता है मृत्तिका ही भासती है, तैसे ही ज्ञानवान् को सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है । हे रामजी! जब पुरुष को आत्म का अनुभव होता है तब जगत् के पदार्थों की इच्छा नहीं रहती । जैसे स्वप्ने में किसी को मणि प्राप्त होती है तो वह प्रीति करके उसको रखता है पर जब जागता है तब उसे भ्रम जानकर उसकी इच्छा नहीं करता, तैसे ही जब जीव आत्मपद में जागेगा तब जगत् के पदार्थों की इच्छा न करेगा । जैसे जो कोई मरुस्थल की नदी को असत्य जानता है वह उसमें जलपान के निमित्त यत्न नहीं करता तैसे ही जो जगत् को असत् जानता है वह उसके पदार्थों की इच्छा नहीं करता । जिस शरीर के निमित्त मनुष्य यत्न करता है वह शरीर भी क्षणभंगुर है । जैसे पत्र पर जल की बूँद स्थित होती है सो क्षणभंगुर और असार है और पवन लगने से क्षण में गिर जाती है, तैसे ही यह शरीर भी

www.tantrik-astrologer.in

नाशवन्त हैं । जैसे धूप से तपा हुआ मृग मरुस्थल की नदी को सत्य जानकर जल पान करने के निमित्त दौड़ता है और मूर्खता के कारण कष्ट पाता है परन्तु तृप्त नहीं होता, तैसे ही मूर्ख मनुष्य विषय पदार्थों को सत्य जानकर उनके निमित्त यत्न करके कष्ट पाता है- कदाचित् तृप्त नहीं होता । हे रामजी! पुरुष अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है । जब सत्यमार्ग में विचरता है और अपना उद्धार करता है तब पुरुष प्रयत्न से अपना आपही मित्र होता है और जो सत्यमार्ग में नहीं विचरता और पुरुष प्रयत्न करके अपना उद्धार नहीं करता तो वह जन्ममरण संसार में आपको डालता है और वह अपना आपही शत्रु है जो अपने आपको यत्न करके उद्धार करता है वह अपने ऊपर दया करता है हे रामजी! जो इन्द्रियों के विषयरूपी कीचड़ में गिरा हुआ है और अपने ऊपर दया नहीं करता वह महा अज्ञान तम को प्राप्त होता है और जो पुरुष इन्द्रियों को जान के आत्मपद में स्थित नहीं होता उसको शान्ति भी नहीं होती । जब बालक अवस्था होती है तब शून्य बुद्धि होती है, वृद्धावस्था में अंग क्षीण होते जाते हैं और यौवन अवस्था में इन्द्रियों को नहीं जीत सकता तो कब होगा? जो तिर्यक आदिक योनि हैं वे मृतकवत् हैं यत्न का समय यौवन अवस्था है, क्योंकि बाल अवस्था तो जड़ गुंगरूप है और वृद्धावस्था महानिर्बल सी है उसमें अपने अंग ही उठाने कठिन हो जाते हैं तो विचार का क्या फल हुआ वह तो बालकवत् है । इससे कुछ यत्न यौवन अवस्था में ही होता है जो इस अवस्था में लम्पट रहा वह महाअनिष्ट नरक को प्राप्त होगा । हे रामजी! विषयों से प्रसन्न न होना यह शरीर नाशरूप है तो विषय क्यों भोगे । श्रुति करके भी जानता है और अनुभव करके भी जानता है कि यह शरीर नाशरूप है पर उसी शरीर में सत्य भावना करके जो विषयों के सेवने का यत्न करता है उसके सिवा दूसरा मूर्ख कोई नहीं वही मूर्ख है इससे जो इन्द्रियों को जीतेगा वह जन्मान्तर को न प्राप्त होगा । हे रामजी! तुम जागो और आपको अविनाशी और अच्युत परमानन्दरूप जानो । यह जगत् मिथ्या है-इसको त्याग दो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकषट्चत्वारिंशतमस्सर्गः ||246||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

इन्द्रिययज्ञवर्णन

श्रीरामजी बोले, हे भगवन्! तुम सत्य कहते हो कि इन्द्रियों के जीते बिना शान्ति नहीं होती, इससे इन्द्रियों के जीतने का उपाय कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुए हैं और उसने इन्द्रियों को जीता नहीं तो वह शोभा नहीं पाता जो त्रिलोकी का राज्य प्राप्त हो और इन्द्रियाँ न जीती तो उसकी कुछ प्रशंसा नहीं । जो बड़ा शूरवीर है पर उसने इन्द्रियों को नहीं जीता उसकी शोभा भी कुछ नहीं और जिसकी बड़ी आयु है पर उसने इन्द्रियाँ नहीं जीती तो उसका जीना भी व्यर्थ है । जिस प्रकार इन्द्रियाँ जीती जाती हैं और आत्मपद प्राप्त होता है सो प्रकार सुनो । हे रामजी! इस पुरुष का स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्र है, उसमें जो संवित्त फुरी है उस ज्ञानसंवित् को अन्तःकरण और दृश्य जगत् से सम्बन्ध हुआ है-उसी का नाम जीव है । जहाँ से चित्त फुरता है वहीं चित्त को स्थित करो तब इन्द्रियों का अभाव हो जावेगा । इन्द्रियों का नायक मन है, जब मनरूपी मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यासरूपी जंजीर से वश करो तब तुम्हारी जय होगी और इन्द्रियाँ रोकी जावेंगी । जैसे राजा के वश किये से सब सेना भी वश हो जाती है, तैसे ही मन को स्थित किये से सब इन्द्रियाँ वश हो जावेंगी । हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करोगे तब शुद्ध आत्म सत्ता तुमको भासि आवेगी । जैसे वर्षाकाल के अभाव से शरत्काल में शुद्ध निर्मल आकाश भासता है और कुहिरे और बादल का अभाव हो जाता है, तैसे ही जब मनरूपी वर्षाकाल और वासनारूपी कुहिरे का अभाव हो जावेगा तब पीछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता ही भासेगी । हे रामजी! ये सर्व पदार्थ जो जगत् में दृष्टि आते हैं वे सब असत्यरूप हैं-जैसे मरु स्थल की नदी असत्यरूप होती है- इनमें तृष्णा करना अज्ञानता है । जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्त हो उनको त्यागकर आत्मा की ओर वृत्ति आवे तब जानिये कि मुझको इन्द्र का पद प्राप्त हुआ है । विषयों में आसक्त होना ही बड़ी कृपणता है । इनसे उप राम होना ही बड़ी उदारता है, इससे मन को वश करो कि तुम्हारी जय हो । जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तप्त होती है और जो चरणों में जूता है तब तपन नहीं लगती तैसे ही अपना मन वश किये से जगत् आत्मरूप हो जाता है । हे रामजी! जिस प्रकार जनेन्द्र ने मन को वश किया था तैसे ही तुम भी मन को वश करो । जिस जिस ओर मन जावे उस उस ओर से रोको, जब दृश्य जगत् की ओर से मन को रोकोगे तब वृत्तिसंवित् ज्ञान की ओर आवेगी और जब संवित् ज्ञान की ओर आई तब तुमको परम उदारता प्राप्त होगी और शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा । तीर्थ, दान और तप करके संवित् का अनुभव होना कठिन है परन्तु मन के स्थित करने से सुगम ही अनुभव की प्राप्ति होती है । मन स्थित करने का उपाय यही है कि सन्तों की संगति करना और राति -दिन सत्शास्त्रों का विचारना । सर्वदा काल यही उपाय करने से शीघ्र ही मन स्थित होता है और जब मन स्थित होता है तब आत्मपद का अनुभव होता है । जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है वह संसारसमुद्र में नहीं डूबता । चित्तरूपी समुद्र में तृष्णारूपी जल है और कामनारूपीलहरें हैं जिस पुरुष ने शम और संतोष से इन्द्रियाँ जीती हैं वह चित्तरूप समुद्र में गोते न खावेगा और जिसने इन्द्रियों को जीतकर आत्मपद पाया है उसको नानात्व जगत् फिर नहीं भासता । जैसे मरुस्थल की निराकार नदी में लहरें भासती हैं पर जब निकट जाकर भली प्रकार देखिये तो वह लहरों संयुक्त बहती दृष्टि नहीं आती, तैसे यह जगत् आत्मा का आभास है और जब भली प्रकार विचार के देखिये नानात्व दृष्टि नहीं आता आत्मसत्ता ही किञ्चन करके जगत्रूप हो भासती है ।जैसे जल अपने द्रव स्वभाव से तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत्रूप हो भासती है । हे रामजी । जब आत्मबोध होता है तब फिर दृश्यभ्रम नहीं

www.tantrik-astrologer.in

भासता जैसे साकाररूप नदी का भाव निवृत्त होता है तो फिर बहती है और जो निराकार नदी का सद्भाव निवृत्त होता है तब फिर नदी का सद्भाव होता है। निराकार मृगतृष्णा की नदी जब ज्यों की त्यों जानों तब फिर सत् नहीं होती। हे रामजी! वास्तव में न कर्म हैं, न इन्द्रियाँ हैं, न कर्त्ता है अर्थात् कुछ उपजा नहीं। जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार की क्रिया कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं तैसे ही यह जानो। आकाशरूप आत्मा में आकाशरूप जगत् स्थित् है। जैसे अवयवी और अवयव में भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं और जैसे अवयव अवयवी रूप है, तैसे ही जगत् आत्मा का रूप है। जब आत्मा में स्थिति होगी तब अहं-त्वं आदिक शब्दों का अभाव हो जावेगा और द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहेंगे। द्वैत अद्वैत शब्द भी अज्ञानी बालक के समझाने के निमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं वे इन शब्दों पर हँसी करते हैं कि अद्वैतमात्र में इन शब्दों का प्रवेश कहाँ है। जिनको यह दशा प्राप्त हुई है उनको न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीया में कुछ थोड़ा ही भेद है कि सुषुप्ति में अज्ञान और जड़ता रहती है और तुरीया में अज्ञान और जड़ता नहीं रहती वह चैतन्य अनुभव सत्तारूप है और स्वप्न और जाग्रत् में भी भेद नहीं परन्तु इतना भेद है कि अल्पकाल की अवस्था को स्वप्ना कहते हैं और चिरकाल की अवस्था को जाग्रत् कहते हैं। हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप हैं। जाग्रत् और स्वप्न ये उभय स्वप्नरूप हैं, सुषुप्ति अज्ञानरूप है, जाग्रत् तुरीयारूप है और जाग्रत् कोई नहीं। जिस जागने से फिर भ्रम प्राप्त हों उसको जाग्रत् कैसे कहिये? उसको तो भ्रममात्र जानिये और जिस जागने से फिर भ्रम को न प्राप्त हो उसका नाम जाग्रत् है। जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चारों अवस्थाओं में चिन्मात्र घनीभूत हो रहा है वह चारों को नहीं देखता। ज्ञानवान् जब प्राण का स्पन्द रोककर आत्मा की ओर चित्त को लगाते हैं, परस्पर ज्ञानमात्र का निर्णय और चर्चा करते हैं और ज्ञान की ही कथा-कीर्तन करते और उससे प्रसन्न होते हैं ऐसे नित्य जाग्रत् पुरुष जो निरन्तर प्रीतिपूर्वक आत्मा को भजते हैं उनको आत्म विषयिणी बुद्धि उदय होती है और उससे वे शान्ति को प्राप्त होते हैं। जिनको सदा अध्यात्म अभ्यास है और उस अभ्यास में वे तत्पर हुए हैं उनको आत्मपद प्राप्त होता है जो अज्ञानी हैं वे राग द्वेष से जलते हैं और जिनको आत्मा का दृढ़ अभ्यास हुआ है उनको शान्ति प्राप्त होती है और आत्मस्थिति प्राप्त होती है जिसके आगे-इन्द्र का राज्य भी सूखे तृणवत् भासता है और सर्व जगत् उसको आत्मरूप भासता है। जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार के जगत् भासते हैं। जैसे सोये हुए पुरुष को स्वप्ने की सृष्टि सत्य होकर भासती है और जाग्रत् हुए को स्वप्ने की सृष्टि भी अपना आपरूप भासती है। ज्ञानवान् को सर्व आत्मरूप भासता है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। जब आत्म अभ्यास का बल हो और अनात्मा के अभाव का अभ्यास दृढ़ तब जगत् का अभाव हो जावे और अद्वैत सत्ता का भान हो। हे रामजी! मैंने तुमको बहुत उपदेश किया है, जब इसका अभ्यास होगा तब इसका फल जो ब्रह्म बोध है सो प्राप्त होगा अभ्यास बिना नहीं प्राप्त होता। जो एक तृण लोप करना होता है तो भी कुछ यत्न करना होता है यह तो त्रिलोकी लोप करनी है। हे रामजी! जैसे बड़ा भार जिस पर पड़ता है वह बड़े ही बल से उठता है बिना बड़े बल नहीं उठता, तैसे ही जीव पर दृश्यरूपी बड़ा भार पड़ा है, तब आत्मरूपी अभ्यास का बड़ा बल हो तब वह इसको निवृत्त करे नहीं तो निवृत्त नहीं होता। यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको बारम्बार विचारो। मैंने तो तुमको बहुत प्रकार और बहुत बार कहा है। हे रामजी अज्ञानी को ऐसे बहुत कहने से भी कुछ नहीं होता। तुमको जो मैंने उपदेश किया है वह सर्वशास्त्रों और वेदों का सिद्धान्त है। जिस प्रकार वेद को पाठ करते हैं उसी प्रकार इसको पाठ कीजिये और विचारिये और इसके रहस्य को हृदय में धारिये तब

www.tantrikastrologer.in

आत्मपद की प्राप्ति होगी और शास्त्र भी इसके अवलोकन से सुगम हो जावेंगे । यदि नित्य इस शास्त्र को श्रद्धासहित सुने और कहे तो अज्ञानी जीव को भी अवश्य ज्ञान की प्राप्ति होती है । जिसने एक बार सुना है और कहने लगा है कि एक बार तो सुना है फिर क्या सुनना है उसकी भ्रान्ति निवृत्त न होगी और जो बारम्बार सुने, विचारे और कहे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जावेंगी । सब शास्त्रों से उत्तम युक्ति की संहिता मैंने कही है जो शीघ्र ही मन में आती है । जो पुरुष मेरे शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं उनको बोध उदय होता और दूसरे शास्त्रों का अर्थ भी सुन्दरता से खुल आता है । जैसे लवण का अधिकारी व्यञ्जन पदार्थ है उसमें डाला लवण स्वादी होता है और प्रीति सहित ग्रहण किया जाता है , तैसे ही जो शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं वे और शास्त्रों का भी सुन्दर अर्थ करेंगे । हे रामजी! किसी और पक्ष को मानकर इसका सुनना त्यागना न चाहिये । जैसे किसी के पिता का खारा कुवाँ था और उसके निकट एक मिष्ट जल का कुवाँ भी था पर वह अपने पिता का कूप मानकर खारा ही जल पीता था और निकट के मिष्ट जल के कुवें का त्याग करता था, तैसे ही अपने पक्ष को मानकर मेरे शास्त्र का त्याग न करना । जो ऐसे जानकर मेरे शास्त्र को न सुनेगा उसको ज्ञान न होगा । जो पुरुष इस शास्त्र में दूषण आरोपण करेगा कि यह सिद्धान्त यथार्थ नहीं कहा उसको कदाचित् ज्ञान न प्राप्त होगा-वह आत्महन्ता है उसके वाक्य न सुनना । जो प्रीतिपूर्वक पूजा भाव करके सुने और विचारकर पाठ करे उसको निर्मल ज्ञान होगा और उसकी क्रिया भी निर्मल होगी इससे यह नित्यप्रति विचारने योग्य है । हे रामजी! तुमको मैंने अपने किसी अर्थ के निमित्त उपदेश नहीं किया केवल दया करके किया है और तुम जो किसी को कहना तो अर्थ बिना दया करके ही कहना ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्रिययज्ञवर्णनं नाम द्विशताधिक सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ||247||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादन

वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं । जब शुद्ध चिन्मात्र में अहं फुरता है तब वही संवेदन फुरना जगत्‌रूप हो भासता है और जब वह अधिष्ठान की ओर देखता है तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप हो जाता है और अपने रूप को त्यागकर अचेत चिन्मात्र होता है । हे रामजी! फुरने और अफुरने दोनों में वही है परन्तु फुरने से जगत् भासता है सो जगत् भी कुछ और वस्तु नहीं वही रूप है । जब संवित् संवेदन फुरने से रहित होती है तब चिन्मात्त्र रूप हो जाती है इस कारण ज्ञान वान् को जगत् आत्मरूप भासता है ब्रह्म से भिन्न नहीं भासता । जैसे किसी पुरुष का मन ओर ठौर गया होता है तो उसके आगे शब्द होता है तो भी नहीं सुनाई देता और वह कहता है कि मैंने देखा सुना कुछ नहीं, क्योंकि जिस ओर चित्त होता है उसी का अनुभव होता है, तैसे ही जिनका मन आत्मा की ओर लगता है उनको सब आत्मा ही भासता है-आत्मा से भिन्न जगत् कुछ नहीं भासता । जिसको आत्मसत्ता का प्रमाद है और जगत् की ओर चित्त है उसको जगत् ही भासता है । हे रामजी! ज्ञानवान् के निश्चय में ब्रह्म ही भासता है और अज्ञानी के निश्चय में जगत् भासता है तो ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक कैसे हो? जो मनुष्य स्वप्ने का जगत् भासता है और जाग्रत् को वह जगत् नहीं भासता तो उनका एक ही कैसे हो? जगत् के आदि और अन्त दोनों में ब्रह्मसत्ता है और मध्य में भी उसे ही जानो-आत्मसत्ता ही चैतन्यता से जगत्‌रूप हो भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है, अन्त भी ब्रह्मसत्ता होती है और मध्य जो भासता है सो भी वही है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही यह जगत् आदि, अन्त और मध्य में भी आत्मा से भिन्न नहीं । ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय है कि जगत् कुछ उपजा नहीं और न उपजेगा केवल आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और सब ब्रह्म ही है अहं त्वं आदिक अज्ञान से भासता है जैसे स्वप्ने में अहं त्वं आदि का अनुभव होता है तो अहं त्वं आदिक भी कुछ नहीं सब अनुभवरूप है, तैसे ही यह जगत् सर्व अनुभवरूप है । हे रामजी! जैसे एक ही रस, फूल, फल, टहनी और वृक्ष होकर भासता है, रस से भिन्न कुछ नहीं होता, तैसे ही नानात्वरूप जगत् भासता है परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने-अपने अनुभव से भिन्न नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकाररूप भासते हैं, तैसे ही यह जगत् आकार भासता हे सो ज्ञानरूप से भिन्न नहीं । सब जगत् आत्मरूप है परन्तु अज्ञान से भिन्न-भिन्न भासता है । यह जगत् सब अपना आपरूप और जो आत्मरूप है तो ग्राह्य ग्राहकभाव कैसे हो? यह मिथ्या भ्रम है । पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् ब्रह्मरूप है, ज्ञानवान् को सदा यही निश्चय रहता है कि अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है । ब्रह्मादिक भी कुछ फुर कर उदय नहीं हुए ज्यों के त्यों हैं । उत्थान कुछ नहीं हुआ पर अज्ञानी के निश्चय में नाना प्रकार का जगत् है और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ब्रह्मादिक सम्पूर्ण हैं । हे रामजी! यह कुछ उपजा नहीं कारणत्व के अभाव से सदा एकरस आत्मसत्ता ही है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकाष्टचत्वाशिंत्तमस्सर्गः ||248||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब जाग्रत् और स्वप्न का निर्णय सुनो । जब मनुष्य सो जाता है तब स्वप्ने की सृष्टि देखता है, वह जाग्रत्रूप भासती है और जब स्वप्न निवृत्त होता है तब फिर यह सृष्टि देखता है तो यही जाग्रत् हो भासती है । यहाँ सोकर स्वप्ने में जाग्रत् होती है और वहाँ सोकर यहाँ जाग्रत् होती है तो स्वप्न जाग्रत् हुआ । जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, उनमें जागना वही जाग्रत् है और सब स्वप्न जाग्रत् है । जब मनुष्य यहाँ शयन करता है तब स्वप्ने का जाग्रत् सत्य होकर भासता है और यह असत्य हो जाता है और स्वप्ने में वहाँ शयन करता है अर्थात् जब स्वप्ने से निवृत्त होता है और जाग्रत् में जगता है तब वह असत्य हो जाता है और वह स्वप्ना जाग्रत् में स्मरण हो जाता है । जब जाग्रत् में सोया और स्वप्ने में जागा तब जाग्रत् स्वप्नभाव को प्राप्त हुई और जब स्वप्ने से उठकर जाग्रत् में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृतिभाव को प्राप्त हुई तब सब जाग्रत् हुई तो हे रामजी! स्वप्ना तो कोई न हुआ । इसको सर्व ठौर जाग्रत् हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि जब जाग्रत् से स्वप्ने में गया तब स्वप्ना जाग्रत्रूप हो गया और जाग्रत् स्वप्ना हो गई और जब स्वप्ने से जाग्रत् में आया तब जाग्रत् जाग्रतरूप हो गई और स्वप्ना जाग्रत् स्वप्नरूप हो गई तो क्या हुआ कि जाग्रत् कोई नहीं सब स्वप्न और असत्यरूप है । अपने काल में यह जाग्रत् है और स्वप्नरूप है और जब यहाँ से मृतक होता है तब यह जाग्रत् स्वप्नरूप होता है और स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होता है और जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष हो जाता है तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनों में परलोक नहीं रहता । इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्ना और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्ने में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव हो जाता है तो सिद्ध हुआ कि स्वप्नमात्र है । हे रामजी! चिरकाल की प्रतीति को जाग्रत् कहते हैं और अल्पकाल की प्रतीति को स्वप्ना कहते हैं । जो आदि स्वप्ना हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास हो गया उससे जाग्रत् हो भासती इसलिये जो आकार तुमको सत्य भासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं । जैसे स्वप्ने में त्रिलोकी जगत्भ्रम उदय होता है परन्तु सब आकाशरूप होता है, तैसे ही ये जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासते हैं सो सब निराकार और आकाशरूप है । जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व में जागोगे तब सब ही आकाशरूप भासेंगे । अद्वैत आत्मतत्त्व में जो ग्राह्य-ग्राहक भाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना है, वास्तव में कुछ नहीं । सब जगत् मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या है उसमें ग्रहण और त्याग क्या कीजिये? इन दोनों को कल्पना को दूर करो । यह हो और यह न हो इस कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो तब सब शान्ति प्राप्त होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||249||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! इन अर्थों का जो आश्रयभूत है सो मैं तुमसे कहता हूँ । इस जगत् के आदि अचेत चिन्मात्र था और उसमें किसी शब्द की प्रवृत्ति न थी-अशब्द पद था । फिर उसमें जानना फुरा और उसका आभास जगत् हुआ । उस आभास में जिसको अधिष्ठान की अहंप्रतीति है उसको जगत् आकाशरूप भासता है और वह संसार में नहीं डूबता, क्योंकि उसको अज्ञान का अभाव है । जो डूबता नहीं वह निकलता भी नहीं, उसे अज्ञाननिवृत्ति और ज्ञान का भी अभाव है, क्योंकि वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है । जिनको अधिष्ठान का प्रमाद हुआ है उनको दोनों अवस्था होती हैं । जो ज्ञानवान् है उसको जगत् आत्मरूप भासता है और जो ज्ञान से रहित है उसको भिन्न-भिन्न नामरूप जगत् भासता है । हे रामजी! आत्मा निराख्यात है, वह चारों आख्यातों से रहित निराभाससत्ता है और चारों आख्यात उसमें आभास हैं एक आख्यात्, दूसरा विपर्ययाख्यात्, तीसरा असत्याख्यात और चौथा आत्माख्यात है । आख्यात ज्ञान को कहते है । जिसको यह ज्ञान है कि मैं आपको नहीं जानता, इसका नाम आख्यात है । आपको देह इन्द्रियरूप जानने का नाम विपर्ययाख्यात है । जगत् असत्य जानने का नाम असत्याख्यात है और आत्मा को आत्मा जानने का नाम आत्माख्यात है । ये चारों आख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्व के आभास है । आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र है उसमें वाणी की गम नहीं है । हे रामजी! जगत् भी वही स्वरूप है और कुछ बना नहीं और घनशिला की नाईं अचिन्त्य स्वरूप है । इस पर एक आख्यात है जो श्रवणों का भूषण है इसलिये तुमसे कहता हूँ । वह द्वैतदृष्टि को नाश करता है और ज्ञानरूपी कमल का विकास करनेवाला सूर्य है और परमपावन है सो सुनो । हे रामजी! एक बड़ी शिला है जिसका कोटि योजनपर्यन्त विस्तार है अनन्त है किसी ओर उसका अन्त नहीं आता शुद्ध निर्मल और निरासाध है अर्थात् यह कि अणु-अणु से पृथक नहीं हुई अपनी सत्ता से पूर्ण है और बहुत सुन्दर है । जैसे शालग्राम की प्रतिमा सुन्दर होती है, तैसे ही वह सुन्दर है और जैसे शालग्राम पर, शंख , चक्र, गदा और पद्म की रेखा होती हैं तैसे ही उस पर रेखा होती हैं और वही रूप है । वह वज्र से भी क्रूर, शिला की नाईं निर्विकास और निराकार अचेतन परमार्थ है । यह जो कुछ चैतन्यता भासती है सो उस पर रेखा है और अनन्त कल्प बीत गये हैं परन्तु उसका नाश नहीं होता । पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश, ये सब भी उस पर रेखा हैं और आप पृथ्वी आदिक भूतों से रहित और शिलावत् है और इन रेखाओं को जीवित की नाईं चेतती है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वह अचेतन है और शिला की नाईं निर्विकास है तो उसमें चैतन्यता कहाँ से आई जिससे जीवित-धर्मा हुई-वह तो अचैतन्य थी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो न चैतन्य है और न जड़ है शिलारूप है और पत्थर से भी उज्ज्वल है यह चैतन्यता जो तुम कहते हो सो चैतन्यता स्वभाव से दृष्टि आती है- जैसे जल का स्वभाव द्रवीभूत है, तैसे ही चैतन्यता भी उसका स्वभाव है- और जैसे जल में तरंग स्वाभाविक भासते हैं, तैसे ही इससे चैतन्यता स्वाभाविक भासती है परन्तु भिन्न कुछ नहीं । वह सदा अपने आपमें स्थित है और किसी से जानी नहीं जाती अबतक किसी ने नहीं जाना । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! किसी ने उसको देखा भी है अथवा नहीं देखा और किसी से वह भंग हुई है कि नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने उस शिला को देखा है और तुम भी जो उस शिला के देखने का अभ्यास करोगे तो देखोगे । वह परमशुद्ध है-उसको मल कदाचित् नहीं लगता । वह चिह्नों, पोलों और आदि, मध्य, अन्त से रहित है । न उसे कोई तोड़ सकता है और न वह तोड़ने योग्य है, उससे कोई अन्य हो तो उसको भेदे । ये

www.tantrik-astrologer.in

जितने पदार्थ पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, अपू, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य और चन्द्रमा हैं वे सब उसी की रेखा हैं और उसके भीतर स्थित हैं । वह शिला महासूक्ष्म निराकार आकाशरूप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वह आदि मध्य और अन्त से रहित है तो तुमने कैसे देखी सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह और किसी से जानी नहीं जाती अपने आप अनुभव से जानी जाती है । मैंने उसे अपने स्वभाव में स्थित होकर देखा है ।जैसे थम्भे को अनथम्भें में स्थित होकर देखे, तैसे हीं मैंने उसमें स्थित होकर देखा । हम भी उस शिला की रेखा हैं, इससे मैंने उसमें स्थित होकर देखा है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह कौन शिला है और उस पर रेखा कौन है सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह परमात्मारूपी शिला है । मैंने शिलारूप इसलिये कहा कि वह घन चैतन्यरूप है उससे इतर कुछ नहीं और अचिन्त्यरूप है उस पर पञ्चतत्त्व रेखा हैं सो वे रेखा भी वही रूप हैं । एक रेखा बड़ी है जिसमें और रेखा रहती हैं वह बड़ी रेखा आकाश है जिसमें और तत्त्व रहते हैं । सब पदार्थ आकाश में हैं सो सब वही रूप है, तुम भी वही रूप हो और मैं भी वही रूप हूँ और कुछ हुआ नहीं । पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सर्व पदार्थ और कर्म जो भासते हैं सो सब ब्रह्मरूपी शिला की रेखा की रेखा हैं और कुछ हुआ नहीं, सर्वकाल में ब्रह्मसत्ता ही स्थित है । नाना प्रकार के व्यवहार भी दृष्टि आते हैं परन्तु वही रूप हैं और कुछ है नहीं तैसे ही वह जानो । घट, पट, पहाड़,कन्दरा, स्थावर, जंगम, जगत् सब आत्मरूप है । आत्मा ही फुरने से ऐसे भासता है । जैसे जल ही तरंग और लहरें होकर भासता है तैसे ही ब्रह्मसत्ता ही जगत्ूरूप होकर भासती है और सर्व पदार्थ पवित्र, अपवित्र, सत्य, असत्य, विद्या, अविद्या, सब आत्मसत्ता ही के नाम है इतर वस्तु कुछ नहीं । ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! सर्व ही घन ब्रह्मरूप है और चिन्मात्र घन ही सबमें व्याप रही है वह परमार्थ सत्ता घन शान्तरूप है और यह भी सर्व परमार्थ घनरूप है इसलिये संकल्परूपी कलना को त्याग कर उसमें स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||250||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्ता में स्थित हुए हैं उनको ये चारों आख्यात कहे हैं और इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं वे शशे के सींगवत् असत्य भासते हैं जगत् का निश्चय उनमें नहीं रहता और सर्वब्रह्माण्ड उनको आकाशवत् भासता है । आख्यात की कल्पना भी उन्हे कुछ नहीं फुरती और सर्व जगत् जो दीखता है वह निराकार परम चिदा काशरूप है और परमनिर्वाणसत्ता से युक्त भासता है और उसी से निर्वाण हो जाता है इस लिये वही स्वरूप है । हे रामजी! जब इस प्रकार जानकर तुम उस पद में स्थित होगे तब बड़े शब्द को करते भी तुम निश्चय से पाषाण शिलावत् मौन रहोगे और देखोगे, खावोगे, पिवोगे, सूँघोगे परन्तु निश्चय में कुछ न फुरेगा । जैसे पाषाण की शिला में फुरना नहीं फुरता, तैसे ही तुम रहोगे-जो चरणों से दौड़ते जावोगे तो भी निश्चय से चलायमान न होगे । जैसे आकाश, सुमेरु पर्वत अचल है तैसे ही तुम भी स्थित रहोगे और क्रिया तो सब करोगे परन्तु हृदय में क्रिया का अभिमान तुमको कुछ न होगा केवल स्वभावसत्ता में स्थित होगे । जैसे मूढ़ बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है सो अविचारसिद्ध है और विचार किये से कुछ नहीं रहता, तैसे ही मूर्ख अज्ञानी आत्मा में मिथ्या आकार कल्पते हैं विचार किये से सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं । जैसे मरुस्थल में नदी तबतक भासती है जबतक विचार करके नहीं देखता और विचार किये से नदी नहीं रहती,तैसे ही यह जगत् विचार किये नहीं रहता । जगत् चैतन्यरूपी रत्न का चमत्कार है, चैतन्य आत्मा का किञ्चन फुरने से ही जगत्ूरूप हो भासता है । रामजी बोले हे भगवन्! इस जगत् का कारण मैं स्मृति मानता हूँ, वह स्मृति अनुभव से होती है और स्मृति से अनुभव होता है । स्मृति और अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है तब उसको स्मृति भी होती है और वह स्मृतिसंस्कार फिर स्वप्ने में जगत्ूरूप हो क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् किसी संस्कार से नहीं उपजा और किसी अनुभव का संस्कार नहीं काकतालीयवत् अकस्मात् फुर आया है । हे रामजी! यह जगत् आभासमात्र है, आभास का अभाव कदाचित् नहीं होता क्योंकि उसका चमत्कार है । इतर कुछ बना हो तो उसका नाश भी हो पर भिन्न तो कुछ हुआ ही नहीं नाश कैसे हो? यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं आत्मसत्ता अपने स्वभाव में स्थित है और जगत् उसका आभास है हे रामजी! तुम जो स्मृति कारण कहते हो तो कारण कार्यभाव आभास वहाँ भासते हैं जहाँ द्वैत है स्वरूप में तो कुछ कारण कार्य भाव नहीं? जैसे स्वप्ने के मरुस्थल में जल भासित हुआ तो उसमें जल माना गया इसलिये जागकर जब देखा उस जल की स्मृति हुई अथवा स्वप्ने के व्यवहारकर्ता को स्वप्नान्तर हुआ और उस स्वप्नान्तर में फिर व्यवहार किया । हे रामजी! तुम देखो कि उसकी स्मृति भी असत्य हुई और जो उसने अनुभव किया सो भी असत्य है, तैसे ही वह संसार भी है कुछ भिन्न नहीं । हे रामजी! इसलिये न जाग्रत् है, न स्वप्ना है, न कोई सुषुप्ति है और न तुरीया है केवल अद्वैतसत्ता सर्व उत्थान से रहित चिन्मात्र स्थित है, इसलिये जगत् भी वही रूप है और जो क्रिया भी दृष्टि आती है तो भी कुछ हुआ नहीं । जैसे स्वप्ने में अंगना कण्ठ से आ मिलती है तो उसकी क्रिया कुछ सच नहीं होती, तैसे ही यह क्रिया भी सच नहीं । जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया शब्दों का अर्थ निश्चय ज्ञानवान् पुरुष को है और शशे के सींग और आकाश के फलवत् असत्य भासते हैं । जैसे बन्ध्या का पुत्र और श्याम चन्द्रमा शब्द कहने मात्र हैं और इनका अर्थ असत्य है, तैसे ही ज्ञानी के निश्चय में पाँचों अवस्थाओं का होना असंभव है । वह सर्वदाकाल में जाग्रत् है, जाग्रत् उसका नाम है जहाँ अनुभव हो । वह अनुभवसत्ता सदा जाग्रत्ू रूप है

www.tantrik-astrologer.in

और जैसा पदार्थ आगे आता है उसी का अनुभव करता है इससे सर्वदा सब कालों में जाग्रत् है । अथवा सर्वदाकाल स्वप्ना है, स्वप्न उसका नाम है जहाँ पदार्थ विपर्यय भासते हैं सो सर्व पदार्थ विपर्यय ही भासते हैं । विपर्यय से रहित आत्मा है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो विपर्यय हैं, इसलिये सर्वकाल में स्वप्ना ही है, अथवा सर्वदाकाल सुषुप्ति ही है, सुषुप्ति उसका नाम है जहाँ अज्ञानवृत्ति हो । मैं आपको भी नहीं जानता इसलिये न जानने से सर्वदाकाल सुषुप्ति है, अथवा सर्वदाकाल तुरीया है, तुरीया उसका नामजो साक्षीभूत सत्ता हो और जिसमें जाग्रत्, स्वप्ना और सुषुप्ति अवस्था का अनुभव होता है । वह सर्वदाकाल सबका अनुभव करता है सो प्रत्यक्ष चैतन्य है इससे सर्वदाकाल में तुरीयापद है । अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीतपद है । तुरीयातीत उसको कहते हैं कि जो अद्वैतसत्ता है, जिसके पास द्वैत कुछ नहीं सो सर्वदाकाल अद्वैत सत्ता है और उसमें जगत् का अत्यन्त अभाव है जैसे मरुस्थल में जल का अभाव है- इसलिये सर्वदाकाल में तुरीयातीतपद है और जो मुझसे पूछो तो मुझको तरंग, बुद्बुदे, झाग और आवर्त कुछ नहीं भासते-सर्वदाकाल चित्समुद्र ही भासता है ।उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो भी कुछ उपजे नहीं आत्मसत्ता का किञ्चन इस प्रकार भासता है । जैसे नख और केश उपजते भी हैं और नाश भी हो जाते हैं, तैसे ही आत्मा में जगत् उपजताभी है और लीन भी हो जाता है । जैसे नख और केश के उपजने और काटने से शरीर ज्यों का त्यों रहता है, तैसे ही जगत् के उपजने और लीन होने में आत्मा ज्यों का त्यों रहता है । हे रामजी! यह जगत् उपजा नहीं तो उसमें सत्य और असत्य कल्पना और स्मृति क्या कहिये और भीतर और बाहर क्या कहिये? अद्वैतसत्ता में कुछ कल्पना नहीं बनती । जो तुम कहो कि स्मृति भीतर होती है परन्तु भीतर से बाहर दृष्टि आती है तो भीतर अनुभव की अपेक्षा से हुई है सो भी उत्पन्न नहीं हुई तो मैं भीतर और बाहर क्या कहूँ? जैसे स्वप्न की सृष्टि भासि आती है सो अपना ही अनुभव होता है और वही सृष्टिरूप हो भासता है वहाँ तो भीतर बाहर कुछ नहीं है, तैसे ही यह जगत् भी भीतर बाहर कुछ नहीं है सब भ्रमरूप है । जिसको इच्छा कहते हैं उसे ही स्मृति कहते हैं और विद्या, अविद्या, इष्ट, अनिष्ट आदि शब्द सब आत्मा के नाम हैं- आत्मा से भिन्न और पदार्थ कुछ नहीं । हे रामजी! जागकर देखो कि सब तुम्हारा ही स्वरूप है । मिथ्या भ्रम को अंगीकार करके भिन्न क्यों देखते हो? सर्वशब्द अर्थ बिना कहाँ नहीं है और शब्द अर्थ का विचार संकल्प से होता है । संकल्प तब फुरता है जब चित्त में अहम अभिमान होता है । उस चित्त को आत्मासार में लीन करो , जब चित्त को निर्वाण करोगे तब सब जगत् शान्त हो जावेगा । जैसे दर्पण में जगत्ुरुपी प्रतिबिम्ब होता है । जगत् कुछ वस्तु नहीं, जब चित्त निर्वाण हो जावेगा तब द्वैतकल्पना सब मिट जावेगी । यह जो मोक्ष शास्त्र मैंने तुमसे कहा है इसके अर्थ विचारकर और संकल्प को त्यागकर अपने परमानन्दस्वरूप में स्थित हो रहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||251||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

शालभजनकोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ । जैसे समुद्र में तरंग स्वाभाविक फुरते हैं तैसे ही संवित्‌्सत्ता से आदि सृष्टि फुरी है और जैसे जल स्वाभाविक द्रवता से तरंगरूप अपनी सत्ता से बढ़ता जाता है, तैसे ही आत्मसत्ता से जगत् विस्तार होता है सो आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है जब चिन्मात्र आत्मसत्ता का आभास बहिर्मुख फुरता है तब अन्तःकरण चतुष्टय होते हैं और उसमें जो निश्चय होता है उसका नाम नेति है । वह प्रथम अकस्मात् के कारण बिना स्वाभाविक ही फुरि आया है और आभासमात्र है जब वह दृढ़ हो गया तब नेति स्थित हुई और वास्तव में द्वैत कुछ बना नहीं । जो सम्यक्दर्शी पुरुष हैं उनको सब आत्मा ही दृष्टि आता है-जैसे पत्र, फूल, फल टहनी सब वृक्ष हैं भिन्न नहीं । हे रामजी! वृक्ष में जो फूल, फल और टहनी होती हैं सो किसी कारण से बुद्धिपूर्वक नहीं होती? तैसे ही इस जगत् को भी जानो । जो सम्यक् दर्शी हैं उनको भिन्न-भिन्नरूप भी पत्र, टास आदिक विस्तार एक वृक्ष ही भासता है, तैसे ही यथार्थ ज्ञानी को सब आत्मा ही भासता है और मिथ्यादृष्टि को भिन्न-भिन्न पदार्थ भासते हैं । हे रामजी! वृक्ष का देखनेवाला भी ओर होता है और दृष्टान्त में दूसरा कोई नहीं । चैतन्य आत्मा का आभास ही चेत है, वही चैतन्यरूप हो भासता है । उस चैतन्य आभास को असम्यक् दृष्टि से भिन्न-भिन्न पदार्थ दीखते हैं और सम्यकदर्शी सबको आत्मरूप देखता है । जैसे पत्र, फूल, फल और वृक्ष आपको भिन्न जाने । ज्ञानी और अज्ञानी सब आत्मरूप है- जैसे दीवार पर पुतलियाँ लिखी होती हैं सो दीवार से भिन्न नहीं होतीं तैसे ही सर्वगत आत्मरूपी दीवार के चित्र हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश में शून्यता , फूलों में सुगन्ध, जल में द्रवता, वायु में स्पन्द और अग्नि उष्णता है तैसे ही ब्रह्म में जगत् है । हे रामजी! जगत् आत्मा का आभास है इसलिये वही रूप है । यह जगत् भी अचैत चिन्मात्र है । जो तू कहे कि अचैत चिन्मात्र है तो पृथ्वी, पहाड़ आदिक आकार क्यों भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे नित्यप्रति जो तुमको स्वप्ना आता है और उस अनुभव आकाश में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासि आते हैं तो वही चिन्मात्र ही आकार होकर भासता है और कुछ नहीं तैसे ही इसे भी जानो । यह सब जगत् जो तुमको भासता है सो अनुभवरूप है । जैसे चिन्मात्र आत्मा में सृष्टि आभास मात्र है, तैसे ही कारण कार्य भाव भी आभासमात्र है । परन्तु वही रूप है-आत्मसत्ता ही इस प्रकार होकर भासती है । ये पदार्थ कार्य-कारण अभ्यास की दृढ़ता से उपजे भासते हैं पर आदि दृष्टि किसी कारण से नहीं उपजी-पीछे कारण से कार्य हुए दृष्टि आते हैं । यद्यपि कार्य-कारण दृष्टि आते हैं तो भी कुछ उपजे नहीं सदा अद्वैतरूप हैं । जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार के कार्य-कारण भासि आते हैं - परन्तु कुछ हुए नहीं सदा अद्वैतरूप है, तैसे ही जाग्रत् में भी जानो । पदार्थों की स्मृति भी स्वप्ने में होती है और अनुभव भी स्वप्ने में होता है, जो स्वप्ना ही नहीं फुरा तो स्मृति कहाँ है और अनुभव कहाँ है? न जगत् का अनुभव है और न जगत् है,अनुभवसत्ता ही जगत्‌्रूप हो भासता है जो जाग्रत्‌्रूप है, जब उसका अनुभव होगा तब न स्मृति रहेगी और न जाग्रत् रहेगा । इसलिये हे रामजी! जो अनुभवरूप है उसका अनुभव करो ।यह जगत् भ्रमरूप है । जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है और जो उपजा है और जिसमें भासता है उसको उसी का रूप जानो भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परन्तु उपजे दृष्टि आते हैं सो अनुभवमें उपजे हैं । अनुभव स्वतः सिद्ध है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो अनुभवरूप हैं और अनुभवरूप ही इस प्रकार हो सकता है, तैसे ही ये सब अनुभवरूप हैं-भिन्न कुछ नहीं

www.tantrik-astrologer.in

। यह सब जगत् आत्मरूप है, इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् अकारण है और आत्मा का आभास है- कारण से कुछ नहीं । अनन्त ब्रह्माण्ड ब्रह्मसत्ता में आभास फुरते हैं और अज्ञानी को कार्य-कारण सहित भासते हैं । उनमें नेति हुई है पर जब जागकर देखोगे तब सर्व अद्वैत रूप भासेगा न कोई नेति है और न जगत् है । जबतक अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है तबतक जो पदार्थ उस सृष्टि में है वही भासेगा और जैसा कर्म है सो भासेगा । यह जगत् रूपी स्वप्ना है जिसमें स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं और उनके प्राप्त होने का साधन धर्म अधर्म है । धर्म स्वर्ग सुख का साधन है और अधर्म नरकदुःख का साधन है । जबतक अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ है तबतक इनको यथार्थ जानता है पर जब जागेगा तब सब आत्म आत्मरूप होगा और इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा । यह सब जगत् अनुभवरूप है और अनुभव सदा जाग्रत् ज्योति है उसी को जानो । जिन पुरुषों ने इस अनुभव को नहीं जाना वे उन्मत्त पशु हैं, क्योंकि वे आत्मबोध से शून्य हैं और सदा समीप आत्मा को नहीं जानते इससे उन्मत्त हैं, क्योंकि उन्मत्त को भी अपना आप भूल जाता है । जैसे किसी को पिशाच लगता है तब उसको अपना स्वरूप विस्मरण हो जाता है और पिशाच ही देह में बोलता है तैसे ही जिसको अज्ञानरूपी भूत लगता है वह उन्मत्त हो जाता है, अपने आत्मरूप को नहीं जानता और विपर्यय बुध्दि से देहादिक को आत्मा जानता है और विपर्यय शब्द करता है । जिनको स्वरूप में अहंप्रतीति है उनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है उनको सर्व जगत् आत्मरूप भासता है । हे रामजी! आदि सृष्टि किसी कारण से बनी होती तो उसके पीछे प्रलयादिक में कुछ शेष रहता पर वह अत्यन्त अभाव होती है, इसलिये सब जगत् अकारण है । जैसे चिन्तामणि से अकारण पदार्थ दृष्टि आता है, तैसे ही यह अकारण है । न कहीं संस्कार है और न स्मृति है सब आत्मा के पर्याय हैं आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । इससे सर्व जगत् को आत्मरूप जानो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो संस्कार से अनुभव नहीं होता और अनुभव से स्मृति नहीं होती तो इस प्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्टि आते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संशय भी तुम्हारा दूर करता हूँ । जैसे हाथी के बालक के मारने में सिंह को कुछ यत्न नहीं होता, तैसे ही इस संशय के नाश करने में मुझे कुछ यत्न नहीं है । जैसे सूर्य के उदय हुए तिमिर का अभाव हो जाता है, तैसे ही मेरे वचनों से तुम्हारा संशय दूर हो जावेगा । हे रामजी! यह सर्व जगत् चिन्मात्रस्वरूप है- उससे भिन्न नहीं । जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है परन्तु पुतलियाँ कुछ बनी नहीं उसके चित्त में पुतलियों का आकार है तैसे ही आत्म रूपी थम्भे में चित्तरूपी शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है । हे रामजी! थम्भे में पुतलियाँ निकालते हैं तभी निकलती हैं परन्तु आत्मातो अद्वैत और निराकार है उसमें और कुछ नहीं निकलता और उसमें वाणी की भी गम नहीं चैतन्यमात्र है अहं के फुरने से वह आपको चैतन्य जानता है और फिर आगे शब्दों के अर्थ कल्पता है शुद्ध अधिष्ठान चैतन्य आपको जानना यही ज्ञान है । ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द और अर्थ फुरने ही में हुए हैं -जैसे एक ही समुद्र में द्रवता से आवर्त, तरंग, फेन और बुद्बुदे नाम होते हैं, तैसे ही सब ब्रह्म ही के नाम हैं ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं, ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है और फुरने से जगत् आकार हो भासता है और फुरने से रहित होने से जगत् आकार मिट जाता है परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्योंका त्यों है । जैसे स्पन्द और निस्पन्द में वायु ज्यों की त्यों है और सब पदार्थ जो भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप हैं । जैसे स्वप्ने में अपना ही अनुभव पहाड़, वृक्ष आदिक नाना प्रकार का जगत् हो भासता है तैसे ही ब्रह्मसत्ता ही जाग्रत् जगत्ूरूप भासती है और वही कहीं अन्तवाहक कहीं आधिभौतिक, कहीं ईश्वर और कहीं जीव आदि हो भासता है इससे आदि लेकर शब्द अर्थसंयुक्त जो जीव

www.tantrik-astrologer.in

फुरता गया है सो ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार स्थित हुई है । जैसे थम्भे में पुतलियाँ थम्भरूप होती हैं, तैसे ही आत्माकाश में जगत् आत्मरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसे उसमें जगत् आभास है, तैसे ही स्मृति अनुभव भी आभास है । स्मृति जो संस्कार है उससे जगत् की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो सो स्मृति संस्कार भी आभास है यह जगत् का कारण कैसे हो? स्मृति भी तब होती है जब प्रथम जगत् होता है सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसे हो? इससे आभासमात्र है और इसका कारण कोई नहीं । हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत् का कारण तब हो जब कुछ जगत् आगे हुआ हो सो तो कुछ हुआ नहीं और अनुभव उसका होता है जो पदार्थ भासता है सो तो इस जगत् के आदि कुछ जगत् का अंश न था फिर अनुभव कैसे कहूँ? जो अनुभव ही न हुआ तो स्मृति किसको हो और जब स्मृति ही न हुई हो तो उससे जगत् कैसे कहूँ? इसलिये हे रामजी! आदि जगत् अकारण अकस्मात् फुरा है । जैसे रत्न की लाट होती है तैसे ही जगत् है और पीछे से कारण कार्यरूप भासता है । इससे हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो उसे जानिये कि उपजा नहीं जिसमें भासता है वही रूप है अधिष्ठान से भिन्न कुछ नहीं । सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, स्मृति भी भ्रम में आभास फुरा है और अनु भव भी आभास है सो ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं और आभास भी कुछ फुरा नहीं, आभास की नाईं जगत् भासता है- आत्मसत्ता अद्वैत है जिसमें आभास, स्मृति,अनुभव, जाग्रत् और स्वप्न कल्पना कुछ नहीं तो क्या है? ब्रह्म ही है फुरना जो कुछ कहते हैं सो कुछ वस्तु नहीं । जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है, तैसे ही स्पन्द चैतन्य आत्मा में जगत् कल्पती है । शिल्पी तो आप भिन्न होकर कल्पता है और यह चित्सत्ता ऐसी है कि अपने ही स्वरूप में कल्पती है और जगत्ूरूपी पुतलियाँ देखती है । आत्मा आकाशरूपी थम्भ है उसमें जगत् भी आकाशरूपी पुतलियाँ हैं । जैसे आकाश अपने आकाशभाव में स्थित है, तैसे ही ब्रह्म अपने ब्रह्मत्व भाव में स्थित है । जगत् भिन्न भी दृष्टि आता है परन्तु अचैत चिन्मात्रस्वरूप है भेदभाव को नहीं प्राप्त हुआ और विकारवान् भी दृष्टि आता है परन्तु विकार नहीं हुआ । जैसे स्वप्ने में आपही सब स्पष्ट भासते हैं, तैसे ही यह जगत् अपने आपमें भासता है परन्तु कुछ नहीं है । हे रामजी! यही आश्चर्य है कि मैंने अपने अनुभव को प्रकट करके उपदेश किया है, जीव आप भी जानते हैं स्वप्ने में नित्य देखते हैं और सुनते भी है परन्तु निश्चय करके जान नहीं सकते और स्वप्ने के पदार्थों को मूर्खता से त्याग नहीं सकते ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शालभजनकोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विपञ्चाशतमस्सर्गः ।।252।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवन्मुक्त लक्षणवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियों के इष्ट विषयों को पाकर सुख नहीं मानता और अनिष्ट विषयों को पाकर दुःख नहीं मानता , इनके भ्रम से मुक्त है और बड़े भोग प्राप्त हों तो भी अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानो । हे रामजी! सर्वशब्द अर्थ जिसको द्वैतरूप नहीं भासते उसे तुम जीवन्मुक्त जानो । जिस अविद्यारूपी जाग्रत् में अज्ञानी जागते हैं उसमें ज्ञानवान् सो रहे हैं और परमार्थ रूपी जाग्रत् में अज्ञानी सो रहे हैं वे नहीं जानते कि परमार्थ क्या है? परन्तु उसमें जीवन्मुक्त स्थित है इस कारण ज्ञानवान् अनिष्ट विषयों को पाकर सुखी और दुःखी नहीं होते उनका चित्त सदा आत्मपद में स्थित है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो पुरुष सुख पाकर सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता सो तो जड़ हुआ, चैतन्य तो न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सुख दुःख तबतक होता है जबतक चित्त को जगत् का सम्बन्ध होता है । जब चित्त जगत् के सम्बन्ध से रहित चिन्मात्र होता है तब उपाधिक सुख दुःख नहीं रहते और जो अपने स्वभाव में स्थित पुरुष हैं वे परम विश्राम को प्राप्त होते हैं और सब कुछ करते हैं परन्तु स्वरूप से उनको कर्तव्य का उत्थान कुछ नहीं होता और सदा अद्वैत में निश्चय रहता है । नेत्रों से वे देखते हैं परन्तु द्वैत की भावना उनको कुछ नहीं फुरती । जैसे अत्यन्त उन्मत्त को सर्व पदार्थ दृष्टि भी आते हैं परन्तु पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, तैसे ही जिसकी बुद्धि अद्वैत में घनीभूत हुई है उसको द्वैतरूप नहीं भासते । जिनको द्वैत नहीं भासता उनको सुख दुःख कैसे भासे? उन पुरुषों ने वहाँ विश्राम किया है जहाँ न जाग्रत है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है । वे सर्वद्वैत से, रहित अद्वैतरूपी शय्या में विश्राम कर रहे हैं और संसार मार्ग से उल्लंघ गये हैं । आत्मा के प्रमाद से जीव को कष्ट होता है । जो अपनी विभूति विद्या को त्यागकर प्रसन्न होता है और फिर संसार के क्रूरमार्ग में कष्ट पाता है वह मनुष्य नहीं मानों मृग है । वह संसाररूपी जंगल में कष्ट पाता है और जब तृषा से कायरहोता है तब जल की ओर दौड़ता है पर जहाँ जाता है वहाँ मरुस्थल की नदी भासती है और जल प्राप्त नहीं होता, तब आगे दौड़ता है और तृषा अधिक बढ़ती जाती है । इस प्रकार दौड़ता-दौड़ता जड़ हो जाता है और दुःखी होकर मर जाता है परन्तु जल प्राप्त नहीं होता । यह जल, दौड़ना, जड़ता और मरना चारों भिन्न-भिन्न सुनो । हे रामजी! मनरूपी तो मृग है जो संसाररूपी जंगल में आन पड़ा है और इन्द्रियों के विषय रूपी जलाभास को सत्य जानकर शान्ति के निमित् तृष्णारूपी मार्ग में दौड़ता है पर वे विषय आभासमात्र हैं और उनमें शान्तिरूपी जल नहीं है इसलिये वह दौड़ता-दौड़ता जब वृद्ध अवस्था में जा पड़ता है तब जड़ हो जाता है और बड़े कष्ट को प्राप्त होता है पर शान्तिरूपी जल नहीं पाता इससे तृप्त भी नहीं होता । हे रामजी! मनुष्य मानों मजदूर है जिसके शिर पर बड़ा भार है और क्रूर मार्ग में चला जाता है जहाँ उसको चोर ने लूट लिया है इससे जलता है । हे रामजी! मनुष्यरूपी मजदूर के शरीर पर जन्म बड़ा भार है और संशयरूपी क्रूर मार्ग में खड़ा है । कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रिय के इष्ट अनिष्ट विषय हैं इससे राग द्वेषरूपी तस्कर ने विचाररूपी धन हर लिया है इससे वह राग, द्वेष और तृष्णारूपी अग्नि से जलता है । बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे क्रूरमार्ग को त्यागकर उन्होंने परमपद में विश्राम पाया है और अन्य आनन्द को त्यागकर परमपद आनन्द को प्राप्त हुए हैं । उन मुक्त पुरुषों को संसार का दुःख व्याप नहीं सकता, क्योंकि वे परम अद्वैत शुद्ध सत्ता को प्राप्त हुए हैं । वे सर्वको देखते हैं और ग्रहण और त्यागरूपी अग्नि को त्यागकर उन्होंने परमपद में विश्राम पाया है और सदा सोये रहते हैं । वास्तव में सुख से जो सोते हैं तो वही सोते हैं और उनके

www.tantra-astrologer.in

भीतर सदा शान्ति रहती है परन्तु जड़ता से रहित हैं और आकाश से भी अधिक सूक्ष्मसत्ता को प्राप्त हुए हैं । जैसे समुद्र में धूलि नहीं होती और सूर्य में तम नहीं होता तैसे ही उनमें इन्द्रियों के इष्ट विषयों की तृष्णा नहीं होती । उनसे रहित होकर उन्होंने विश्राम पाया है । यह आश्चर्य है कि अणु से होकर और महत् से महत् होकर भी वे केवल विश्रामवान् हुए हैं । हे रामजी! आत्मसत्ता की ओर से सोये पड़े हैं उनको दुःख होता है और ज्ञानवान् द्वैत जगत् की ओर जड़ हुए हैं और अपने स्वरूप में स्थित हैं इससे उनको दुःख कुछ नहीं । वे जाग्रत् की ओर से सोये हैं और उनको अविद्यक जगत् और दृश्य का सम्बन्ध दूर हो गया है जब वे इस ओर से सोये हैं तो उनको फिर दुःख कैसे हो? वे पुरुष सदा अद्वैतरूप हैं । जो अनन्त जगत् का कर्त्ता है और आपको सदा अकर्ता जानता है ऐसे आश्चर्यपद में उन्होंने विश्राम पाया है । जगत् के समूहसत्ता समान में स्थित होके उन्होंने विश्राम पाया है यह आश्चर्य है । वे सम्पूर्ण क्रिया को करते हैं परन्तु सदा अक्रियपद में स्थित हैं और सम्पूर्ण पदार्थों को स्वप्न जानकर सुषुप्त हुए हैं ।वे आकाश से भी अधिक सूक्ष्म हैं, क्योंकि, आत्मसत्ता में विश्राम पाया है । वह आत्मसत्ता आकाश को भी व्याप रही है, उसी को आत्मवत् जान करके वे स्थित हुए हैं । जो परमस्वच्छपद है उसमें सर्वशब्द अर्थ आकाशरूप हो जाते हैं और आकाश भी आकाश हो जाता है, उस पद में उन्होंने विश्राम किया है सो ही आश्चर्य है । नेत्र उसके खुले हुए हैं पर सुषुप्ति में स्थित हैं । क्या सुषुप्ति है कि दृग और दृश्यभाव उनका दूर हो गया है और जगत् के प्रकाश से रहित और परम प्रकाशरूप हैं । हे रामजी! बाहर के भोग पदार्थों से वे रहित हैं और आत्मा में स्थित हैं । प्रकट वे सोते हैं पर सुषुप्ति में जागते हैं और जाग्रत् से उनको सुषुप्ति है । उस सुषुप्ति से वे सोये हैं और कर्म करते हैं परन्तु कर्त्ता कारणभाव से रहित हैं । क्रोध भी करते हैं परन्तु क्रोध के फुरने से रहित हैं और सर्व ओर से प्रकाशवान् निर्भय होकर विश्राम करते हैं । कामना करते हैं भी दृष्टि आते हैं परन्तु तृष्णा से रहित हैं और निस्संकल्प पद में स्थित हुए हैं । यह आश्चर्य है कि जिस क्रिया की ओर वे देखते हैं उसी ओर उनको शान्ति भासती है, क्योंकि एक मित्र उनके साथ रहता है उससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्त लक्षणवर्णनंनाम द्विशताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ।।253।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह मित्र कौन है? ज्ञानी का कोई कर्म मित्र है अथवा आत्मा में विश्राम का नाम मित्र है, यह संक्षेप पूर्वक मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! निष्काम कर्म हैं वह अपने सुकर्म हैं अर्थात् अपना ही प्रयत्न उनका मित्र है । आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये तीनों ताप सदा अज्ञानी को जलाते हैं पर ज्ञानी को नहीं होते । जो बड़ा कष्ट प्राप्त हो जिसे लाँघना कठिन है और बहुत कोप हो सो भी उसको स्पर्श नहीं करता । जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता, तैसे ही ज्ञानी को कष्ट नहीं स्पर्श करता, क्योंकि वह मित्र उसके साथ रहता है । जैसे बालक का मित्र बालक होता है सो बड़े होने पर भी उसका हितू होता है, तैसे ही चिरकाल जो ज्ञानवान् ने अभ्यास किया है सो अभ्यास उसका मित्र हो रहता है और दुष्ट क्रिया की ओर उसे नहीं विचरने देता शुभ की ओर बर्ताता है । जैसे पिता पुत्र को अशुभ की ओर से बर्जकर शुभ की ओर लगाता है, तैसे ही विचाररूपी मित्र उसको तृष्णा से बर्जन करता है और आत्मा की ओर स्थित करता है । वह राग द्वेषरूपी अग्नि से निकालकर समतारूपी शीतलता को उसे प्राप्त कराता है । ऐसा विचाररूपी उसका मित्र है जो सर्वदुःख क्लेशादि से उसे तार ले जाता है-जैसे मल्लाह नदी से तार ले जाता है । हे रामजी! विचाररुपी मित्र बहुत सुन्दर है, शान्त रूप है और सर्व मैल को जलानेवाली अग्नि है । जैसे सुवर्ण के मैल को अग्नि जलाकर निर्मल करती है, तैसे ही विचाररूपी अग्नि राग-द्वेषरूपी मल को जलाती है । जब विचार रूपी मित्र आता है तब स्वाभाविक चेष्टा निर्मल हो जाती है और वेदोक्त विचरता है । तब सब कोई उसको देखकर प्रसन्न होता है और दया, कोमलता, अमान और अक्रोध आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं । जैसे तिलों में तेल, फूल में सुगन्ध और अग्नि में उष्णता रहती है, तैसे ही विचार में शुभ आचार रहते हैं । विचाररूपी मित्र शूरमा है जो कोई शत्रु होता है प्रथम वह उसको मारता है और अज्ञानरूपी शत्रु को नाश करताहै-जैसे सूर्य तम को नाश करता है-और दीपक के प्रकाशवत् साथ होता है एवं विषय भोगरूपी अन्धे कूप में जो मैल है उसमें गिरने नहीं देता और सर्व ओर से रक्षा करता है । जिस ओर से वह पुरुष जाता है उस ओर सबको प्रसन्नता उपजती है । हे रामजी! उसका वचन कोमल, मधुर और स्निग्ध होता है और वह उदारात्मा क्षोभ से रहित और लोगों पर उपकार और प्रसन्नता के लिये बोलता है और सुहृदता, शान्ति और परमार्थ का कारण है । हे रामजी! वचन तो उसकी प्रसन्नता के लिये होते हैं और आप भी सदा प्रसन्न रहता है । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्तार को सदा प्रसन्न रखती है, तैसे ही विचाररूपी मित्र उसको सदा प्रसन्न रखता है और शुभ आचार में चलाता है दान, तप, यज्ञादिक शुभ क्रिया वह आप भी करता है और लोगों से भी कराता है । जिसके अन्तःकरण में विवेकरूपी मन्त्री आता है वहाँ वह अपने परिवार को भी साथ ले आता है । रामजी ने पूछा, हे भगवान् उसका परिवार कौन है, उसका स्वरूप क्या है और क्या आचार है संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्नान, दान, तपस्या और ध्यान ये चारों उसके बेटे हैं स्नान तो यह है कि वह सदा पवित्र रहता है और यथायोग्य और यथाशक्ति दान करता है । बाहर की वृत्ति को भीतर स्थित करने का नाम तप है और आत्मा में चित्तवृत्ति लगाने का नाम ध्यान है । ये चारों उसके बेटे हैं जो आत्मदर्शी हैं परन्तु वृत्ति को सदा स्वाभाविक अन्तर्मुख करके व्यवहार करते हैं । मुदिता उसकी स्त्री है-सदा प्रसन्न रहने का नाम मुदिता है-जो नमस्कार के योग्य है । जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा को देखकर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करता है तैसे ही उसको देखकर सब कोई प्रसन्न होता है और

www.tantrik-astrologer.in

नमस्कार करता है । मुदितारूपी स्त्री के साथ करुणा और दया नामा एक सहेली रहती है और समतारूपी द्वारपालनी सम्मुख खड़ी रहती है । जब विवेक राजा अन्तःपुर में आता है तब वह सम्मुख होकर सब स्थान दिखाती है और सदा संगी रहती है । जिस ओर राजा देखता है उस ओर समता ही दृष्टि आती है जो आनन्द के उपजानेवाली है । वह दो पुत्र साथ लेकर पुरी में विचरती है और जिस ओर राजा भेजता है उस ओर धैर्य और धर्म लिये फिरती है । जब राजा सवार होकर चलता है तब वह भी समतारूपी वाहन पर आरुढ़ होकर राजा के साथ जाती है और जब राजा विषयरूपी पाँचों शत्रुओं से लड़ाई करता है तब धैर्य और संतोष मन्त्री मन्त्र देता है और विचाररूपी बाण से उनको नष्ट करता है । हे रामजी! विचार सदा उसके संग रहता है और सब कार्य को करता है । यह चेष्टा उससे स्वाभाविक होती है, आप सदा अमान रहता है और कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान उसको कोई नहीं फुरता जैसे कागज पर मूर्त्ति लिखी होती है जो अभिमान से रहित है, तैसे ही वह भी अभिमान से रहित है और परमार्थ निरूपण से रहित निरर्थक वचन नहीं बोलता जैसे पाषाण नहीं सुनता-और जो क्रिया शास्त्रों और लोगों से निषेध की गई है वह नहीं करता जैसे शव से कुछ क्रिया नहीं होती, तैसे ही उसको क्रिया का उत्थान नहीं होता । जहाँ ज्ञानवान् और जिज्ञासुओं की सभा होती है वहाँ वह परमार्थ के निरूपण को शेषनाग और वृहस्पति की नाईं होता है और सावधानता इत्यादिक जो शुद्ध क्रिया है सो उसमें स्वाभाविक होती है । जैसे सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में प्रकाश स्वाभाविक होता है, तैसे ही उसमें शुभ क्रिया स्वाभाविक होती हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||254||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

द्वैतैकता�ाभाववर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् वास्तव में ज्ञानस्वरूप है और आत्मसत्ता का चमत्कार है, और कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ता ही फुरने से इस प्रकार हो भासती है । इसका कारण भी कोई नहीं । जब महाप्रलय थी तब शब्द अर्थ द्वैत कुछ न था उस अद्वैत सत्ता से जगत् फुर आया है । जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है सो बीज भी जगत् का कोई न था तो किस कारण से उत्पन्न हुआ और तो कोई कारण न था इससे अब भी जगत् को महाप्रलय रूप जानो । हे रामजी! न कोई पृथ्वी आदिक तत्त्व है, न जगत् है, न आभास है और न फुरना है । जैसे आकाश के फूलों में सुगन्ध नहीं होती तैसे ही इनका होना भी नहीं है केवल स्वच्छ ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । रूप, इन्द्रियाँ और मन भी ब्रह्मस्वरूप है । जैसे स्वप्न में अपना अनुभव है और मन ही नाना प्रकार का जगत् आकार और इन्द्रियाँ होकर भासता है और तो कुछ नहीं , तैसे ही यह जगत् भी वही रूप है । हे रामजी! सर्व जगत् आत्मरूप है । जैसे कारण बिना आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासि आता है सो कुछ हुआ नहीं, तैसे ही यह जगत् आत्मा का आभास है और जिसमें यह आभास फुरा है सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है । ये सर्व पदार्थ जो तुमको भासते हैं उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानो । जैसे मनोराज की सृष्टि होती है सो अपने अनुभव में होती है और उसका स्वरूप अनुभव से भिन्न नहीं होता, तैसे ही सृष्टि के आदि जो अनुभव होता है सो अनुभवरूप है और कुछ उपजा नहीं-वही अनुभवसत्ता इस प्रकार भासती है । हे रामजी! देश से देशान्तर को जो संवित् प्राप्त होती है उसके मध्य में जो अनुभव है सो ही तुम्हारा स्वरूप है और सब आभासमात्र हैं । जाग्रत् देश को त्यागकर जो स्वप्नशरीर के साथ नहीं मिली और जाग्रत् स्वप्नदेश के मध्य में ब्रह्मसत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है । वह प्रकाशरूप और अपने आपमें स्थित और जाग्रत् जगत् जो भासता है सो भी उसी का स्वभाव है । जैसे रत्नों का स्वभाव चमत्कार है, अग्नि का स्वभाव उष्ण है, जल का स्वभाव द्रव है और पवन का स्वभाव फुरना है, तैसे ही ब्रह्म का स्वभाव जगत् है । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है, तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है । हे रामजी! यह आश्चर्य है कि अज्ञानी सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जानते हैं, जो अनुभवसत्ता है उसको छिपाते हैं और शशे के सींगवत् जगत् को प्रत्यक्ष जानते हैं । वे मूर्ख हैं, सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है जिसको तुम सूर्य देखते हो सो वही परमदेव सूर्य होकर भासता है और चन्द्रमा और अग्नि उसी के प्रकाश से प्रकाशते हैं निदान सबका प्रकाश और तेजसत्ता वही है । जैसे सूर्य की किरणों में सूक्ष्म अणु होते हैं, तैसे ही आत्मसत्ता में सूर्यादिक भासते हैं । जिसको साकार और निराकार कहते हो वह सब शशे के सींगवत् हैं । ज्ञानवान् को ऐसे ही भासता है कि जगत् कुछ उपजा नहीं तो मैं क्या कहूँ? जहाँ सर्व शब्दों का अभाव हो जाता है और उसके पीछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है वहाँ शून्य का भी अभाव हो जाता है । हे रामजी! जिनको तुम जीता कहते हो सो जीता भी कोई नहीं और जो जीता नहीं तो मुआ कैसे हो? जो कहिये जीता है तो जैसे जीता है तैसे ही मृतक है मृतक और जीते में कुछ भेद नहीं, इसलिये सर्व शब्दों से रहित और सबका अधिष्ठान वही सत्ता है । उसमें नानात्व भासता भी है परन्तु हुआ कुछ नहीं । पर्वत जो स्थूल दृष्टि आते हैं सो अणुमात्र भी नहीं-जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु कुछ हुए नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसी में जगत् भासता है । हे रामजी! जो परमार्थसत्ता से जगत् भास आया सो तो और कुछ न हुआ, इससे वही सत्ता जगत्ूरूप हो भासती है । कोई कहते हैं कि आत्मा में है और कोई कहते हैं कि आत्मा में कुछ नहीं है पर आत्मा में दोनों शब्दों

www.tantrik-astrologer.in

का अभाव है और अभाव का भी अभाव है । यह भी तुम्हारे जानने के निमित्त कहता हूँ, वह तो स्वस्थ और परम शांतरूप है और उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं । वह परिपूर्ण अच्युत अनन्त और अद्वैत है और वही जगद्रूप होकर भासता है जैसे कोई पुरुष शयन करता है तो सुषुप्ति में अद्वैतरूप हो जाता है, फिर सुषुप्ति से स्वप्ना फुर आता है और फिर सुषुप्ति में लीन हो जाता है, तो उपजा क्या और लीन क्या हुआ? स्वप्ने के आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अन्त में भी वही रही थी और मध्य में जो कुछ भासा वह भी वही रूप हुआ, आत्मा से भिन्न तो कुछ न हुआ? इसलिये सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है-ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । हे रामजी! हमको तो सदा अनुभवरूप जगत् भासता है । हम नहीं जानते कि अज्ञानी को क्या भासता है जैसे स्वप्ने की सृष्टि से जो जागा हे उसको अद्वैत अपना आप भासता है, तैसे ही तुरीया में भासता है । तुरीया और जाग्रत् में भेद कुछ नहीं, जाग्रत् ही तुरीया का नाम है और जाग्रत तुरीयारूप है बल्कि यह भी क्या कहना है सब ही अवस्था तुरीयारूप है । तुरीया जाग्रत् सत्ता का नाम है । जो अनुभव साक्षी ज्योति है सो जाग्रत् में भी साक्षीरूप है, स्वप्ने में भी साक्षीरूप है और सुषुप्ति में भी साक्षीरूप है । इसलिये सब तुरीयारूप है परन्तु जिसको स्वरूप का अनुभव हुआ है उस ज्ञानवान् को ऐसे ही भासता है और अज्ञानी को भिन्न-भिन्न अवस्था भासती हैं । हे रामजी! एक पदार्थ का वृत्ति ने त्याग किया पर दूसरे पदार्थ में नहीं लगी वह जो मध्य में अनुभव ज्योति है उसको तुम आत्मसत्ता जानो और उसमें जो फिर कुछ भासा उसे भी वही रूप जानो । जैसे जाग्रत् को त्यागकर स्वप्न के आदि साक्षी अनुभवमात्र होता है और उस सत्ता में स्वप्ने का शरीर और पदार्थ भासते हैं वह भी आत्मरूप हैं, तैसे ही जो कुछ जाग्रत् शरीर और पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं । जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको कोई दुःख स्पर्श न करेगा । जैसे स्वप्ने की सृष्टि में अपने स्वरूप की स्मृति आने से दुःख भी सुख होता है और बोलना, चालना, खाना, पीना, देना, लेना आदि शब्द और अर्थ और द्वैतरूप युद्ध कर्म सब अद्वैत अपना आप हो जाते है और व्यवहार भी सब करता है परन्तु अपने निश्चय में कुछ नहीं फुरता, तैसे ही जो पुरुष अपने स्वरूप में जागे हैं उनको सब जगत् आत्मरूप ही भासता है । जैसे अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता स्वाभाविक है, तैसे ही ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि स्वाभाविक है । और लोगों को यह दृष्टि यत्न से प्राप्त होती है पर ज्ञानवान् को स्वाभाविक होती है । जिसको तुम इच्छा कहते हो सो ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप है और अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है । ज्ञानवान् को आत्मानन्द प्राप्त हुआ है वह अपना जो स्वभाव है उसमें सदा स्थित है इससे उसको कोई कल्पना नहीं उठती और वह विद्यमान निरावरण दृष्टि लेकर स्थित होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकता�ाभाववर्णनंनाम द्विशताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||255||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

स्मृत्यभावजगत्ि्परमाकाश वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं सो अविद्यमान हैं-कुछ हैं नहीं, तैसे ही पितामह जो आदि ब्रह्माजी हैं उनको भी आकाशरूप जानो । वह भी कुछ है नहीं अर्थात् आत्मसत्ता से भिन्न हुए नहीं । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं और तरंग शब्द कहना भी उनको नहीं बनता वे तो जलरूप हैं, तैसे ही जिनको तुम ब्रह्माजी कहते हो सो और कोई नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । ब्रह्माजी ही विराट् हैं जैसे प���्र , फूल, फल और टास वृक्ष के अंग हैं तैसे सब भूत उस विराट् के अंग हैं । जो (विराट्) ब्रह्मा ही आकाश रुप है तो उसके अंग जगत् की वार्त्ता क्या कहिये? हे रामजी! विराट् के न प्राण है, न आकार है, न इन्द्रियाँ हैं, न मन है, न बुद्धि है, और न इच्छा है केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है । जो विराट् ही नहीं तो जगत् कैसे हो? जो तुम कहो आकाशरूप के अंग कैसे भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे स्वप्ने में बड़े पहाड़ और पर्वत प्रत्यक्ष दृष्टि आते हैं परन्तु कुछ बने नहीं आकाशरूप हैं, तैसे ही आदि विराट् भी कुछ बना नहीं आकाशरूप है तो उसके अंग में आकाररूप कैसे कहूँ? सब आकार संकल्पपुर की नाईं कल्पित है । एक आत्मसत्ता ही सर्वदाकाल ज्यों की त्यों स्थित है- उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? अनुभव और स्मृति भी उसी का आभास है । जैसे समुद्र में तरंग आभास होते हैं, तैसे ही आत्मा में अनुभव और ��्मृति भी आभास है । स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभव होता है सो अनुभव भी जगत् में होता है पर जहाँ जगत् ही उपजा न हो तो अनुभव और स्मृति उसको कैसे हो? इसलिये न अनुभव है और न स्मृति है इस कल्पना को त्याग दो । जहाँ पृथ्वी होती है तहाँ धूलि भी होती है पर जहाँ पृथ्वी से रहित आकाश ही हो वहाँ धूलि कैसे उड़े? इसी प्रकार जहाँ पदार्थ होते हैं वहाँ स्मृति अनुभव भी होता है और जहाँ पदार्थ ही नहीं तो यह कैसे हो? इससे दोनों का अभाव है । रामजी! ने पूछा, हे ज्ञानवान् में श्रेष्ठ! स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होता है? प्रथम पदार्थ का अनुभव होता है पीछे उसकी स्मृति होती है और उस स्मृतिसंस्कार से फिर अनुभव होता है तो ऐसे ही ब्रह्मादिक का क्यों नहीं होता येतो प्रत्यक्ष भासते है? तुम कैसे इनका अभाव कहते हो और अभाव में विशेषता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्मृति से अनुभव वहाँ होता है जहाँ कार्य-���ारण भाव होता है । ब्रह्मा से आदि लेकर काष्ठपर्यन्त सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं और अविद्यामान ही भ्रम से विद्यमान भासता है । जैसे सूर्य की किरणों में जल आभास है सो अविद्यमान है पर भ्रम से जल भासता है, तैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है । स्मृति उसकी होती है जिस पदार्थ का प्रथम अनुभव होता है । जो कहिये कि भ्रमादिक स्मृति संस्कार से उपजी है तो ऐसे नहीं बनता, क्योंकि प्रथम तो ज्ञानवान स्मृति से नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहिये? और द्वितीय यह है कि इस जगत् के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये । इस जगत् के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी उस में स्मृति क्या और अनुभव क्या? इसलिये ब्रह्मादिक और जगत् किसी कारण कार्यभाव से नहीं उपजे अकारण हैं । हे रामजी! प्रथम तो तुम यह देखौ कि ज्ञानी को जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसको कहिये? उसको तो केवल ब्रह्म सत्ता ही ���ासती है । जैसे सूर्य को रात्रि की स्मृति नहीं होती, तैसे ही ज्ञानी को जगत् की स्मृति नहीं होती हमारे निश्चय में तो यह है कि जगत् न हुआ है और न आगे होगा केवल ब्रह्म सत्ता अपने आप में स्थित है सो अद्वैत है और उसी का सब आभास है जो आभास को सत्य जानते हो तो स्मृति को भी सत्य जानो और जो

www.tantrik-astrologer.in

आभास को असत्य जानते हो तो स्मृति को भी असत्य जानो । जैसे स्वप्ने में सृष्टि का आभास होता है और उसमें अनुभव और स्मृति होती है पर जागे सृष्टि अनुभव स्मृति का अभाव हो जाता है, तैसे ही अद्वैत परमात्म सत्ता के जाग्रत में अनुभव और स्मृति का अभाव है और उसमें जगत् कुछ बना नहीं । जैसे कोई पुरुष मरुस्थल में भ्रम से नदी देखता है और सत्य जानकर उसकी स्मृति करता है पर वह नदी तो कुछ नहीं है जो नदी ही असत्य है तो उसकी स्मृति कैसे सत्य हो, तैसे ही अज्ञानी के निश्चय में जगत् भासित हुआ है सो जगत् ही असत्य है तो उसकी स���मृति अनुभव कैसे हो? ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसे ही भासता है । हे रामजी! स्मृति पदार्थ की होती है सो पदार्थ कोई नहीं सर्व ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है और जैसे -जैसे उनमें फुरना होता है तैसा हो होकर भासते हैं परन्तु और कुछ वस्तु नहीं । जैसे वायु चलता भी है और ठहरता भी है पर चलने और ठहरने में वायु को कुछ भेद नहीं तैसे ही ज्ञानवान् को जगत् के फुरने अफुरने में ब्रह्मसत्ता अभेद भासती है और कारण कार्य नहीं भासता । जैसे पत्र, टहनी, फूल और फल सब वृक्ष के अवयव हैं तैसे ही जगत् आत्मा के अवयव हैं, आत्मा में प्रकट होते हैं और फिर आत्मा में ही लीन भी हो जाते हैं भिन्न कुछ नहीं । जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासता है कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं होता-आभासमात्र है । जैसे घट पट आदिक आत्मा का आभास है, तैसे ही स्मृति भी आभास है । स्मृति भी जगत् में उदय हुई है जो जगत् ही असत्य है तो स्मृति कैसे सत्य हो? जो यथार्थदर्शी हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है । हमको न कुछ मोक्ष उपाय भासता है और न इसका कोई अधिकारी भासता है, हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्मसत्ता ही भासता है । जैसे नट स्वाँग धारता है पर सब स्वाँग को अभास मात्र जानता है- किसी को सत्य नहीं जानता पर उससे भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता । अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते । जिस प्रकार उसको जगत् शब्द है सो उसके निश्चय को कोई नहीं जानता । हमारे निश्चय में सब चिन्मात्र है । अज्ञानीको जगत् द्वैतरूप भासता है और विपर्यय भावना होती है और ज्ञानवान् को चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं भासता । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने अनुभव में स्थित होती है और सर्व का अधिष्ठान अनुभवसत्ता है परन्तु निद्रादोष से भिन्न-भिन्न भासती है, तैसे ही अज्ञानी को जगत् भिन्न भिन्न भासता है और जो जागे हुए ज्ञानवान् हैं उनको भिन्न कुछ नहीं भासता और न उनको अविद्या, न मूर्खता और न मोह भासता है उन्हें सब अपना आप ही ब्रह्मस्वरूप भासता है । जहाँ कुछ दूसरी वस्तु नहीं बनी वहाँ स्मृति और अनुभव किसका कहिये? यह कलना सब ही मिथ्या है । हे रामजी! सब अर्थों का जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है उसी में सब पदार्थ कल्पित हैं । स्मृति और अनुभव मन में होता है सो मन आत्मा में ऐसे है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तो उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? सब कल्पित है । पृथ्वी आदिक तत्त्व आत्मा में कुछ बने नहीं ब्रह्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है-ज्ञानवान् को सदा ऐसे ही भासता है । आभास भी आत्मा में आभास है और कारण-कार्य भाव कदाचित् नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार कदाचित् नहीं भासता, तैसे ही ज्ञानवान् को कारण कार्यभाव दिखाई नहीं देता । जैसे स्वप्ने के आदि अद्वैतसत्ता होती है और उसमें अकारण स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है तैसे ही अद्वैतसत्ता में अकारण आदि सृष्टि फुर आई है । न पृथ्वी है और न कोई दूसरा पदार्थ है सब चिदाकाशरूप है और कुछ बना नहीं तो आभासमात्र जगत् में स्मृति की कल्पना कैसे हो?

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृत्यभावजगत्परमाकाश वर्णनन्नाम द्विसताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः

||256||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मजगदेकताप्रति0 नाम

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिसमें सर्व अनुभव होता है उसके देह में अहंप्रत्यय किस प्रकार होती है? वह तो सर्वात्मा है उस सर्वात्मा को एक देह में अहंप्रत्यय क्यों कर होती है - और काष्ठ पाषाण पर्वत और चैतन्यता का अनुभव किस प्रकार हो गया है वह तो अद्भुत स्वरूप है उसमें जड़ चैतन्य ये दोनों भेद कैसे हुए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे शरीर में हाथ आदिक अपने अंग हैं और उन सब अंगों में एक शरीर फुरना व्यापा हुआ है पर जो उन अंगों में एक अंग को पकड़कर कहे कि नाम ले कौन है तब वह अपना नाम कहता है तो तुम देखो कि उस एक अंग में अपना आप कहा परन्तु सर्व अंगों में उसकी आत्मता तो नाश नहीं हो जाती है तैसे ही आत्मा अनुभव है तो एक अंग में उसकी आत्मता होते हुए सर्वात्मता खण्डित तो नहीं हो जाती? जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी आदिक सर्व अंग में वृक्ष एक ही व्यापा हुआ है परन्तु जो एक टहनी अथवा पत्र को पकड़कर कहता है कि यह वृक्ष है तो इसके एक अंग में वृक्षभावना कहना वृक्ष का सर्वात्मभाव नष्ट नहीं होता, तैसे ही सर्वात्मा का एक देह में अहंभाव सिद्ध होता है जड़ और चैतन्य भी दोनों भाव एक ही ने धारे हैं और एक ही के दोनों स्वरूप हैं । जैसे एक ही शरीर में दोनों सिद्ध होते हैं और हाथ, पाँव आदिक जड़ हैं और नेत्र इसके दृष्टाचेतन हैं सो एक ही शरीर दोनों हैं दोनों एक ही शरीर के स्वरूप हैं तैसे ही एक आत्मा ने दोनों धारे हैं और एक ही के स्वरूप हैं । जैसे वृक्ष अपने अंग को धारता है और वृक्ष स्वभाव को भी धारता है तैसे ही सर्वात्मा सर्व को धारता है । जैसे स्वप्न की सृष्टि को अनुभव ही धारता है और सर्वक्रिया को भी धारता है, तैसे ही आत्मसत्ता सर्व जगत् और जगत् की सर्वक्रिया को धारती है, क्योंकि सर्वात्मा है सो क्यों न धारे? जैसे एक ही समुद्र में अनेक तरंग उठते हैं परन्तु सब ही समुद्र के आश्रय हैं और वही रूप हैं, तैसे ही सर्वजीव परमात्मा में फुरते हैं, परमात्मा के आश्रय हैं और वही रूप है । जैसे तरंग आपको जाने कि मैं जल ही हूँ तो तरंग उसकी संज्ञा जाती रहती है जलरूप ही दिखता है, तैसे ही जीवजब परमात्मा से आपको अभेद जाने कि `मैं आत्मा ही हूँ' तब उसके जीवत्वभाव का अभाव हो जाता है, परमात्मा ही दीखता है । जैसे जल में द्रवता से तरंग भासते हैं परन्तु तरंग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तैसे ही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदि ब्रह्मा फुरा है और उसने यह जगत् मनोराज से कल्पा है सो आकाशरूप निराकार है और कुछ बना नहीं । जो विराट् ही आकाशरूप हुआ तो उसका शरीर कैसे साकार हो-वह भी निराकार है । जैसे अपना अनुभव स्वप्ने में पर्वत, जड़ और चैतन्य होकर भासता है, तैसे ही सर्वजगत् जो भासता है सो आत्मरूप है । हे रामजी! जैसे एक निद्रा के दो स्वरूप और सुषुप्ति, तैसे ही एक ही आत्मा ने जड़ और चैतन्य दो स्वरूप धारे हैं । जगत् आत्मा में कुछ बना नहीं यह आभासरूप है और आत्मसत्ता ही अपने किंचनद्वारा जगत्ूरूप हो भाती है । जैसे आकाश में धन शून्यता के कारण नीलता भासती है सो अविचारसिद्ध है-नीलता कुछ बनी नहीं, तैसे ही आत्मा में घन चैतन्यता से जगत् भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं सर्वदाकाल आत्मा अद्वैत निरा कार है । अनन्तसृष्टि आत्मा में आभास उपज कर लीन हो जाती है और आत्मा ज्यों का त्यों है । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लीन हो जाते हैं परन्तु जलरूप है, तैसे ही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्म है । हे रामजी! यह जगत् विराट् का शरीर है, महाकाश उसका शीश है, दशों दिशा उसकी भुजा हैं, पृथ्वी उसके चरण हैं, पातालरूप तली है, अन्तरिक्ष मध्यलोक उदर है, सर्व जीव उसकी रोमावली हैं और इनसे लेकर सर्वपदार्थ विराट् के अंग हैं सौ विराट् आकाशरूप है । जैसे विराट् ब्रह्माजी आकाशरूप है तैसे

www.tantrik-astrologer.in

हीउसका जगत् भी आकाशरूप है । इससे सर्व जगत् विराट्ूरूप है सो ब्रह्म ही है और कुछ बना नहीं । चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं, मैं और तुमसे आदि लेकर सर्व शब्दों का अधिष्ठान ब्रह्म ही है सो ब्रह्म मैं हूँ । जिसमें दूसरा बना नहीं सदा मैं अपने ही आपमें ही स्थित हूँ । हे रामजी! शून्यवादी पाँच रात्रिक, शैवी, शक्ति आदि जो शास्त्र हैं उन सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है और सबका साररूप वही सर्वात्म रूप है । जैसा किसी को निश्चय होता है तैसा ही उसको वह सर्वरूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रति0 नाम द्विशताधिक सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||257||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मगीतापरमनिर्वाण वर्णन

वशिष्टजी बोले, हे रामजी! इस जगत् के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी और उसमें जो जगत् आभास फुरा है उसको भी तुम वही स्वरूप जानो जैसे स्वप्ने के आदि अनुभव आकाश होता है और उसमें स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है सो अनुभवरूप है भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही यह जगत् अनुभवरूप है भिन्न नहीं। जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही चैतन्य ब्रह्म जगत्‌ूरूप हो भासता है सो जगत् भी वही रूप है। हे रामजी वास्तव में कोई दुःख नहीं है, दुःख और सुख अज्ञान से भासते हैं। जैसे एक निद्रा में दो वृत्ति भासती हैं-एकस्वप्नवृत्ति और दूसरी सुषुप्तिवृत्ति, तैसे ही अज्ञानी की दो वृत्ति होती हैं - सुख की और दुःख की और ज्ञानवान् ब्रह्मरूप है। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने से जाग उठता है तो उसको स्वप्ने की सृष्टि असत्यरूप भासती है तैसे ही ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत्य भासती है जैसे जिसने मरुस्थल की नदी के जल का अत्यन्ताभाव जाना है वह जलपान की इच्छा नहीं करता, तैसे ही सम्यक्दर्शी जगत् को असत्य जानता है, इसलिये वह जगत् के पदार्थों की इच्छा भी नहीं करता। जो सम्यक् दर्शी हैं उनको जगत् सत्य भासता है और वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता है और किसी का त्याग करता है। हे रामजी! ईश्वर जो परमात्मा है उसमें जगत् इसी प्रकार है जैसे समुद्र में तरंग होते हैं। जैसे समुद्र और तरंग में भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं। जो तुम कहो कि अविद्या ही जगत् का कारण है तो अविद्या जगत् का कारण तब कहाती जो वह जगत् से प्रथम सिद्ध होती पर अविद्या तो अविद्यमान है जैसे परमात्मा में जगत् आभासमात्र है, तैसे ही अविद्या भी आभासमात्र है। जो आपही आभास मात्र हो तो उसे जगत् का कारण कैसे कहिये? जगत् आभास और अविद्या का आभास इकट्ठा हो फुरा है जैसे स्वप्ने में सृष्टि भास आती है और उसमें घट-पटादि पदार्थ भासते हैं सो किसी कुलाल ने मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये। जैसे घट भासा है, तैसे ही कुलाल और मृत्तिका भी भासि आये हैं। जैसे इन सब का भासना इकट्ठा ही होता है, तैसे ही जगत् और अविद्या इकट्ठे ही फुरे हैं। अविद्या पूर्व में तो सिद्ध नहीं होती तो उसको जगत् का कारण कैसे मानिये? हे रामजी परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठे ही आभासमात्र फुरे हैं पर वह आभास कुछ वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, न कहीं अविद्या है, न जगत् है आत्मसत्ता सदा ज्यों की त्यों स्थित है। हे रामजी! निर्विकल्प में जगत् का अत्यन्ताभाव होता है सो निर्विकल्प कैसे हो? जो निर्विकल्प होता है तब जड़ता आती है और जब विकल्प- उठता है तब संसार उदय होता। जब ध्यान लगाता है तब ध्याता, ध्यान और ध्येय त्रिपुटी हो जाती है। इस प्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती क्योंकि निर्विकल्प से भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। निर्विकल्प उसका नाम है जहाँ चित्त की वृत्ति न फुरे पर तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ भी अभाव वृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है और जड़ात्मक सुषुप्तिरूप है। सविकल्प सुषुप्ति में भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती इससे सम्यक् बोध का नाम निर्विकल्प है। जिसको सम्यक्बोध निर्विकल्पता से जगत् का आत्यन्ताभाव हुआ है वह जीवन्मुक्त है वही निर्विकल्प कहाता है और वही परम जड़ता है जहाँ जगत् का असम्भव है। हे रामजी! वह जो निर्विकल्प और सविकल्प है उससे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि ये दोनों मन की वृत्ति हैं। जैसे एक निद्रा की वृत्ति स्वप्न और सुषुप्तिरूप है तैसे ही यह निर्विकल्प और सविकल्प मन की वृत्ति है। निर्विकल्प सुषुप्तिरूप और पत्थर वत् है और सविकल्प स्वप्नवत् चञ्चलरूप है। निर्विकल्प में भी अभाववृत्ति रहती है इससे उससे भी मुक्ति नहीं होती। मुक्ति तब होती है जब दृश्य का अत्यन्ताभाव

www.tantrik-astrologer.in

होता है । हे रामजी! जहाँ आत्म अनुभव आकाश से इतर उत्थान नहीं होता-उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है । हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तो भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान तुमको न होगा । आत्मा को अद्वैत और जगत् का अत्यन्ताभाव जानने ही का नाम बोध है । जब बोध और ध्यान की दृढ़ता हो तब उसका नाम परमपद है, उसी का नाम निर्वाण है और उसी को मोक्ष भी कहते हैं । जो पद किंचन और अकिंचन है और सर्वदाकाल अपने आपमें स्थित है उसमें न नानात्व कहना है, न अनाना शब्द है, न सविकल्प है, न निर्विकल्प है, न सत्य है, न असत्य है, न एक है और न दो हैं उसमें सर्व शब्दों का अन्त है और किसी शब्द से वाणी नहीं प्रवर्त्तती । उसी सत्ता को प्राप्त होने का उपाय मैं कहता हूँ । हे रामजी! यह मोक्ष का उपाय ग्रन्थ जो मैंने तुमसे कहा है इसको विचारना । जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है और पद पदार्थ जाननेवाला है उसको यदि मोक्ष की इच्छा है तो वह इस ग्रन्थ को विचारता है, शुभ आचार करके बुद्धि को निर्मल करता है और अशुभ क्रिया का त्याग करता है तो उसको शौघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी । हे रामजी! जो मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है सो तीर्थ-स्नान, तप और दानसे नहीं प्राप्त होता । तप. दानादि करके स्वर्ग प्राप्त होता है मोक्ष नहीं मिलता । मोक्षपद अध्यात्म शास्त्र के अर्थ अभ्यास से ही प्राप्त होता है । यह जगत् आभासमात्र है, वही ब्रह्मसत्ता जगत्ॣरूप होकर भासती है । जैसे जल ही तरंगरूप होकर भासता और वायु ही स्पन्दरूप है, तैसे ही ब्रह्म जगत्ॣरूप होकर भासता है । जैसे स्पन्द और निस्स्पंद में वायु ज्यों की त्यों है परन्तु स्पन्द होता है तब भासती है और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती, तैसे ही ब्रह्म में संवेदन फुरती है तब जगत् हो भासती है और जब निर्वेदन होती है और अन्तर्मुख अधिष्ठान की ओर आती है तब जगत् समेटा जाता है परन्तु संवेदन के फुरने में भी वही है और न फुरने में भी वही है । इसलिये हे रामजी! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं बना और जो इतर भासता है सो भ्रममात्र ही जानना! जब आत्मपद का अभ्यास हो तब भ्रान्ति शान्त हो जाती है जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, तैसे ही आत्मपद के अभ्यास से भ्रान्ति निवृत्त हो जाती है । यद्यपि नाना प्रकार की सृष्टि भासती है परन्तु कुछ हुई नहीं । जैसे स्वप्ने में सृष्टि दृष्टि आती है परन्तु कुछ बनी नहीं, वही अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, तैसे ही यह जगत् सब अनुभवरूप है । जैसे रत्न और रत्न के चमत्कार में कुछ भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे रामजी! तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो कि भ्रम मिट जावे । सृष्टि, स्थित और प्रलय सब उसी की संज्ञा हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ||258||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

परमार्थगीता वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सब आकार जो तुमको भासते है सो संवेदनरूप हैं और कुछ बने नहीं । सृष्टि के आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अन्त में भी वही रहती है और मध्य में जो आकार भासते हैं उसे भी वही रूप जानो । जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदि शुभसंवित् होती है और उसमें आकार भासि आता है सो भी अनुभवरूप है और कुछ नहीं बना, आत्म सत्ता ही पिण्डाकार हो भासती है और जितने पदार्थ भासते हैं सो आकाशरूप आभासमात्र हैं । आत्मसत्ता सदा शुद्ध है परन्तु अज्ञान से अशुद्ध की नाईं भासती है, विकार से रहित है परन्तु विकार सहित भाती है, अनाना है परन्तु नाना की नाईं भासती है और आकार से रहित है परन्तु आकार सहित भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपना अनुभवरूप होती है परन्तु स्वरूप के प्रमाद से नाना प्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है और जागे से एक आत्मरूप हो जाती है, तैसे ही यह सृष्टि भी अज्ञान से नाना प्रकार भासती है और ज्ञान से एकरूप भासती है । विद्यमान भासती है पर उसे असत्य ही जानो । आत्मसत्ता सदा शुद्ध रूप शान्त और अनन्त है और उसमें देश, काल और पदार्थ आभासमात्र हैं । जो तुम कहो कि आभासमात्र है तो अर्थाकार क्यों होते हैं? तो उसका उत्तर यह है कि जैसे स्वप्न में अंगना कण्ठ से मिलती है और उसमें प्रत्यक्ष राग और विषयरस होता है सो आभासमात्र है, तैसे ही जाग्रत् में अर्थाकार क्षुधा को अन्न , तृषा को जल और और भी सब ऐसे ही होते हैं और सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर जो इनका कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं मिलता । जिसका कोई कारण न मिले उसे जानिये कि आभासमात्र है । हे रामजी! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना, आदि जो आभास फुरा है वह बुद्धिपुर्वक नहीं हुआ और उसमें जगत् का संकल्प दृढ़ हुआ है तब कारण करके कार्य भासने लगा परन्तु जिनको स्वरूप का प्रमाद हुआ है उनको कारण से कार्य भासने लगे और जो आत्मस्वभाव में स्थित हुए हैं उनको सर्वजगत् आत्मस्वरूप है । हे रामजी! कारण से कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ वस्तु हो । जैसे पिता की संज्ञा तब होती है जब पुत्र होता है और जो पुत्र ही न हो तो पिता कैसे कहिये? तैसे ही कारण तब कहिये जब कार्य हो, जो कार्य जगत् ही कुछ नहीं तो कारण कैसे कहिये? हे रामजी! कारण और कार्य अज्ञानी के निश्चय में होते है जैसे चरखे पर बालक भ्रमता है तो उसको सब पृथ्वी भ्रमती दृष्टि आती है तैसे ही अज्ञानी को मोह दृष्टि से कारण कार्यभाव दृष्टि आता है और ज्ञानी को कारण कार्य भाव नहीं भासता । स्मृति भी जगत् का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत् से पूर्व हो पर स्मृति अनुभव भी जगत् में ही फुरे हैं । यह भी आभासमात्र हैं परन्तु जिनको भासे हैं उनको तैसे ही हैं । हे रामजी! स्मृति, संस्कार और अनुभव ये तीनों आभास मात्र हैं । जैसे सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसे ही आत्मा में तीनों भासते हैं । इसलिये इस कलना को त्यागकर जगत् को आभासमात्र जानो । जैसे स्वप्ने में घट भासते हैं पर उनका कारण मृत्तिका कहिये तो नहीं बनता, क्योंकि घट और मृत्तिका का आभास इकट्ठा फुरा है इसलिये वे आभासमात्र हुए उसमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये, तैसे ही स्मृति, संस्कार, अनुभव और जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये? इसलिये सब जगत् आभासमात्र है । हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो आत्मसत्ता का आभास है, आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । जैसे नेत्र का खोलना और ,मूँदना होता है, तैसे ही परमात्मा में जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है । जब चित्तसंवेदन फुरती है तब जगत्ूरूप हो भासती है और जब फुरने से रहित होती है तब जगत् आभास मिट जाता है जगत् की उत्पत्ति और प्रलय में

www.tantrik-astrologer.in

आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है । जैसे खुलना और मूँदना नेत्रों का स्वभाव है, तैसे ही फुरना और न फुरना संवेदन के स्वभाव हैं । जैसे चलना और ठहर जाना उभय वायु के स्वभाव हैं, जब चलती है तब भासती है और जब नहीं चलती तब नहीं भासती । चलने में वायु की तीन संज्ञा होती हैं-एक मन्द मन्द चलती है अथवा बहुत चलती है, दूसरे शीतल अथवा उष्ण स्पर्श होता है और तीसरे सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध युक्त होती है । ये तीनों संज्ञा फुरने में होती हैं पर जब फुरने से रहित होती है तब तीनों संज्ञा मिट जाती हैं । जैसे एक ही अनुभव में स्वप्ने और सुषुप्ति की कल्पना होती है, स्वप्ने में जगत् ही भासता है और सुषुप्ति में नहीं भासता परन्तु दोनों में अनुभव एक ही है, तैसे ही संवित् के फुरने से जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप हो जाता है पर आत्मसत्ता ज्यों की त्यों एक रूप है । इसलिये जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं वहीरूप है और जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तीनों आत्मा के आभास हैं-उनमें आस्था न करना । हे रामजी! यह परम सिद्धान्त तुमको मैंने उपदेश किया है और जिन युक्तियों से कहा है वैसी कोई नहीं कहेगा । अज्ञानी को संसाररूपी बड़ी भ्रान्ति उदय हुई है परन्तु जो मेरे शास्त्र को बारम्बार विचारेगा उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जावेगी । दिन के दो विभाग करे, आधे दिन पर्यन्त मेरा शास्त्र विचारे और आधा दिन अपने आचार में व्यतीत करे पर जो आधे दिन इस शास्त्र का विचार न कर सके तो एक प्रहर ही विचारे । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार निवृत्त होता है, तैसे ही उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जावेगी । जो मेरे वचन पर को वृथा जानकर निन्दा करेगा उसको आत्म पद की प्राप्ति न होगी, क्योंकि उसने शास्त्र के नेव को नहीं जाना । जीव को यह कर्तव्य है कि प्रथम और शास्त्रों को विचार ले फिर पीछे से इसको विचारे कि उसको इस शास्त्र की महिमा भासे । हे रामजी! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोध का परम कारण है यदि जीव पदपदार्थों का जाननेवाला हो और इस शास्त्र को बारम्बार विचारे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त हो जावेगी । जो सम्पूर्ण ग्रन्थ के आशय को न जान सके तो थोड़ा- थोड़ा बाँचे और विचारे तो उसको सब समझ पड़ेगा । हे रामजी! यदि मनुष्य कुछ भी पदार्थ जाने तो इसके विचारने और पढ़ने से बुद्धिमान होता है और यह प्रतिमान् कर लेता है । इसके विचारने वाले की बुद्धि और शास्त्रों की ओर नहीं जाती इससे यह विचारने योग्य है । जो पुरुष आत्मविचार से रहित है उसका जीना वृथा है और जिनको यह विचार है उनको सब पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं । जो एक श्वास भी आत्मविचार से रहित होता है सो वृथा जाता है । एक श्वास के समान सम्पूर्ण पृथ्वी का धन नहीं है यदि एक श्वास निष्फल जाय तो फिर माँगे नहीं मिलता । ऐसे श्वासको जो वृथा गँवाते हैं उनको तुम पशु जानो । हे रामजी! आयु बिजली के चमत्कारवत् है । जैसे बिजली का चमत्कार होकर मिट जाता है, तैसे ही आयु नष्ट हो जाती है । ऐसे शरीर को धारकर जो सुख की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं । हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् आभासमात्र है और सत्य भासता है तो भी इसको असत्य जानो । जैसे स्वप्ने की सृष्टि में कोई मृतक होता है और उसके बान्धव रुदन करते हैं और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु हुआ कुछ नहीं सब भ्रान्तिमात्र है तैसे ही यह जगत् भ्रममात्र जानो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकषणे परमार्थगीतावर्णनंनाम द्विशताधिकैदेकोनषष्टितमस्सर्गः ||259||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

ब्रह्माण्डोपाख्यान

रामजी! ने पूछा, हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुए हैं और आगे होंगे पर उन जगतों की कथाओं से आपने मुझे उपदेश करके क्यों न जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! ये जो जगज्जाल के समूह हैं उनमें जो पदार्थ हैं सो सबब शब्द अर्थ से रहित हैं और जो शब्द अर्थ से रहित हुए तो कुछ न हुए, इसलिये व्यर्थ कहने का क्या प्रयोजन है हे रामजी! जब तुम विदितवेद और निर्मल त्रिकालदर्शी होगे तब इन जगतों को जानोगे । मैंने आगे भी तुमसे बहुत बार कहा है और बारम्बार वही वर्णन करने में पुनरुक्ति दूषण होता है परन्तु समझाने के निमित्त कहा है । जैसे एक सृष्टि को जाना तैसे ही सम्पूर्ण सृष्टियों को जानो । जैसे अन्न के समूह से एक मुट्ठी भर के देखने से जान लिया जाता है कि सब ऐसे ही हैं , तैसे ही एक ही सृष्टि को यथार्थ जाना तो सब सृष्टियों को जान लिया । हे रामजी! यह सर्व जगत् किसी कारण से नहीं उत्पन्न हुआ । जिसमें कारण बिन पदार्थ भासे उसे जानिये कि वही रूप है । सृष्टि के आदि भी वही सत्ता थी, अन्त भी वही होगा और मध्य में जो कुछ भासता है उसे भी वही रूप जानिये । जैसे स्वप्न के आदि भी अपना निर्मल अनुभव होता है, स्वप्ने के निवृत्त हुए भी वही रहता है और स्वप्ने के मध्य जो पदार्थ भासता है उसे भी वही जानिये और वस्तु कुछ नहीं अनुभवसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है । जब तुम विदितवेद होगे तब सर्व जगत् तुमको अपना आप भासेगा । हे रामजी! एक एक अणु में अनेक सृष्टि हैं सो सब आकाश रूप हैं कुछ हुई नहीं । इस पर एक आख्यान कहता हूँ सो सुनो एक काल मैंने ब्रह्माजी को एकान्त पाकर प्रश्न किया कि हे भगवन्! यह सृष्टि कितनी हैं और किसमें हैं? तब पितामह ने कहा, हे मुनीश्वर! सर्वजगतों के शब्द अर्थ सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं, जो अज्ञानी हैं उनको नाना प्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञान वान् हैं उनको सब जगत् आत्मरूप भासता है । जिस प्रकार जगत् हुआ है सो सुनो । हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश के सूक्ष्मअणु में फुरना हुआ कि `अहमस्मि', तब उस अणु ने आपको जीव जाना । जैसे अपने स्वप्ने में आपको जीव जाने और सर्वात्मा हो तैसे ही चिद्अणु सर्वात्मा अहंकार को अंगीकार करके आपको जीव जानने लगा और उसमें जो निश्चय हो गया वह बुद्धि हुई । जैसे वायु में फुरना होने से ही तिसमें संकल्प विकल्परूपी फुरना हुआ उसका नाम मन हुआ । तब मन के साथ मिलकर चिद्अणु ने देह को चेता और अपने में देह और इन्द्रियाँ भासने लगीं और अपने साथ शरीर देखा कि यह शरीर मेरा है । जैसे स्वप्ने में अपने साथ कोई शरीर को देखे और बड़ा स्थूल दृष्टि आवे, तैसे ही उसने अपने साथ स्थूल शरीर देखा । जैसे स्वप्ने में सूक्ष्म अनुभव से बड़े पर्वत दृष्टि आते हैं, तैसे है सूक्ष्म अणु से स्थूल विराट् शरीर भासने लगा । फिर देशकाल की कल्पना की और नाना प्रकार के स्थावर जंगम प्राणी और विराट् भासने लगा । जैसे स्वप्ने में देश, काल और पदार्थ भासि आवें सो कुछ नहीं, तैसे ही देश काल पदार्थ भासि आये परन्तु हैं कुछ नहीं । जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरती है तब नाना प्रकार का जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अवाच्यरूप हो जाती है । जैसे वायु चलने और ठहरने में एक रूप होती है तैसे ही फुरने अफुरने में संवित् एक ही अभेद है । हे रामजी! जितना जगत् है वह आकाश में आकाशरूप अपने आपमें स्थित है और अणु अणु प्रति सर्वदाकाल सृष्टि है परन्तु आभास मात्र है जो चैतसम्बन्धी होकर जीव सृष्टि का अन्त ले तो सृष्टि अनन्त है इसका अन्त कहीं नहीं आता । वह सृष्टि अविद्यारूप है सो अविद्या ही चैत है । जब अविद्या सम्बन्धी होकर जगतों का अन्त देखेगा तब अन्त कहीं न आवेगा किन्तु संसरने का नाम संसार है, जब स्वरूप में स्थित होगे तब सब जगत्

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मरूप हो जावेगा और जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी । हे रामजी! इस जगत् के आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अन्त में भी अद्वैतसत्ता रहेगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसको भी वही रूप जानो और कुछ बना नहीं । यह जगत् अकारण है अधिष्ठानसत्ता के अज्ञान से भासता है । इसी का नाम जगत् है और इसी का नाम अविद्या है । अधिष्ठान को जानने का नाम विद्या है । हे रामजी! न कोई अविद्या है, और न जगत् है, ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है । चाहे जगत् कहो और चाहे ब्रह्म कहो दोनों एक ही वस्तु के नाम हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्माण्डोपाख्यानंनाम द्विशताधिकषष्टितमस्सर्गः ||260||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मगीता वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह मैंने जाना कि जगत् अकारण है । जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर होता है, तैसे ही यह जगत् है । पर जो अकारण ही है तो अब यहाँ पदार्थ कारण से काहे को उपजते दृष्टि आते हैं? कारण बिना तो नहीं होते, यह क्यों भासते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्म है, उसमें जैसा निश्चय होता है तैसा ही होकर भासता है, पर क्या भासता है, अपना अनुभव ही ऐसे होकर भासता है । जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव ही नाना प्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उपजा नहीं सर्व पदार्थ आकाश रूप है, तैसे ही यह जगत् कुछ उपजा नहीं कारण से रहित आकाशरूप है । हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है, पीछे से सृष्टि में आभासरूप मन ने जैसा-जैसा निश्चय किया है तैसे ही है, क्योंकि सर्व शक्तिरूप है । आदि सृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है और पीछे से सृष्टिकाल में कारण हुए हैं । जैसे स्वप्न सृष्टि आदि कारण बिना होती है और पीछे से कारण कार्य भासते हैं पर वास्तव में न कोई आकाश है, न शून्य है, न अशून्य है, न सत्य है, न असत्य है, न असत्य सत्य के मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है, न परम है, न अपरम है, न शुद्ध है न अशुद्ध है, द्वैत कुछ नहीं सब भ्रम है । हे रामजी! ज्ञान वान् को सर्वशब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं । हमको तो कारण-कार्य भाव की कल्पना कुछ नहीं । जैसे सूर्य में अन्धकार का अभाव है, तैसे ही ज्ञानवान् को कारण कार्य का अभाव है । जो सर्वात्मा ही है तो कारण कार्य किसको कहिये? रामजी ने कहा कि हे भगवन्! मैं ज्ञानी की बात पूछता हूँ, उनको कारणकार्यभाव किस निमित्त नहीं भासता? जो कारण कार्य नहीं तो मृत्तिका और कुलाल आदि द्वारा घटादिक क्यों कर उत्पन्न होते दृष्टि आते हैं? इससे तुम कहो कि ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासता है और अज्ञानी को सकारण क्योंकर भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई कारण है, न कार्य है और न कोई अज्ञानी है मैं तुझसे क्या कहूँ? जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती, उनके निश्चय में तो जगत् है ही नहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या हैं? हे रामजी! आकाश का वृक्ष नहीं तो उसका वर्णन क्या कीजिये? जैसे हिमालय पर्वत में अग्नि का कणका नहीं पाया जाता, तैसे ही ज्ञानी के निश्चय मैं जगत् नहीं । ज्ञानी और अज्ञानी और कारण और कार्य ये शब्द जगत् में होते हैं पर जो जगत् ही नहीं फुरा तो कारण, कार्य, ज्ञानी और अज्ञानी तुमसे क्या कहूँ? जैसे स्वप्ने की सृष्टि सुषुप्ति में लीन हो जाती है और वहाँ शब्द और अर्थ कोई नहीं फुरता, तैसे ही ज्ञानवान् के निश्चय में जगत् ही नहीं फुरता । हे रामजी! हमको तो सर्व ब्रह्म ही भासता है । मुझको कुछ कहना नहीं आता परन्तु तुमने पूछा है इस निमित्त कुछ कहता हूँ और अज्ञानी के निश्चय को अंगीकार करके कहता हूँ । हे रामजी! यह जगत् अकारण और आभासमात्र है, किसी आरम्भ और परिणाम से नहीं हुआ । जब पदार्थों का कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान ब्रह्म ही निकलता है जो अद्वैत, अच्युत और सर्वइच्छा से रहित है तो उसको कारण कैसे कहिये? इससे जाना जाता है कि जगत् आभासमात्र है और कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अकारण होती है और उसमें अनेक पदार्थ भासते हैं पर उसका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभव ही निकलता है और उसमें आरम्भ और परिणाम कुछ नहीं । सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है जो पुरुष स्वप्ने में है उसको स्वरूप के प्रमाद से कारण कार्य जगत् और पुण्यपाप सब यथार्थ भासते हैं, तैसे ही जाग्रत जगत् भासता है । हे रामजी! सृष्टि आदि अकारण हुई है और पीछे सृष्टि काल में कारण कार्यरूप हो भासते हैं । जिसको अपना वास्तव स्वरूप

www.tantrik-astrologer.in

स्मरण है उसको अकारण भासता है और जिस अज्ञानी को अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद है उसको कारण कार्यरूप सृष्टि भासती है । हे रामजी! वास्तव में एक ही अनुभव आत्मसत्ता है परन्तु जैसा-जैसा अनुभव में संकल्प दृढ़ होता है उसही की सिद्ध होती है और जिसका तीव्र संवेग होता है वही हो भासता है । इसमें कुछ सन्देह नहीं कि कल्पवृक्ष के पदार्थ संकल्प की तीव्रता से प्रत्यक्ष होते हैं तो उन्हे किसका कार्य कहिये? यदि जगत् किसी कारण से उत्पन्न होता तो महाप्रलय में भी कुछ शेष रहता-जैसे अग्नि के पीछे राख रह जाती है पर जगत् के पीछे तो कुछ नहीं रहता और जैसे स्वप्ने की सृष्टि जागे हुए पर कुछ नहीं रहती, तैसे ही महाप्रलय में जगत् का शेष कुछ नहीं रहता, इससे जाना जाता है कि यह आभासमात्र है । जैसे ध्यान में ध्याता पुरुष किसी आकार को रचता है तो उसका कारण कोई नहीं होता वह तो आकाशरूप है और अनुभवसत्ता ही फुरने से इस प्रकार हो भासती है-आकार तो कोई नहीं और जैसे गन्धर्वनगर कारण से रहित भासता है, तैसे ही यह जगत् कारण बिना भासि आया है । न कोई पृथ्वी है, न कोई जल है, न तेज, वायु और आकाश है सब आकाशरूप है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं । हे रामजी! जब मनुष्य मर जाता है तब शरीर यहीं भस्म हो जाता है, फिर परलोक में अपने साथ शरीर देखता है और उस शरीर से स्वर्ग नरक में सुख-दुःख भोगता है तो उसका कारण कौन है? उसका कारण कोई नहीं पाया जाता केवल चैतन्यता में संकल्परूप वासना जो दृढ़ हुई है उसी के अनुसार शरीर भासता है और स्वर्ग नरक में दुःख सुख भासते हैं और तो कुछ वस्तु नहीं । सब पदार्थ संकल्प के रचे हुए हैं सो सब आत्मरूप हैं जैसे आकाश व्योम और शून्य एक ही वस्तु के नाम हैं, तैसे ही कोई जगत् कहो और कोई ब्रह्म कहो इनमें भेद नहीं । फुरने का नाम जगत् कहते हैं और अफुरने का नाम ब्रह्म है । जैसे वायु के चलने और ठहरने में भेद नहीं, तैसे ही ब्रह्म को संवेदन के फुरने और न फुरने में भेद कुछ नहीं । जो सम्यक्दर्शी हैं उनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इस कारण दोष किसी में नहीं रहता और जो बड़ा कष्ट प्राप्त होता है तो भी वे खेदवान् नहीं होते।जैसे कोई पुरुष स्वप्न मे युद्ध करता है और उसको अपना जाग्रत् स्वरूप भास आता है तो स्वप्ने को स्वप्ना जानता हुआ युद्ध करता है तो भी दुःख नहीं होता तैसे ही जो पुरुष परमपद में जागा है उसकी सब क्रिया होती हैं परन्तु आपको अक्रिय जानता है । हे रामजी! ज्ञानवान् की सब चेष्टा होती हैं परन्तु उसके निश्चय में क्रिया का अभिमान नहीं होता । जैसे नटुवा सब स्वाँग धारता है परन्तु आपको स्वाँग से रहित जानता है और स्वाँग की क्रिया को असत्य जानता है, क्योंकि उसको अपना स्वरूप स्मरण रहता है, तैसे ही ज्ञानवान् सब क्रिया को असत्य जानता है । हे रामजी! ये सर्वपदार्थ अजातजात हैं-उपजे कुछ नहीं । जैसे स्वपने मे पदार्थ भासते हैं परन्तु उपजे नहीं अपना अनुभव ही इस प्रकार भासता है, तैसे ही ये जगत् के पदार्थ भी अनुभवरूप जानो । हे रामजी! बहुत शास्त्र और वेद मैं तुमको किस निमित्त सुनाऊँ और किस निमित्त पढ़ूँ, वेदान्तशास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि वासना से रहित हो । इसी का नाम मोक्ष है और वासना सहित का नाम बन्ध है । वासना किसकी कीजिये यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है । इसमें क्या आस्था बढ़ाइये , ये तो स्वप्न के पर्वत हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतावर्णनंनाम द्विशताधिकैकषष्टितमस्सर्गः ||261||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

इन्द्राख्यानवर्णन

श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! सब जगत् में तीन प्रकार के पदार्थ है-एक अप्रत्यक्ष पदार्थ, दूसरे प्रत्यक्षपदार्थ और तीसरे मध्यभावी। जैसे वायु अप्रत्यक्ष है, क्योंकि रूप से रहित है परन्तु स्पर्श से भासती है इसलिये मध्यभावी प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष जो किसी से मिले नहीं सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा के मण्डल में भी यह संवेदन जाती है और फिर गिरती है और चित्त करके चन्द्रमा को देखती है और फिर आती है इससे जाना कि निराकार है, जो साकार होती तो चन्द्रमारूप हो जाती फिर लौटकर आती-जैसे जल में जल डाला फिर नहीं निकलता इस कारण जानता हूँ कि यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहता हूँ कि इस शरीर में जो प्राण आते-जाते हैं सो कैसे आते-जाते हैं?जो तुम कहो कि संवित् जो ज्ञानशक्ति है सो इस शरीर और प्राण को लिये फिरती है जैसे मजदूर भार को लिये फिरता है-तो ऐसे कहना नहीं बनता क्योंकि संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है। अप्रत्यक्ष साकार से नहीं मिलती तो वह चेष्टा क्योंकर करे? जो कहो कि निराकार संवित् ही चेष्टा करती है तो पुरुष की संवित् चाहती है कि पर्वत नृत्य करे पर वह तो इसका चलाया नहीं चलता और कहते हैं कि ये पदार्थ उठ आवे परन्तु वे तो नहीं उठते, क्योंकि पदार्थ साकाररूप हैं और वृत्ति निराकार है, इसका उत्तर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस शरीर में एक नाड़ी है जब वह अवकाशरूपी होती है तब उसमें से प्राणवायु निकलता है और जब संकोचरूप होती है तब प्राणवायु भीतर आता है जैसे लुहार की धौकनी होती है तैसे ही इसके भीतर पुरूष बल है उससे चेष्टा होती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! धौकनी भी तब चलती है जब उसके साथ बल का स्पर्श होता है और स्पर्श तब होता है जब प्रत्यक्ष वस्तु होती है पर चैतन्यता तो निराकार है- उसकी स्पर्श क्योंकर कहिये? जो तुम कहो कि उसकी इच्छा ही से स्पर्श होता है तो हे मुनीश्वर! मैं चाहता हूँ कि मेरे सम्मुख जो वृक्ष है सो गिर पड़े पर वह तो नहीं गिरता क्योंकि इच्छा निराकार है जो साकार से स्पर्श हो तब उसकी शक्ति से गिर पड़े। यदि इच्छा से ही चेष्टा होती है तो कर्मइन्द्रियाँ किस निमित्त हैं इच्छा ही से जगत् की चेष्टा हो? यह भी संशय है कि एक के बहुत क्योंकर हो जाते हैं और बहुत का एक क्योंकर हो जाता है? एक चैतन्य है पर जब प्राण निकल जाते हैं तब पाषाण और वृक्ष की नाईं जड़ हो जाता है, आत्मा तो सर्वव्यापी है जड़ कैसे हो जाता है? कोई पाषाण और वृक्षरूप जड़ है और कोई चेतन है यह भेद एक आत्मा में कैसे हुआ! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे संशयरूपी वृक्षों को मैं वचनरूपी कुल्हाड़े से काटता हूँ। जिनको तुम प्रत्यक्ष साकार कहते हो सो आकार कोई नहीं सब निराकार है, वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है-ये आकार कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ननगर में आकार भासते हैं सो सब आकाशरूप निराकार हैं, तैसे ही ये आकार भी जो तुमको दृष्टि आते हैं सो सब निराकार हैं। स्वप्ने जो पर्वत भासते हैं सो जिसके आश्रय होते हैं और देहादिक भासते हैं सो किसके आश्रय हैं, इसलिये वे कुछ बने नहीं अनुभवसत्ता ही आकाररुप हो भासती है, तैसे इसे भी जानो कि आकार कोई नहीं। हे रामजी! जब इन पदार्थों का कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं निकलता, इसी से जाना जाता है कि आभासमात्र हैं बने कुछ नहीं और आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है। आत्मसत्ता अद्वैत और परमशुद्ध है उसमें जगत् कुछ बना नहीं तो मैं आकार क्या कहूँ और निराकार क्या कहूँ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश भी द्वैत कुछ नहीं शुद्ध आत्मसत्ता ही इस प्रकार हो भासती है। जैसे संकल्प के रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभवरूप हैं, तैसे ही ये सब पदार्थ अनुभवरूप हैं-अनुभव से भिन्न

www.tantrik-astrologer.in

कुछ नहीं। इस पर एक आख्यान कहता हूँ उसे मन लगाके सुनो। हे रामजी! आगे भी मैंने तुमसे कहा है और अब भी प्रसंग को पाकर कहता हूँ। एक समय एक सृष्टि में एक इन्द्र ब्राह्मण था जो मानो ब्रह्मा ही था। उसके गृह में दश पुत्र हुए जो मानो दशों दिशा थे। कुछ काल में वह ब्राह्मण मृतक हुआ और उसकी स्त्री पतिव्रता थी इसलिये उसके प्राण भी छूट गये- जैसे दिन के पीछे संध्या आ जाती है। तब उन पुत्रों ने यथाशास्त्र क्रम से उनकी क्रिया की और फिर एक पहाड़ की कन्दरा में जा स्थित हुए और विचारने लगे कि किसी प्रकार हम ऊँचे पद को पावें। हे रामजी! आगे मैंने तुमको सुनाया है कि प्रथम उन्होंने मण्डलेश्वर, चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिक के पद को विचारा और फिर बड़े भाई ने निर्णय करके यही कहा कि सबसे ऊँचा ब्रह्माजी का पद है जिनकी यह सब सृष्टि रची हुई है इसलिये हम दशों ब्रह्मा होवें। ऐसे विचार करके वे दशों पद्मासन बाँध के बैठे और यह निश्चय धारा कि हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं और सब सृष्टि हमारी रची है। निदान वे ऐसे हो गये मानो पुतलियाँ लिखी हुईं हैं और खान-पान से रहित मात्र, युग और वर्ष व्यतीत हो गये पर वे ज्यों के त्यों रहे चलायमान न हुए। जैसे जल नीचे ठौर में जाता है ऊँचे को नहीं जाता, तैसे ही उन्होंने अपना निश्चय न त्यागा और दृढ़ रहे। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके शरीर गिर पड़े और उनको पक्षी खा गये पर उनकी जो ब्रह्मा की वासना संयुक्त संवित् थी उस वासना से दशों ब्रह्मा हो गये और उनकी दश ही सृष्टि देश, काल, पदार्थ और नेति सहित हो गईं। जैसे हमारी सृष्टि है, तैसे ही वे सृष्टि क्या रूप हुईं और तो कुछ नहीं, कुछ और होवे तो कहूँ। इससे सृष्टि का और रूप कुछ नहीं अपना अनुभव ही सृष्टिरूप भासता है और जो कुछ पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप हैं। हे रामजी! जैसे हम ब्रह्मा के संकल्प में रचे हैं तैसे ही उन्होंने भी रच लिये और वे भी इस प्रकार स्थित हो गये, इससे सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप है। जो किसी कारण से जगत् बना होता तो जाना जाता कि कुछ हुआ है पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इससे संकल्पमात्र और आभासमात्र है। इससे कहता हूँ कि ब्रह्म ही है और वस्तु कुछ नहीं। जो कुछ पदार्थ पाषाण, वृक्ष, जड़-चेतन भासते हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं उससे भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! महाभूत जो वृक्ष, पृथ्वी, आकाश, पहाड़ हैं ये सब चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं जैसे इन्द्र के पुत्र एकसे अनेक होगये, तैसे ही यह सृष्टि भी एक से अनेक है और प्रलय में अनेक से एक हो जाती है। जैसे एक तुम स्वप्ने में अनेक हो जाते हो और सुषुप्ति में अनेक से एक हो जाते हो तैसे ही यह जगत् भी है और अकारणरूप है। यदि इसे सकारण भी मानिये तो आत्मरूपी कुलाल है, संकल्प चक्र है और अनुभव चैतन्यरूपी घट उससे उपजते हैं और आभास भी वही है कुछ दूसरी वस्तु नहीं। यह सब जगत् वही रूप है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों को अपने अनुभव ही से सृष्टि फुर आई सो अनुभवरूप ही भासने लगी इससे और कुछ न भई, तैसे ही सृष्टि को भी जानो। हे रामजी! घट, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूप है-चैतन्य से भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव ही घट, पहाड़, नदियाँ और पदार्थ हो भासता है-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही यह जगत् अनुभव से भिन्न नहीं-ज्ञानी को सदा यही निश्चय रहता है। अब एक-अनेक का उत्तर सुनो। हे रामजी! जैसे मनोराज में एकसे अनेक हो जाते हैं और अनेक से एक हो जाता है, एवं चैतन्य से जड़ हो जाता है पर जड़ कोई पदार्थ नहीं भासता सब पदार्थ चैतन्यरूप है। जहाँ अन्तःकरण प्रकट होता है सो चैतन्य भासता है और जहाँ अन्तःकरण नहीं मिलता सो जड़ भासता है-चैतन्य का आभास अन्तः करण प्रकट होता है सो चैतन्य भासता है और जहाँ अन्तःकरण नहीं मिलता सो जड़ भासता है-चैतन्य का आभास अन्तःकरण में मिलता है पर जब पुर्ययष्टका निकल जाती है तब जड़ भासता है। यह अज्ञानी की सृष्टि

www.tantrik-astrologer.in

कही है पर मुझसे पूछो तो जिसको जड़ कहते हैं और जिसको चेतन कहते हैं और पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी कहते हैं वे सब ब्रह्मरूप हैं-ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने में कितने जड़ और कितने चेतन पदार्थ भासते हैं और नाना प्रकार के पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं पर सब आत्मरूप हैं, भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही यह जगत् सब आत्मरूप है और इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप हैं । सब नामरूप आत्मा के हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं । शून्य, अशून्य, सत्य, असत्य सब आत्मा के नाम हैं-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । हे रामजी! जिसको मूर्ख जड़ कहते हैं सो जड़ नहीं सब चैतन्यरूप हैं- और सृष्टिकाल में जड़ ही हैं । वे संवेदन में जड़रूप होकर रचित हुए हैं, वे चैतन्य में रचे हैं जिसको अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद होता है उसको ये जड़ चैतन्य भिन्न भिन्न भासते हैं पर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है । हे रामजी! यह मैंने तुमको उपदेश किया है सो बारम्बार विचारने योग्य है । जो कोई इनको नित्य विचारता रहेगा उसके दोष घटते जावेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्मविद्या को त्यागकर जगत् की ओर चित्त लगावेगा उसके दोष बढ़ते जावेंगे । हे रामजी! ज्यों ज्यों जीव को ब्रह्मविचार उदय होता जावेगा त्यों-त्यों दुःख नाश होते जावेंगे जैसे ज्यों-ज्यों दिन उदय होता है त्यों-त्यों तम नष्ट हो जाता है-और विचार के त्यागे दुःख बढ़ते जाते हैं । जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्र का संग न करने देंगे और उनको यह जगत् वज्रसार की नाईं दृष्टि आता है और संसार भ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता । यह सब जगत् मैं, तुम आदि आकाश रूप है और भाव-अभाव आदिक सब शब्द ब्रह्मसत्ता के नाम हैं जो परमशुद्ध, निरामय और अद्वैत है और सदा अपने ही आप में स्थित है । जितने पदार्थ उसमें भासते हैं वे ऐसे हैं जैसे शिला में शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है सो सब शिल्पी के चित्त में होती हैं, तैसे ही जगत् के पदार्थों की प्रतिमा जो सब मन में है सो उसी का किञ्चनरूप है कुछ भिन्न वस्तु नहीं । वह सदा अपने आपमें स्थित है और परम मौनरूप है उसमें विकल्प कोई नहीं प्रवेश कर सकता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इन्द्राख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिक चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ।।262।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सर्वब्रह्म प्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वलोक चिन्मात्र है इसी से शान्त और अद्वैतरूप है । अज्ञानी को भिन्न भिन्न जगत् भासता है और ज्ञानी को सब निराकार और आकाशरूप है । आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निराकार है और वही परमशुद्धसत्ता इस प्रकार भासती है सो शान्तरूप, अनन्त और चिन्मात्र है, इन्द्रियाँ भी ज्ञानरूप हैं और हाड़, माँस, रुधिर, हाथ, पैर, शिर आदिक सम्पूर्ण शरीर भी ज्ञानमात्र है-ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं चिन्मात्र ही इस प्रकार हो भासता है । जैसे स्वप्ने में शरीरादिक और पहाड़, नदियाँ और वृक्ष भासते हैं सो अपना ही अनुभवरूप है कुछ और नहीं बना तैसे ही यह जगत् सब अनुभवरूप है और कारण से रहित कार्य भासता है । तुम अपने अनुभव में जागकर देखो कि सब अनुभवरूप है । आकाश में आकाश भी आकाशरूप है, सत्य में सत्य है, भाव में भाव है और अभाव में अभाव है सर्व आत्मरूप है भिन्न कुछ नहीं । जो तुम कहो कि वस्तु कारण ही से उत्पन्न होती है जो सत्य होती है परन्तु जगत् का कारण कहीं नहीं मिलता इससे यह मिथ्या है तो कारण भी इसका तब कहिये जब यह कुछ वस्तु हो और कार्य भी तब कहिये जब इसका कारण सत्य हो । हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसी का समवाय कारण है और न किसी का निमित्त कारण है । वह तो केवल अच्युत है इसी से समवाय कारण नहीं और अद्वैत है इससे निमित्त कारण भी नहीं । वह तो सर्व इच्छा से रहित है उसको किसका कारण कहिये और जो कारण नहीं तो कार्य किसका हो । इससे सर्व जगत् जो भासता है सो आभासमात्र है-उसी ब्रह्मसत्ता का नाम जगत् है । जैसे निद्रा एक है और उसके दो स्वरूप है-एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति फुरनेरूप का नाम स्वप्ना है और न फुरनेरूप का नाम सुषुप्ति हैं, तैसे ही चैतन्य के भी दो स्वरूप हैं-फुरने का नाम जगत् है और अफुररूप का नाम ब्रह्म है । जैसे एक ही वायु के चलना और ठहरना दो पर्याय हैं-जब चलती है तब लखने में आती है और ठहरती है तब अलक्ष्य हो जाती है और शब्द का विषय नहीं होती, तैसे ही ब्रह्मसत्ता अफुर में शब्द की प्रवृत्ति नहीं होती । जब फुरती है तब दृष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है और एक से अनेक रूप हो भासती है अनेक से एक रूप है । जैसे एक ही जल नदी, नाला, तालाब आदि भिन्न भिन्न संज्ञा पाता है और जब समुद्र में मिलता है तब एकरूप हो भासता है, एवं जैसे एक ही काल के दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प, घड़ी, मुहूर्त आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु काल तो एक ही है, एक मृत्तिका की सेना के हाथी, घोड़े आदिक बहुत नाम होते हैं- परन्तु मृत्तिका तो एक ही है, एक वृक्ष के फूल, फल, टास पत्र भिन्न-भिन्न नाम होते हैं परन्तु वृक्ष तो एक ही रूप है और एक जल के तरंग, बुद्बुदे, आवर्त फेन आदिक नाम होते हैं परन्तु जल तो एक ही है, तैसे ही परमात्मा में जगत् अनेक नाम रूप को प्राप्त होता है परन्तु सदा एक ही रूप है । जैसे स्वप्ने में एक ही अद्वैत अनुभव सत्ता होती है और भिन्न-भिन्न नामरूप हो भासती है पर जब जागता है तब अद्वैतरूप होता है, यह जगत् भी भिन्न-भिन्न नामरूप भासता है परन्तु आत्मसत्ता एक ही है । हे रामजी! जब तुम उसमे जागोगे तब तुमको सब अपना आप अनुभव ही भासेगा जो केवल आत्मत्वमात्र और अनन्य अनुभवरूप है । आत्मरूपी समुद्र में जगत्ूपी जल के कणके हैं जैसे आकाश में नक्षत्र फुरते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् फुरते हैं । तारे तो आकाश से भिन्न हैं परन्तु जगत् आत्मा से भिन्न नहीं-जैसे जल से बूँद अभिन्न है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाण प्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिका- -त्रिषष्टितमस्सर्गः ||263||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मगीतागौर्युद्यान वर्णन

श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! अन्धकार में जो पदार्थ होता है सो ज्यों का त्यों नहीं भासता पर जब सूर्य का प्रकाश होता है तब ज्यों का त्यों भासता है इस निमित्त कहता हूँ कि संशयरूपी तम के कारण जगत् ज्यों का त्यों नहीं भासता । पर तुम्हारे वचनरूपी सूर्य के प्रकाश से जो पदार्थ सत्य है उसको सम्यक्‌ज्ञान से जानूँगा । हे भगवन्! पूर्व में एक इतिहास हुआ है उसमें मुझको संशय है सो दूर कीजिये । एक काल में मैं अध्ययनशाला में विपश्चित् पण्डित से अध्ययन करता था और बहुत ब्राह्मण बैठै थे कि एक ब्राह्मण विदितवेद, बहुत सुन्दर, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों के अर्थ से सम्पन्न, बड़ा तपस्वी और ब्रह्मलक्ष्मी से तेजवान्‌ मानो दुर्वासा ब्राह्मण है- सभा में आकर परस्पर नमस्कार करके आसन पर बैठा और हम सबने उसको प्रणाम किया । उस समय वेदान्त, सांख्य,पातञ्जलादिक शास्त्रों की चर्चा होती थी परन्तु सब तूष्णीं हो गये- और मैं उससे बोला कि हे ब्राह्मण! तुम बड़ी दूर से आये हो, तुमने किस परमार्थ के निमित्त इतना कष्ट उठाया और तुम कहाँ से आते हो सो कहो? ब्राह्मण बोला, हे भगवन् जिस प्रकार वृत्तान्त हुआ है सो मैं कहता हूँ । हे रामजी! विदेहनगर का मैं ब्राह्मण हूँ-वहाँ मैंने जन्म लिया था और कुन्दवृक्ष के श्वेतफूलों के समान मेरे दाँत हैं इस कारण मेरे पिता माता ने मेरा नाम कुन्ददन्त रखा है । विदेह राजा जनक का जो नगर है वहाँ से मैं आया हूँ । वह नगर आकाश में जो स्वर्ग है मानो उसका प्रतिबिम्ब है और वहाँ के रहनेवाले शान्तमान् और निर्मल हैं । वहाँ मैं विद्या पढ़ने लगा और मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि यह संसार महाक्रूर बन्धन है इसलिये किसी प्रकार इस बन्धन से छूटूँ । हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्न हुआ कि किसी प्रकार शान्तिमान् न हुआ । तब मैं वहाँ से निकला और जो-जो शुभ स्थान थे वहाँ विचरने लगा । सन्तों और ऋषियों के स्थान, ठाकुरद्वारे और तीर्थ आदि जो-जो पवित्र स्थान थे उनका दर्शन किया । वहाँ से आते एक पर्वत मिला उस पर मैं चढ़ गया और एक उत्तम स्थान पर चिरपर्यन्त तप किया । फिर वहाँ से एकान्त के निमित्त चला तो आगे एक आश्चर्य देखा सो कहता हूँ । हे रामजी! मैं वहाँ से चला जाता था कि बड़ा श्याम वन दिखलाई दिया जो मानो आकाश की मूर्ति था और शून्य और तमरूप था! उस वन में एक वृक्ष मुझको दृष्टि आया जिसके कोमल पत्र और सुन्दर टहनियाँ थीं और उसमें एक पुरुष लटकता था जिसके पाँव में मूँज का रस्सा बँधा था जो वृक्ष से बँधा हुआ था और उसका शीश नीचे, चरण ऊपर और दोनों हाथ छाती पर पड़े हुए थे । तब मैंने विचार किया कि यह मृतक होगा इसको देखूँ । जब मैं निकट गया तब उसमें श्वास आते-जाते देखे । उसका युवा वस्था का शरीर था और वह हृदय से सबका ज्ञाता और शीत, उष्ण, अँधेरी और मेघ को सह रहा था । हे रामजी! तब मैंने जाना कि यह तपस्वी है और इसकी शूरवीरता बड़ी है । निदान मैं उसके निकट बैठ गया और उसके चरण जो बँधे हुए थे उनको कुछ ढीला किया । फिर उससे मैंने कहा कि हे साधो! ऐसी क्रूर तपस्या तुम किस निमित्त करते हो , अपना वृत्तान्त मुझसे कहो? उसने नेत्र खोल के कहा, हे साधो! यह तप मैं अपनी किसी कामना के अर्थ करता हूँ पर वह ऐसी कामना है कि जो तुम उसे सुनोगे तो हँसी करोगे । हे रामजी! जब इस प्रकार उसने कहा तब मैंने कहा, हे साधो! मैं हँसी न करूँगा, तू अपना वृत्तान्त कह और जो कुछ तेरा कार्य हो तो कह मैं कर दूँगा । जब मैंने इस प्रकार बारम्बार कहा तब उसने कहा कि मन को उद्वेग से रहित करके सुन मैं कहता हूँ । मैं ब्राह्मण हूँ और मथुरा में मेरा जन्म हुआ है । वहाँ जब मेरी बाल अवस्था व्यतीत हुई और यौवन अवस्था का प्रारम्भ हुआ तब मैंने

www.tantrik-astrologer.in

वेद और शास्त्रों को भली प्रकार जाना पर एक वासना मुझे उदय हुई कि सबसे बड़ा सुख राजा भोगता है इसलिये मैं राजा होकर सुख भोगूँ कि क्या सुख है, क्योंकि और सुख मैंने भोगे हैं । फिर विचार किया कि राज्य का सुख तो सब भोग सकता हूँ जब राजा होऊँ पर राजा क्योंकर हो जाऊँ, राजा तब होता है जब तप करता है, इससे तप करूँ । हे साधो! ऐसे विचारकर मैं तप करने लगा हूँ । द्वादशवर्ष मुझे तप करते व्यतीत हुए हैं और आगे भी करूँगा । जब तक सप्तद्वीप का राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता मैं तप करूँगा । मैंने यही निश्चय धारा है कि या तो मेरा शरीर ही नष्ट होगा अथवा सप्तद्वीप का राज्य ही मुझको प्राप्त होगा । यही मेरा निश्चय है सो मैंने तुझको कहा, अब जहाँ जाने की तुझको इच्छा हो वहाँ जा । हे राम जी! इस प्रकार कहकर उस तपस्वी ने फिर नेत्र मूँदकर चित्त स्थित करने को समाधान किया और इन्द्रियों से विषयों को त्यागकर मन निश्चल किया । तब मैंने उससे कहा कि हे मुनीश्वर! मैं भी तेरे पास बैठा हूँ और जबतक तुझे वर की प्राप्ति नहीं होती तब तक मैं तेरी टहल करूँगा मुझे तेरे ऊपर दया आई है । हे रामजी! इस प्रकार उससे कहकर मैं उद्वेग से रहित षट्मास पर्यन्त उसके पास बैठा रहा और उसकी रक्षा करता रहा, जब धूप आवे तब छाया करूँ और आँधी और मेघ में अपने शरीर को कष्ट देके उसकी रक्षा करूँ । निदान छः महीने बीते तब सूर्य के मण्डल से एक पुरुष निकला जो बड़ा प्रकाश वान्-मानो विष्णु भगवान् का तेज था और वह हमारे निकट आया । उसको देखकर मैंने मन, वाणी और शरीर तीनों से उसकी पूजा की, तब उस पुरुष ने कहा, हे तपस्विन्! अब इस तप को त्याग और जो कुछ इच्छा है सो माँग । तेरी इच्छा तो यही है कि मैं सप्तद्वीपों का राजा होऊँ सो तू सप्तद्वीप पृथ्वी का राजा और जन्म होगा और सप्त सहस्त्रवर्ष पर्यन्त राज्य करेगा परन्तु और शरीर से होगा । हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य के मण्डल में अन्तर्धान हो गया जैसे समुद्र से तरंग निकल कर लय हो जावे तैसे ही वह लीन हुआ तब मैंने उससे कहा, हे ब्राह्मण! अब तू क्यों संकट सहता है? जिस निमित्त तू तप करता था सो वर सो तुझको प्राप्त हुआ-अब क्यों संकट सहता है । हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने कहा कि सूर्य के मण्डल से निकल कर एक बड़ा तेजवान् पुरुष तुझको वर दे गया है तब उसने नेत्र खोल दिये और मैंने उसके चरणों से रस्सी खोल दी । उसका तेज उस समय बड़ा हो गया और उसके शरीर की कान्ति प्रकाशवान् हुई । उस स्थान के निकट एक जल से रहित तालाब था सो उसके पुण्य से जल से पूर्ण हो गया और उसमें हम दोनों ने स्नान किया और मन्त्र पाठ करके संध्या की । और फिर हम दोनों वृक्ष के नीचे आये और जो वृक्ष फल से रहित थे वे उसकी पुण्यवासना से फल से पूर्ण हो गये निदान उन फलों को हमने भक्षण किया और तीन दिन पर्यन्त वहाँ रहकर फिर चले तब वह बोला, हे साधो! हम देश को चले हैं । जब तक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी हैं । फिर आगे एक वन आया जिसमें बहुत सुन्दर फूल फल और बूटे लगे हुए थे और उन पर भँवरे विचरते थे, जल के प्रवाह चलते थे और कोयल तोते, बगले आदि पक्षी संयुक्त वृक्ष हमने देखे । आगे फिर ताल वृक्ष बहुत देखे और कन्दरा के स्थान आये उन्हें हम लाँघते गये । हे रामजी! इसी प्रकार हम राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीनों गुणों के रचे स्थानों को लाँघते लाँघते मथुरानगर के मार्ग आये जो सूधा था पर उसको छोड़कर वह टेढ़े मार्ग को चला तब मैंने कहा, हे साधो! सूधेमार्ग को छोड़कर तू टेढ़े मार्ग से क्यों चलता है उसने कहा, हे साधो! चला आ इस मार्ग में गौरी भगवती का स्थान है उनका दर्शन करते चलें- और मेरे सात भाई जो गौरी के स्थान पर इसी कामना को लेकर तप करते थे उनकी भी सुधि लें । हे रामजी! जब हम उस मार्ग के सम्मुख चले तब आगे एक महाशून्य वन आया जो मानो शून्य आकाश था और महातमरूप था कि वहाँ वृक्ष, पशु पक्षी और मनुष्य

www.tantrik-astrologer.in

कोई दृष्टि न आता था । उस वन में पहुँचकर उसने मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! इस स्थान में मैं आगे षट् मास रहा हूँ और मेरे सात भाई और थे उन्होंने भी यही कामना धार करके देवी का तप आरम्भ किया था चलो देखें । वह महापवित्र स्थान है जिसके दर्शन किये से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । तब मैंने कहा चलिये पवित्र स्थान को अवश्य देखना चाहिये । हे रामजी! ऐसे विचार कर हम चले और जाते-जाते मरुस्थल की तपी हुई पृथ्वी पर जा निकले तब वह ब्राह्मण देखकर गिर पड़ा और कहने लगा कि हा कष्ट-कष्ट कहाँ आन पड़े! तब तो मुझे भी भ्रम उदय हुआ कि यह क्या हुआ । निदान वह फिर उठा और दोनों आगे गये तो एक वृक्ष हमको दृष्टि आया कि उसके नीचे एक तपस्वी ध्यान में स्थित बैठा था । हम उसके निकट गये और कहा, हे मुनीश्वर! जाग जाग । जब हमने बहुत बार कहा तब उसने नेत्र खोलकर हमको देखा और कहा तुम कौन हो? ऐसे कहकर फिर कहा बहुत आश्चर्य है कि यहाँ गौरी का स्थान था वह कहाँ गया और भी वृक्ष, बावलियाँ, कमल और सुन्दर स्थान और बड़े ऋषीश्वर और मुनीश्वरों के स्थान थे वह कहाँ गये? हे साधो!यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहो? तब हमने कहा, हे मुनीश्वर! हम नहीं जानते हम तो अभी आये हैं, इसको तो तुम्हीं जानो । तब उसने कहा बड़ा आश्चर्य है । हे रामजी! ऐसे कहकर वह फिर ध्यान में स्थित हो गया और व्यतीत वृत्तान्त का ध्यान करके देखने लगा । एक मुहूर्त पर्यन्त देखकर उसने फिर नेत्र खोलकर कहा कि बड़ा आश्चर्य हुआ है । तब हमने कहा, हे भगवन्! जो कुछ वृत्तान्त हुआ है सो कृपा करके हमसे कहो । तब तपस्वी ने कहा, हे साधो! एक समय बागीश्वरी भवानी इस वन में आई और उसने रहने का एक स्थान बनाया जिसमें वह शिव की अर्धशरीर गौरी रही । उस स्थान के निकट बहुत सुन्दर कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदम्बवृक्ष इत्यादिक बहुत वृक्ष लगाये, कमलफूल आदि सर्व ऋतुओं के फूल लगाये और बावलियाँ और बगीचे अति रमणीय रचे जिनपर कोयल, भँवरे, तोते, मोर, बगले आदि पक्षी विश्राम करने और शब्द करने लगे । उसके निकट ऋषीश्वरों, मुनीश्वरों और तपस्वियों की कुटियाँ इन्द्र के नन्दनवन सदृश थीं और निकट व गाँव की बस्ती बहुत हुई । हे साधो! यहाँ आठ ब्राह्मण तप के निमित्त आये थे और षट्मास यहाँ ही रहे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतागौर्युद्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः ||264 ||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्राह्मणकथा वर्णन

कदम्ब तपा बोले, हे साधो! मुझसे पूछो तो अपना वृत्तान्त मैं कहता हूँ ।मैं मालव देश का राजा था और चिरपर्यन्त खेद से रहित मैंने विषय भोग भोगे तब मुझको यह विचार उपजा कि यह संसार स्वप्नमात्र है और इसको सत्य जानकर स्थित् होना मूर्खता है । इतनी मेरी आयु बीती पर मैंने सुकृत कुछ न किया । यह विषय भोग आपातरमणीय और नाशवन्त हैं इनको मैं चिरपर्यन्त भोगता रहा हूँ और मुझको शान्ति न प्राप्त हुई-तृष्णा बढ़ती गई- इससे वही उपाय करूँ जिससे मुझको शान्ति हो और फिर कदाचित् दुःखी न होऊँ । हे साधो! जब यह विचार मुझको उदय हुआ तब मैंने वैराग्य करके राज्य की लक्ष्मी त्याग की और ऋषि और मुनियों के स्थान देखता इस कदम्बवृक्ष के नीचे आया । यहाँ आठ भाई ब्राह्मण थे उनमें से एक तो इसी पर्वत पर तप करने लगा था, दूसरा स्वामिकार्तिक के पर्वत पर तप करने गया, तीसरा बनारस में तप करने लगा और चौथा हिमालय पर तप करने गया । चार भाई तो इस प्रकार चारों स्थानों को गये और चार भाई यहाँ तप करने लगे । उन सबकी यही कामना थी कि हम पृथ्वी के सातों द्वीपों के राजा हों । हे साधो! इसको तो सूर्य ने वर दिया है और बाकी जो सात थे उन्होंने वागीश्वरी भवानी के इष्ट करके तप किया जब वह प्रसन्न हुई और बोली कि वर माँगो तब उन्होंने कहा कि हम सप्तद्वीप पृथ्वी के राजा हों । निदान उन सातों ने एक ही वर माँगा और उनको वर देकर परमेश्वरी अन्तर्धान हो गई । उन्होंने यह भी वर माँगा था कि यहाँ के वासियों का स्थान भी हमारे पास हो । हे साधो इस वर को पाकर वे वहाँ से चले और अपने गृह गये और वागीश्वरी वहाँ बारह वर्ष पर्यन्त रहकर फिर उनकी मर्यादा थापने के निमित्त यहाँ से अन्तर्धान हो गई और यहाँ के वासी भी सब जाते रहे । बागीश्वरी के जाने से यह स्थान शून्य हो गया । एक यह कदम्ब का वृक्ष रह गया है और मैं ध्यान में स्थित रहा हूँ । यह कदम्ब का वृक्ष वागीश्वरी ने अपने हाथ से लगाया था इस कारण यह नष्ट नहीं हुआ जर्जरीभाव भी नहीं हुआ । हे साधो! और सब जीव यहाँ आकर अदृष्ट हो गये इस कारण सब शुभ आचार न रहे । उन आठों भाइयों में सात आगे गये हैं और एक यहाँ बैठा है इसको भी घर जाना है, वहाँ सब इकट्ठे होंगे । जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरी में एकत्र हों । हे साधो! जब वे गृह से तप करने के निमित्त निकले तब उनकी स्त्रियों ने विचार किया कि हमारे भर्ता तो तप करने गये हैं हम भी जाकर तप करें इसलिये उन आठों ने तप आरम्भ किया और सौ सौ चान्द्रायण व्रत किये तब उनका शरीर जैसे बसन्त ऋतु की मन्जरी जेठ आषाढ़ में कृश हो जाती है तैसे ही हो गया । एक भर्ता का वियोग,दूसरे तप से वे कृश हो गई तब पार्वती वागीश्वरी प्रसन्न हुईं और बोलीं कि कुछ वर माँगो । जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होकर बोलता है तैसे ही वे प्रसन्न होके बोलीं , हे देवताओं की ईश्वरी! हम यह वर माँगती हैं कि हमारे भर्ता अमर हों और जैसे तेरा और शिव का संयोग है तैसे ही हमारा उनका हो । तब भवानी ने कहा, हे सुभद्रे! इस शरीर से तो कोई अमर नहीं होता । आदि जो सृष्टि हुई है उसमें नेति हुई कि शरीर से कोई अमर न रहेगा और जितना कुछ जगत् देखती हो वह सब नाशरूप हैं, कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता इसलिये और कुछ वर माँगो । तब ब्राह्म णियों ने कहा, हे देवि! भला जो हमारे भर्ता मरें तो उनके जीव हमारे गृह में रहें और उनकी संवित् बाहर न जावे तब वागीश्वरी ने कहा, ऐसे ही होगा कि उनके जीव तुम्हारे ही घर में रहेंगे और उनको जो लोकान्तर भासेगा उसके साथ ही तुम भी उनकी स्त्री होकर स्थित होगी । ऐसे कहकर वागीश्वरी अन्तर्धान हो गई । कुन्ददन्त बोले, हे रामजी! इस प्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ तब मैने कहा, हे मुनीश्वर! यह तो

www.tantrik-astrologer.in

तुमने बड़ी आश्चर्य कथा सुनाई कि आठों भाइयों ने एक ही वर पाया । उनको एक पृथ्वी में सातों द्वीपों का राज्य क्योंकर प्राप्त होगा । हे रामजी! जब इस प्रकार उससे मैंने पूछा, तब कदम्बतपा ने कहा, हे साधो! यह क्या आश्चर्य है और आश्चर्य सुनो । हे ब्राह्मण! जब यह आठों भाई तप के लिये घर से निकले थे तब इनके पिता माता ने भी विचार किया कि हमारे पुत्र तो तप करने गये हैं इसलिये हम भी उनके निमित्त जाकर तप करें और उनकी स्त्रियों को अपने साथ लेकर तीर्थ और ठाकुर द्वारे दिखाते फिरें । निदान उन्होंने भी बैठकर तप किया और कुछ चान्द्रायण व्रत करके देवी को प्रसन्न किया । देवी से वर लेकर जब वे अपने घर को आने लगे तब एक स्थान में दुर्वासा ऋषीश्वर बैठा था, जिसके दुर्बल अंग और विभूति लगी थी और जटा खुली हुई थी । उसको देखकर वे पास ही चले गये पर उसे नमस्कार न किया तब उसने कहा, हे ब्राह्मण! तुम क्यों दुष्ट स्वभाव से हमारे पास से चले गये और हमको नमस्कार भी न किया? अब तुम्हारा वर निवृत्त होगा । जो वर तुमको प्राप्त हुआ है सो न होगा उसके विपरीत हो जावेगा । तब उन्होंने कहा, हे मुनीश्वर! यह वचन तुम कैसे कहते हो, हमारे ऊपर क्षमा करो । यह ऐसे ही कह रहे थे कि वह अन्तर्धान हो गया और ब्राह्मण अपने गृह में आये और शोकवान् हुए । हे ब्राह्मण! देख जबतक आत्मबोध से शून्य है तबतक अनेक दुःख उपजेंगे, कई प्रकार के आश्चर्य भासेंगे और सन्देह दूर न होवेगा । जब आत्मबोध होगा तब कोई आश्चर्य न भासेगा । हे ब्राह्मण! यह सब चिदाकाश में मायामात्र ही रचना बनता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणकथावर्णनं नाम द्विशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्गः ।।265।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्राह्मणभविष्यत् वर्णन

कुन्ददन्त ने कहा, हे भगवन्! मैं यह सुनकर आश्चर्यवान् हुआ हूँ और मुझे एक संशय उत्पन्न हुआ है सो निवृत्त कीजिये? तुमने कहा कि एक द्वीप में आठों इकट्ठे सप्त द्वीप के राजा होंगे पर सातों द्वीप तो एक ही हैं और राज्य करनेवाले आठ हैं, यह कैसे राज्य करेंगे और इन्होंने वर और शाप दोनों पाये हैं यह इकट्ठे होंगे? जैसे धूप और छाया और दिन और रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं, तैसे ही वर और शाप एक होने कठिन हैं । कदम्बतपा बोले, हे साधो! जो कुछ इनकी भविष्यत् होगी सो मैं कहता हूँ जब कुछ काल गृहस्थी में व्यतीत होगा तब उनके शरीर छूट जावेंगे और इनको कुटुम्बी जलावेंगे । इनकी पुर्यष्टका अनुभव से मिली हुई है इस कारण एक मुहूर्तपर्यन्त इनका जड़ीभूत सुषुप्ति होगी और उसके अनन्तर चैतन्यता फुर आवेगी । तब शंख, चक्र गदा, पद्म सहित चतुर्भुज विष्णु का रूप धार के वर आवेंगे और त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान सदाशिव का रूप धारणकर शाप आवेंगे, तब वर कहेंगे कि हे शाप! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है? जैसे एक ऋतु के समय दूसरी नहीं आती,तैसे ही तुम न आवो । तब शाप कहेंगे, हे वरो! तुम क्यों आये हो अब तो हमारा समय है? जैसे एक ऋतु के होते दूसरी का आना नहीं बनता, तैसे ही तुम्हारा आना नहीं बनता तब वर कहेंगे हे शाप! तुम्हारा कर्ता ऋषि मनुष्य है और हमारा कर्ता देवता है । मनुष्य से देवता पूजने योग्य हैं, क्योंकि बड़े हैं, इससे तुम जावो । जब इस प्रकार वर कहेंगे, तब शाप क्रोधवान् होंगे और मारने के निमित्त त्रिशूल हाथ में उठावेंगे, तब वर कहेंगे, हे शाप! यदि तुम और हम लड़ेंगे तो पीछे किसी बड़े न्यायकर्ता के पास जावेंगे जो हमारा न्याय चुका देगा इससे प्रथम ही क्यों न जावें? तब शाप कहेंगे हे वर! जो कोई युक्तिसहित वचन कहता है उसको सब कोई मानते हैं, तुमने भला कहा है चलिये । ऐसे चर्चा करके दोनों ब्रह्मपुरी में जावेंगे और ब्रह्माजी को प्रणाम करेंगे और सब वृत्तान्त कहकर कहेंगे, हे देव! हमारा न्याय करों कि उनको वर स्पर्श करे अथवा शाप स्पर्श करे? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो! जिसका अभ्यास उनके भीतर दृढ़ हो वह प्रवेश करे तब वर के स्थान शाप जाकर ढूँढ़ेंगे और शाप के स्थान वर जाय ढूँढ़ेंगे और ढूँढ़कर शाप आय के कहेंगे, हे स्वामिन्! हमारी हानि हुई और वर की जय हुई है क्योंकि उनके भीतर वर ही स्थित है । जिसका अभ्यास हृदय में स्थित है उसी की जय होती है सो तो इनके भीतर बज्रसार की नाईं वर स्थित है । हे स्वामिन! हमारा आधिभौतिक शरीर कोई नहीं, हम तो संकल्परूप हैं । जिस संकल्प की दृढ़ता होती है वही उदय होता है और का कर्त्ता भी ज्ञानमात्र होता है, वर को लेता भी वही ज्ञानरूप है और वर को ग्रहण करता जानता है कि यह हमारा स्वामी है उस संकल्प से वर का कर्त्ता देवता जानता कि मैंने वर दिया है और ग्रहण करने वाला जानता है कि मैंने वर लिया है । हे ईश्वर! उसका जो वररूप संकल्प है सो उसके निश्चय में दृढ़ हो जाता है । जिस संकल्प की संवित् से एकता होती है वही प्रकट होता है । इसी प्रकार शाप भी है परन्तु न कोई वर है, न शाप है दोनों संकल्परूप हैं जैसा संकल्प अनुभव आकाश में दृढ़ होता है वही भासता है । वर देनेवाला भी अनुभवसत्ता है और लेनेवाला भी आत्मसत्ता है । वही सत्ता वररूप होकर स्थित होती है और वही सत्ता शापरूप होकर स्थित होती है । जिस संकल्प की दृढ़ता होती है उसी का अनुभव होता हैं । हे स्वामिन! यह तुमसे सुना हुआ हम कहते हैं कि इसको कोई बाहर का कर्म फलदायक नहीं होता जो कुछ भीतर सार होता है वही फल होता है इनके भीतर तो वर का संकल्प दृढ़ है और हमारा नहीं है हमारा तुमको नमस्कार है- अब हम जाते हैं । हे कुन्ददन्त! इस प्रकार शाप आधिभौतिक

www.tantrik-astrologer.in

शरीर त्यागकर अन्तवाहक शरीर से अन्तर्धान हो जावेंगे । जैसे आकाश में भ्रम से तरुवरे भासें और सम्यक्ज्ञान से अन्तर्धान हो जावें, तैसे ही शाप अन्तर्धान हो जावेंगे तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे वर! तुम शीघ्र ही उनके पास जावो और वह वर और दूसरा वर जो उनकी स्त्रियों ने लिया था कि उनकी पुर्यष्टका अन्तःपुर में रहे । फिर पूछेंगे, हे भगवन्! हमको क्या आज्ञा है हमको तो उनको उसी मन्दिर में रखना है और उनको सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य भी भोगना है और दिग्विजय करना है । यह कैसे होगा? तब ब्रह्मा कहेंगे हे साधो! यह क्या है? जो उन्हें सप्त द्वीप की पृथ्वी का राज्य करना है तो उनका तुम्हारे साथ विरोध कुछ नहीं । तुमको उसी मन्दिर में उनकी पुर्यष्टका रखनी है और वहीं राज्य भुगावना है इसलिये जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है सो करना । कुन्ददन्त ने पूछा, हे भगवन्! इससे तो हमको बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि उसी मन्दिर में आठों भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे? इतनी पृथ्वी उस मन्दर में क्योंकर समावेगी यही आश्चर्य है? जैसे कमल के फूल की कली में कोई कहे कि हाथी शयन करे वा हाथियों की पंक्ति है सो आश्चर्य है, तैसे ही यह आश्चर्य है । ब्राह्मण बोले, हे साधो! ब्रह्मरूपी आकाश है उसके अणु का सूक्ष्म अणु है उसमें जो स्वप्ना फुरा है सो हमारा जगत् है । यदि स्वप्ने में यह सृष्टि समा रही है तो मन्दिर में समाना क्या आश्चर्य है? हे साधो! यह सब जगत् स्वप्नमात्र है और अहंत्वमादिक सब जगत् स्वप्ननिद्रा में फुरता है आत्मसत्ता सदा अद्वैत परमशान्त और अनन्त है और उसमें जगत् आभासमात्र है । जैसे स्वप्ने में अपना अनुभव ही सूक्ष्म से सूक्ष्म होता है और उसमें त्रिलोकी भासि आती है । यदि सूक्ष्म संवित् में त्रिलोकी भासि आती है तो मन्दिर में भासना क्या आश्चर्य है । हे साधो! जब यह पुरुष मर जाता है तब इसका सूक्ष्म पुर्यष्टका जड़ हो जाती है और उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है । तुम देखो कि यदि सूक्ष्म ही में भासि आई और जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बन जाती है तो मन्दिर में होने का क्या आश्चर्य है? हे साधो! यह सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मा में स्थित है और उसका किञ्चन इस प्रकार ही भासता है । अब तुम जावो उनको राज्य भुगावो । हे कुन्ददन्त! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहेंगे तब वर नमस्कार करके आधिभौतिक शरीर त्याग देंगे और अन्तवाहक शरीर से उनके हृदय में स्थित होंगे । जैसे एक शत्रु को दूर करके दूसरा स्थित हो तैसे ही शाप को दूर करके उनके हृदय में वर आन स्थित हुए और उनको त्रिलोकी भासने लगी और पुर्यष्टका को अन्तः पुर में वर ने रोक छोड़ा । जैसे बाँध जल को रोकता है तैसे ही उनकी पुर्यष्टका को वर ने रोका । हे कुन्ददन्त! इस प्रकार उनको अपने अन्तःपुर में सृष्टि भासी और उन्होंने जाना कि हम सातों द्वीप के राजा हुए हैं । इस प्रकार वे आठों उस अन्तःपुर में सातों द्वीप पृथ्वी के राजा हुए परन्तु परस्पर अज्ञात रहे । एक सप्तद्वीप का राजा हुआ और जम्बूद्वीप में जो उज्जैन नगर है उसमे उसकी राजधानी हुई । दूसरा कुशद्वीप में रहने लगा, तीसरा क्रौंच मे रहने लगा, चौथा शाकद्वीप का राजा हुआ और उससे हरकारे कहने लगे कि पाताल के नाग बड़े दुष्ट हैं उनको किसी प्रकार जीतो । तब वह समुद्र के मार्ग से पाताल में नागों को जीतने जावेगा और एक द्वीप में अपनी स्त्री से शान्त हो जावेगा । पाँचवाँ शाल्मलिद्वीप में स्थित होगा जहाँ बड़ी प्रकाशसंयुक्त स्वर्ण की पृथ्वी है । वहाँ एक पर्वत होगा और उसके ऊपर एक ताल होगा जिसमें वह विद्याधरों से लीला करता फिरेगा । और दिग्विजय करके आवेगा । उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसी पीड़ा से रहित होगी । छठा गोमेदक नाम द्वीप में होगा और उसका युद्ध पुष्करद्वीपवाले से होगा । सातवाँ पुष्करद्वीप का राजा होगा जो गोमेदकवाले राजा से युद्ध करेगा और आठवाँ लोकालोक पर्वत का राजा होगा हे कुन्ददन्त! इस प्रकार वे अपने अन्तःपुर में सृष्टि देखेंगे और राज्य भोगेंगे परन्तु परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी । सबकी राजधानी भी मैंने तुझसे कही

www.tantrik-astrologer.in

कि एक की जम्बूद्वीप के उज्जैन नगर में, दूसरे की कुशद्वीप में, तीसरे की क्रौंचद्वीप में, चौथे की शाकद्वीप में, पाँचवें की शाल्मलिद्वीप में, छठे की गोमेदकद्वीप में सातवें की पुष्करद्वीप में और आठवें की लोकालोक पर्वत की स्वर्णमय पृथ्वी में होगी । हे साधो । इस प्रकार उनकी भविष्यत् होगी सो मैंने सब तुमसे कही । जैसा हृदय में निश्चय होता है तैसा ही फल होता है । बाहर कैसी ही क्रिया करो और भीतर सत्ता नहीं तो वह फलदायक नहीं होती है । जैसे नट स्वाँग बनाकर चेष्टा करता है परन्तु उसके भीतर उसका सद्भाव नहीं होता इससे वह फलदायक नहीं होती । हे साधो! जैसा हृदय में निश्चय होता है वही वरदायक होता है, इसलिये परमार्थ का निश्चय करना योग्य है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणभविष्यत् वर्णनन्नामद्विशताधिक षट्षष्टितमस्सर्गः ||266||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

कुन्ददन्त बोले, हे मुनीश्वर! मुझको बड़ा संशय हुआ है कि उसी अन्तःपुर में अपने- अपने द्वीपों का राज्य वे क्योंकर करेंगे? कदम्ब तपा बोले, हे साधो! यह सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है सो कुछ बना नहीं, शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थित है उनको जो अन्तःपुर में अपनी-अपनी सृष्टि भासेगी सो क्या रूप होगी? उनका जो अपना अनुभव है वही सृष्टिरूप हो भासेगा, आप ही सृष्टि रूप और आप ही राजा होंगे । यह जो कुछ जगत् तुझको भासता है सो भी परब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं । जैसे समुद्र में तरंग स्वाभाविक फुरते हैं सो जल ही रूप हैं और लीन होते हैं तो भी जल ही रूप हैं, जल से भिन्न नहीं न कुछ उपजता है, न मिटता है, तैसे ही ब्रह्म में जगत् न उपजता है और न लीन होता है परब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं इससे वे ब्राह्मण भी अजरूप अपने आपको फुरने से जगत्ूरूप देखेंगे । हे साधो! जब सुषुप्ति होती तब अद्वैत अपना ही अनुभव होता है और फिर उसमें स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है पर वही सुषुप्तिरूप है, तैसे ही परम सुषुप्तिरूप आत्मा है जहाँ सुषुप्ति भी लीन हो जाती है और उसमें यह जगत् फुरता है सो वही रूप है । आधारआधेय से रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । हे साधो! जैसे एक ही मन्दिर में बहुत पुरुष शयन करें तो उनको अपने-अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, तैसे ही उनको अपनी-अपनी सृष्टि भासेगी तो इसमें क्या आश्चर्य है? जो कुछ जगत् भासता है सो ब्रह्म में है और ब्रह्मरूप ही अपने आपमें स्थित है । कुन्ददन्त बोले हे भगवन्! आत्मसत्ता तो एक और केवल है बल्कि उसको एक भी नहीं कह सकते और परम शान्तरूप, शिवपद और अद्वैतरूप है तो नाना प्रकार क्यों भासती है? यह तो स्वभावसिद्ध है सो नानात्व होकर वास्तव क्यों भासती है? कदम्ब तपा बोले, हे साधो! सर्वशान्तरूप और चैतन्य आकाश है और नाना प्रकार की जो भासती है सो और कोई नहीं आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासती है सो कुछ नहीं बनी अपना अनुभव ही सृष्टिरूप हो भासता है, तैसे ही यह जगत् अनुभवरूप है । हे साधो! सृष्टि के आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें जो जगत् भासि आया सो भी तुम वही रूप जानो । जैसे समुद्द ही तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है । जैसे कोई थम्भे से रहित स्थान में सोया हो उसको बहुत थम्भोंसंयुक्त मन्दिर भासि आवे तो वहाँ बना तो कुछ नहीं अनुभव आकाश ही थम्भरूप हो भासता है, तैसे ही जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो अपना अनुभवरूप जानो । जैसे आकाश में शून्यता, अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता है, तैसे ही आत्मा में जगत् है । चाहे कोई जगत् कहो अथवा ब्रह्म कहो पर ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । जैसे वृक्ष और तरु एक ही वस्तु है, तैसे ही ब्रह्म और जगत् एक ही वस्तु के दो नाम हैं ।जगत्, इन्द्रियों और मन से अतीत आत्मा को जानो और जो इन तीनों का विषय है सो भी आत्मा को जानो दूसरी वस्तु कुछ नहीं । नानारूप जो दृष्टि आता है सो नानात्व नहीं हुआ दूसरा नहीं भासता है । जैसे स्वप्न में बड़े आरम्भ दृष्टि आते हैं और सेना और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु कुछ हुए नहीं, तैसे ही यह जगत् नाना प्रकार भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं सर्वचिदाकाशरूप है । जैसे एक निद्रा की दो वृत्ति हैं -एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्तिरूप-स्वप्ने में नानात्व भासती है और सुषुप्ति में एक सत्ता होती है, तैसे ही चित्त संवित् के फुरने में नानात्व भासता है और न फुरने में एक है । हे साधो! वह तो सर्वदाकाल में एकरूप है परन्तु प्रमाद से भेद भासता है । जैसे स्वप्न की सृष्टि अपना ही अनुभवरूप है परन्तु प्रमाद से भिन्न भिन्न भासती है, तैसे ही यह जगत् है । हमको तो सर्वदाकाल वही भासता है । जैसे पत्र, फूल, फल

www.tantrik-astrologer.in

और टहनी एक ही वृक्ष के नाम हैं, जो वृक्ष का ज्ञाता है उसको सब वृक्षरूप ही भासता है, तैसे ही सर्वनामरूप से हमको आत्मा ही भासता है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता । आदि फुरने में जैसे निश्चय हुआ है सो और निश्चय पर्यन्त तैसे ही रहता है यह सब विश्व संकल्परूप है और संकल्प का अधिष्ठान ब्रह्म है-ब्रह्म ही संकल्परूप होकर भासता है । संकल्प से जगत् भासता है सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं- एकही वस्तु के दो नाम हैं । जैसे वृक्ष और तरु दोनों एक वस्तु के नाम हैं, तैसे ही ब्रह्म और जगत् दोनों एक चैतन्य के नाम हैं । हे साधो! जो वाणी से अकथ है उसको ब्रह्म जानो और जो शब्द वाणी में आता है उसको भी तुम ब्रह्म जानो-ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जो ज्ञानवान् है उसको सब ब्रह्म ही भासता है पर अज्ञानी को नानात्व है । जब अध्यात्म अभ्यास करोगे तब सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासेगा-इसका नाम बोध है। हे साधो! नाना प्रकार होकर जगत् दिखाई देता है तो भी नानात्व कुछ नहीं । जैसे समुद्र, में द्रवता से नाना प्रकार के तरंग, बुद्बुदे और चक्रदृष्टि आते हैं परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही सर्व पदार्थ जो दृष्टि आते हैं सो सब आत्मरूप हैं और जितने जीव बोलते दृष्टि आते हैं सो भी महा मौनरूप हैं कुछ बने नहीं । चित्त के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु आत्मा से भिन्न कुछ नहीं-वही चिदाकाश ज्यों का त्यों स्थित है और जो कुछ आत्मा से भिन्न विद्यमान भासता है उसको अविद्यमान जानो । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि जितना जगत् भासता है सो सब स्वप्ने का विलास है जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसे ही भ्रमदृष्टि से आत्मा में जगत् भासता है-कुछ बना नहीं । जैसे सुषुप्ति में पुरुष सोया होता है उसको फुरना नहीं फुरता और फिर उसी सुषुप्ति से स्वप्ने की सृष्टि फुर आती है सो बनी कुछ नहीं वही सुषुप्तिरूप है पर स्वप्ने में स्थित पुरुष को सत्य भासता है और जो अनुभव में जागा है उसको सुषुप्ति रूप है तैसे ही इस जगत् को जानो । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, जब जागकर देखोगे तब सब चिन्मात्र ही भासेगा जो शान्तरूप, अनन्त और सदा अपने आपमें स्थित है । उसमें जो जगत् भासता है सो सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं, सत्य इस कारण से नहीं कि आभासमात्र और नाशवन्त है और असत्य इस कारण नहीं कि प्रकट भासता है और वास्तव में आत्मसत्ता से भिन्न नहीं । भाव, अभाव, सुख, दुःख, उदय, अस्त वही आत्मसत्ता इस प्रकार हो भासती है जैसे एक ही निद्रा के स्वप्ना और सुषुप्ति दो पर्याय हैं, तैसे ही जगत् और आत्मा दोनों एक ही सत्ता के पर्याय हैं । जैसे एक ही वायु स्पन्द और निस्पन्द दो रूप होती है, तैसे ही आत्मसत्ता के दो दो रूप हैं, जब संवेदन नहीं फुरता तब अनिर्वचनीय होती है और जब अहंभाव को लेकर फुरती है तब संकल्परूपी सृष्टि बन जाती है । आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तत्त्व, नक्षत्र, चक्र, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, जल का नीचे चलना, अग्नि का ऊर्ध्व चलना, तारागणों का प्रकाशवान होना, पृथ्वी स्थित भूत आदि जो स्थावर-जंगमरूप सृष्टि है सो अपने स्वभाव सहित भासि आती है और शुभ-अशुभ कर्म होते हैं उनमें सुख- दुःख फल की नेति होती है परन्तु आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासता है । जैसे तू मनोराज से स्वप्ननगर ले और उसमें अनेक प्रकार की चेष्टा करे सो जबतक संकल्प होता है तबतक वही सृष्टि स्थित होती है और जब संकल्प मिट गया तब सृष्टि लय हो जाती है तो और वस्तु कुछ न हुई तेरा अनुभव ही सृष्टि रूप होकर स्थित हुआ, तैसे ही यह जगत अनुभवरूप है और कुछ नहीं । कुन्ददन्त ने पूछा, हे तपस्विन! संकल्प तो पूर्वस्मृति को लेकर फुरता है यह संशय मेरा निवृत्त करो? कदम्बतपा बोले, हे साधो! यह सम्पूर्ण सृष्टि किसी संस्कार से नहीं उत्पन्न हुई भ्रम से भासती है जैसे स्वप्ने में मनुष्य मृतक हुआ जानता है सो उसको पूर्व के संस्कार की स्मृति तो नहीं होती अपूर्व ही भासि आती है, तैसे ही ये पदार्थ जो तुझको

www.tantrikastrologer.in

भासते हैं सो अपूर्व हैं किसी स्मृति से नहीं हुए । स्मृति और अनुभव तो जगत् ही में उत्पन्न हुए हैं पर जब जगत् का फुरना न था तब स्मृति और अनुभव भी न थे । जब जगत् फुरा तब ये भी फुरे हैं इससे सम्पूर्ण जगत् अपूर्व है और भ्रम से भासता है । जैसे स्वप्ने में मुआ किसी कुल में अपना जन्म देखे और उसको ऐसे भासे कि कुल चिरकाल से चला आता है पर जब जाग उठे तब पूर्व किसको कहे और स्मृति किसकी करे, न कहीं जन्म रहता है और न कुल रहता है, तैसे ही ज्ञाननवान् को यह जगत् आकाशरूप भासता है तो मैं तुझको पूर्व की स्मृति कहूँ? हे ब्राह्मण! और कुछ बना नहीं आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों स्थित है । जिससे वह सर्व जगत् हुआ है, जिसमें यह सर्व है और जो सर्व है सो सर्वात्मा है । जो वही है तो दूसरा किसको कहूँ? इससे ऐसे जानकर तुम विचारो तब सर्व दुःख तुम्हारे नष्ट होंगे । हे साधो! कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं । कर्त्ता कर्म के करनेवाले को कहते हैं, कर्म जो है सो करने की संज्ञा है, करण क्रिया का साधक है, सम्प्रदान जिस निमित्त है अपादान जिस निमित्त है, अपादान जिससे लय कीजिये और अधिकरण जिसमें कीजिये हे साधो! ये छः कारण ब्रह्मरूप हैं । विश्व का कर्त्ता भी ब्रह्म हैं, विश्व का साधक भी ब्रह्म है, विश्वकर्मा भी ब्रह्म हैं, विश्व का साधक भी ब्रह्म है, जिसके निमित्त यह विश्व है सो भी ब्रह्म है और जिसमें यह विश्व होता है सो भी ब्रह्म है । हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है उसको नमस्कार है ।हे साधो!उस सर्वात्मा को ऐसे जानना ही उसकी परम पूजा है । ऐसे ही तुम भी पूजन करो हे साधो! अब तुम जावो और अपने वाञ्छित में विचरो । तुम्हारे बान्धव तुमको चितवते होंगे उनके पास जावो जैसे कमल के पास भँवरे जाते हैं-और हम भी समाधि में स्थित होते होते हैं । जो कुछ गुह्य बात है सो भी मैं कहता हूँ । जिससे कोई सुख पाता है वही करता है । मुझको जगत् दुःखदायक दृष्टि आया है इस कारण मैं समाधि में लगता हूँ । हे साधो! यद्यपि मुझे सब अवस्थ तुल्य हैं तो भी चित्त की वृत्ति जो संसार के कष्ट से दुःखित होकर आत्मपद में स्थित हुई है उस स्थिति के सुख के संस्कार से फिर उसी ओर धावती है अब तुम जावो मैं समाधि में स्थित होता हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिक सप्तषष्टितमस्सर्गः ||267||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

कुन्ददन्तविश्रामप्राप्ति

कुन्ददन्त बोले हे रामजी! इस प्रकार कहकर वह फिर समाधि में लगा और इन्द्रियों और मन की क्रिया से रहित हुआ-मानो कागज पर मूर्ति लिखी हो । तब फिर हम उन्हें बहुत जगाते रहे और बड़े शब्द किये परन्तु वह न जागा । निदान हम वहाँ से चले और उस ब्राह्मण के घर आये तो असके घर में बड़ा उत्साह हुआ और समय पाकर क्रम से वे सातों भाई मर गये पर अष्टम मेरा मित्र जीता रहा वह भी कुछ दिन में मृतक हो गया- तब मैं बहुत शोकवान् हुआ कि मेरा प्रियतम भी मर गया अब मैं क्या करूँ । हे रामजी! तब मैंने विचार किया कि फिर मैं कदम्बतपा के पास जाऊँ तो मेरा दुःख नष्ट होगा । निदान मैं वहाँ गया और तीन मास पर्यन्त उसके पास रहा । उसको मैं जगाता रहा परन्तु वह न जागा पर जब तीन मास हो चुके तब वह जागा और मैंने उसको प्रणाम करके कहा, हे मुनीश्वर! वे तो अपने अपने राज्य को भोगने लगे और मैं अकेला कष्टवान् हूँ इससे मेरा दुःख तुम नष्ट करो-मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । कदम्बतपा बोले, हे साधो! मेरे उपदेश से तुमको स्वरूप का साक्षात्कार न होगा, क्योंकि तुझको अभ्यास नहीं है । अभ्यास बिना स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता इससे मेरा कहना भी व्यर्थ होगा मैं दुःख नष्ट होने का एक उपाय तुझसे कहता हूँ उससे तू मेरे समान दुःख से रहित होकर अनन्त आत्मा होगा । हे साधो! अयोध्यानगरी के राजा दशरथ के गृह में रामजी पुत्र हुए हैं जिनको वशिष्ठजी मोक्षोपाय उपदेश करेंगे और बड़ी सभा में कहेंगे वहाँ तू जा तो तुझको भी स्वरूप की प्राप्ति होगी- संशय मत कर । हे रामजी! जब इस प्रकार उस तपस्वी ने मुझको कहा, तब मैं वहाँ से चल कर तुम्हारे पास आया हूँ । जो कुछ तुमने पूछा था सो सब वृत्तान्त मैंने कहा और जो कुछ देखा सुना था वह भी कहा । रामजी बोले , हे वशिष्ठजी! जो वृत्तान्त मैंने उससे सुना था सो प्रभु के आगे कहा और कुन्ददन्त भी तुम्हारे पास बैठा है अब इससे पूछिये कि स्वरूप की प्राप्ति हुई अथवा नहीं हुई? बाल्मीकिजी बोले , हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी उसकी ओर कृपादृष्टि करके बोले हे ब्राह्मण! यह मोक्षोपाय जो मैंने सम्पूर्ण कहा है उसको सुनकर तूने क्या जाना? कुन्ददन्त बोले, हे सर्वसंशयों के निवृत्त करनेवाले! तुम्हारे वचनरूपी प्रकाश से मेरे अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश हुआ है जो, कुछ जानने योग्य पद है सो मैंने जाना है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया । अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआ हूँ और मुझको कोई कल्पना नहीं रही । मैं अनन्त आत्मा हूँ और नित्य शुद्ध, अच्युत, और परमानन्द स्वरूप हूँ- सर्व जगत् मेरा ही स्वरूप है । हे भगवन्! अन्तःपुर में इतनी सृष्टि के समा जाने का जो संशय था सो तुम्हारे वचनों से दूर हुआ और अब एक-एक राई में मुझको ब्रह्माण्ड भासते हैं और आत्मत्वभाव से दिखाई देते हैं । जैसे अनेक दर्पणों में अपना मुख ही भासता है । हे भगवन्! तुम्हारे वचन मैंने आदि से लेकर अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण सुने हैं जो परम पावन, सार के परमसार और आत्मबोध के कारण है । उनके विचारे से मेरी भ्रान्ति निवृत्त हो गई है और अब मैं अपने आप में स्थित हुआ हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुन्ददन्तविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः ||268||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

ब्रह्मप्रतिपादन

बाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार कुन्ददन्त ने कहा तब वशिष्ठजी ने कहा तब वशिष्ठजी सुनकर परम उचित वचन परमपदपावन का कारण फिर कहने लगे कि हे रामजी! अब कुन्ददन्त ने आत्मअनुभव में विश्राम पाया है इसको अब हस्तामलकवत् अपना आप अनुभवरूप जगत् भासता है आत्मा ही दृश्यरूप होकर भासता है और आत्मा ही द्रष्टारूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं । अपना अनुभव ही जगत्ृरूप हो भासता है सो अनुभव आकाश सम शान्तरूप, अनन्त और अखण्ड सदा ज्यों का त्यों है । हे साधो! वह नानारूप भासता है परन्तु अनाना है और सदा ज्यों का त्यों अचेत चिन्मात्र परमशून्य है जिससे शून्य हो जाता है और चेत दृश्यरूप फुरने से रहित है इसी कारण परमशून्य है, बोलता दृष्टि आता है परन्तु परम मौन है । हे रामजी उसमे जगत् कुछ बना नहीं, जैसे स्वप्ने में पहाड़ दृष्टि आते हैं सो न सत्य हैं और न असत्य है, तैसे ही यह जगत् सत्य असत्य से विलक्षण हैं, क्योंकि कुछ बना नहीं-जो कुछ भासता है सो आत्मा है जैसे रत्नों का प्रकाश चमत्कार होता है, तैसे ही आत्मा का प्रकाश जगत् है और जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप हो भासता है, तैसे ही ब्रह्म संवेदन से जगत्ृरूप हो भासता हे । आदि स्पन्द फुर आई है सो जगत्ृरूप होकर स्थित है और वह जैसे हुआ है तैसे हुआ है पर आत्मा कार्य कारणभाव से रहित है । जिसको प्रमाद है उसको यह कार्य-कारणभाव सहित भासता है उसको तैसा ही है पर जो सत्य जानकर पाप करते हैं उनके बड़े पाप उदय होते हैं और स्थावररूप होकर फिर जंगम मनुष्य होते हैं । हे रामजी! इस प्रकार यह ज्ञानसंवित् चैतसम्बन्धी होकर नाना प्रकार के रूप धारती है और प्रमाद से भिन्न-भिन्न भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ और नहीं होती सदा अखण्डरूप है । जबतक प्रमाद होता है तबतक जगत् का आदि और अन्त नहीं भासता और जब प्रमाद से जागता है तब सर्वकल्पना मिट जाती हैं । हे रामजी! यह सर्व जगत् जो भासता है सो कुछ बना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जब जाग्रत् अवस्था का अभाव होता है और सुषुप्ति आती है तो उसमें न शुभ की कल्पना रहती है और न अशुभ की कल्पना रहती है, उदय-अस्त की कल्पना से रहित केवल अद्वैतसत्ता रहती है और जब फिर उसमें चैतन्यता फुरती है तब फिर स्वप्ने की सृष्टि भासती है । कहीं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है जिसमें संवेदन फुरती भासती है सो जंगम कहाता है और जिसमें संवेदन फुरना नहीं भासता सो स्थावर कहाता है परन्तु और कुछ नहीं वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जंगमरूप हो भासती है, तैसे ही आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है । हे रामजी! सृष्टि के आदि परम सुषुप्तिसत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् भासि आया सो वही संवेदनरूप जगत् है और आत्मसत्ता में फुरी है वही रूप है भिन्न कुछ नहीं । जैसे शरीर के अंग हाथ, पाँव, नख केशादिक सब शरीररूप हैं तैसे ही परमात्मा के अंग हस्त पादादिक है रोम सृष्टि और नख केशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्म रूप है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप होती है और संकल्पपुर की रची सृष्टि संकल्परूप होती है, तैसे ही यह सृष्टि अनुभवरूप है और किसी कारण से नहीं उपजी-इससे ब्रह्म ही रूप है । ब्रह्म के सूक्ष्म अणु में सृष्टि फुरी है सो क्या रूप है । ब्रह्म ही सृष्टि है और सृष्टि ही ब्रह्म है-ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं परन्तु अज्ञाननिद्रा से भिन्न-भिन्न भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! निद्रा का कितना प्रमाण है और कितने काल पर्यन्त रहती है? सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसी फुरी है और कैसे स्थित है? अणु में उसकी क्यों संज्ञा है और अनन्त क्योंकर है? जो देवता असुरादिक रूप को चित्त प्राप्त हुआ है वह क्या है? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! अज्ञान निद्रा अपने काल में

www.tantrik-astrologer.in

तो अनादि है और नहीं जानी जाती कि कबकी हुई है और अन्त भी नहीं जाना जाता कि कबतक रहेगा। अज्ञान काल में तो इसका आदि अन्त प्रमाण कुछ नहीं भासता और बोध में इसका अत्यन्ता भाव दीखता है। चित्तसत्ता की जो अनन्तता पूछो तो वह तो अद्वैत चिन्मात्र आत्म समुद्र है और उसमें सूक्ष्मभाव अहमस्मि जो संवित् फुरती है उसका नाम चित्त है। उस चित्त में आगे जगत् होता है। शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन चित्त फुरता है उसमें जगत् है, वही चिद्सत्ता देवता, असुर और जंगमरूप हो भासती है और नाग, पिशाच, कीटादिक स्थावर-जंगमरूप हो भासती है। वास्तव में चैतन्यसत्ता ही है उससे भिन्न कुछ नहीं और सब चिदाकासरूप है फुरने से नाना प्रकार है। हे रामजी! परम शुद्ध चिद्अणु से मिलकर चित्त अनेक ब्रह्माण्ड धारता है और उस सूक्ष्म अणु में अनन्त ब्रह्माण्ड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं। जैसे एक पुरुष शयन करता है तो उसको स्वप्ने में अनेक जीव भासि आते हैं और उन जीवों में अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि फुरती है सो अनेक सृष्टि हो जाती है तैसे ही सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि फुरती है परन्तु आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं बना। जैसे सूर्य की किरणों में अनन्त सूक्ष्म त्रसरेणु होती हैं, तैसे ही परमात्मसूर्य के चिद्अणु सूक्ष्म हैं। इन त्रस रेणु से भी सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि अपनी-अपनी फुरती हैं। हे रामजी! जब तक चित्त फुरता रहता है तबतक सृष्टि का अन्त नहीं आता। असंख्य जगत् भ्रम आगे देखे हैं और असंख्य ही आगे देखेंगे। जब चित्त फुरने से रहित होता है तब जगत् कल्पना मिट जाती है। जैसे स्वप्न में सृष्टि भासती है और बड़े व्यवहार होते हैं पर जब जाग उठता है तब स्वप्ने की सृष्टि व्यवहार की कल्पना मिट जाती है और अद्वैत अपना आपही भासता है, तैसे ही चित्त के ठहरने से सब भ्रम मिट जाता है। हे रामजी! सूक्ष्म चिद्अणु की संज्ञा तब हुई है जब इसको चित्त का सम्बन्ध हुआ है जब चित्त को अपने स्वभाव में स्थित करोगे तब द्वैतकल्पना और सूक्ष्म स्थूल भाव मिट जावेंगे। इस की सूक्ष्म संज्ञा अविद्यकभाव से है जो इन्द्रियों का विषय नहीं है इससे अणुता है, सूक्ष्म अणु में भी व्यापार हुआ है इससे सूक्ष्म अणु कहता और अनन्तता इस कारण है कि सब को धार रहा है। हे रामजी! यह जगत् अभावमात्र है। जैसे मरुस्थल में जलाभास होता है, तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है। यह जगत् ही नहीं है तो इसका कारण किसे कहिये? आदि सृष्टि अकारण फुरी है और फिर उसमें कारण-कार्य भासने लगे हैं सो आभास की दृढ़ता से है। जैसे स्वप्ने में आदि सृष्टि अकारण बीज, वृक्ष, कुलाल, मिरट्टी और घट इकट्ठे फुर आते हैं। जब उस स्वप्ने की दृढ़ता हो जाती है तब कारण कार्य भासते हैं परन्तु जो सोया पड़ा है उसको दृढ़ भासते हैं, तैसे ही अज्ञानी को जगत् कार्य कारण दृढ़ भासता है और ज्ञानवान् को सब अपना आपही भासता है। जैसे स्वप्ने से जागे स्वप्ने की सृष्टि अपना आपही भासती है कि मैं ही था और कुछ न था, तैसे ही ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है पृथ्वी, अपू, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर-जंगम सर्व जगत् सब आकाशरूप हैं और संवेदन के फुरने से दृष्टि आते हैं वास्तव में भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! यह जगत् चित्त में स्थित है जैसे किसी पुरुष ने थम्भे में पुतलियाँ कल्पीं तो उन पुतलियाँ के दो रूप होते हैं एक शिल्पी के चित्त में फुरती हैं सो आकाशरूप हैं और एक थम्भे में कल्पी हैं सो थम्भरूप हैं पर शिल्पी के चित्त में नृत्य करती हैं। हे रामजी! और तो कुछ नहीं बना सब थम्भेरूप हैं और शिल्पी के चित्त में कल्पनामात्र हैं, तैसे ही तैसे ही चित्तरूपी शिल्पी की जगद्रूपी पुतलियाँ कल्पनामात्र हैं पर आत्मरूपी थम्भा ज्यों का त्यों है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे पट के ऊपर मूर्ति लिखी हो तो उस मूर्तिका रूप पट ही है-पट से भिन्न कुछ नहीं-वह पट ही मूर्तिरूप भासता है, तैसे ही यह जगत् आत्मा से भिन्न से भिन्न नहीं-आत्मा ही

www.tantrik-astrologer.in

जगत्रूप हो भासता है। आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं-जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, तैसे ही जगत् आकाशरूप है। जगत्रूप आधार है और उसमें ब्रह्म बसनेवाला है। ब्रह्मरूप आधार है और उसमें जगत् बसनेवाला है। हे रामजी! जितने समूह जगत् में विद्या और अविद्यारूप हैं सो संकल्प से रचित हैं और वास्तव में सब आत्मस्वरूप हैं। समता सत्ता और निर्विकारता आदि इनसे विपरीत अविद्यारूप सब एक ही रूप हैं, एक ही में फुरते हैं और एक ही रूप हैं। जैसे अनुभव रूप स्वप्न जगत् अनुभव में स्थित होता है सो सर्व आत्मरूप होता है तैसे ही यह जगत् सर्व ब्रह्मरूप है-ब्रह्म से भिन्न न कुछ वर की कल्पना है और न शाप की कल्पना है। ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपमें स्थित है उसमें न कारण है और न कार्य है। जैसे ताल, नदी और मेघ जल ही होते हैं, तैसे ही सब जगत् ब्रह्मरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वर और शाप के कर्त्ता परिच्छिन्न हैं और कारण बिना तो कार्य नहीं बनता तुम कैसे कहते हो कि कारण कार्य कोई नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता का किञ्चन जगत् होता है जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं, तैसे ही आत्मसत्ता में जगत् फुरते हैं और जैसे तरंग जलरूप होते हैं, तैसे ही जगत् आत्मरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। जैसे आदि परमात्मा से सृष्टि का फुरना हुआ है तैसे ही स्थित है अन्यथा नहीं होता सब जगत् संकल्प है। अनेक प्रकार की वासना संवेदन में फुरती हैं पर जिनको स्वरूप का विस्मरण हुआ है उनको यह जगत् सत्य रूप भासता है। जो उनको विचार उत्पन्न हो तो वही भासे है जिस काल में विचार उत्पन्न होता है और उसी काल में अज्ञाननिद्रा का अभाव होता है। हे रामजी! जब विचार अभ्यास करके मन तद्रूप होता है तब यथाभूत दर्शन होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपना आप ही भासता है, क्योंकि अपने आप में स्थित है। सबका अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसमें अहंप्रतीति होती है इस कारण अपने आप में सृष्टि भासती है। जैसे स्पन्द फुरते हैं, तैसे ही उनकी सिद्धि होती है, निरावरण दृष्टि होता है निरा वरण दृष्टि करके सर्व संकल्प सिद्ध होता है, क्योंकि यह जगत् सर्व आत्मा में संकल्प का रचा हुआ है- और उसमें इसको अहं प्रत्यक्ष हुई है। हे रामजी! जो यह संकल्प उठता है कि यह कार्य ऐसे हो तो वह तैसे ही होता है। हे रामजी! शुद्ध संवेदन में जैसा संकल्प होता है वही हो भासता है संकल्परूप ही है संकल्प से भिन्न नहीं। इस कारण वर और शाप का और कोई कारण नहीं, वर और शाप भी संकल्परूप हैं और उससे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे किसी समवायकारण से तो नहीं उत्पन्न हुए संकल्प ही से हुए हैं इससे सब अकारण रूप है। ब्रह्मरूपी समुद्र में तरंग उठते हैं तो कारण और कार्य मैं तुमसे क्या कहूँ? सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत और एक की कल्पना कुछ नहीं। हे रामजी! हमको सदा ब्रह्मसत्ता ही भासती है और कार्य कारण कोई नहीं भासता। जैसे स्वप्ने में किसी के घर में पुत्र हुआ और बड़े उत्साह को प्राप्त हुआ पर जब जाग्रत् का संस्कार चित्त में आया तब उसका पिता ही उपजा नहीं तो पुत्र कैसे कहिये? तब तो सब अपना आपही हो, न कोई कारण भासता है और न कार्य भासता है। जो स्वप्ने में सोया है उसको जैसे भासता है तैसे ही है। जैसे वर और शाप का आसरा संकल्प है और संकल्प ही वर और शाप हो भासता है और अकारण ही होता है। जिसको शुद्ध संवेदन से एकता हुई है वह निरावरण है और उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, तैसा ही सिद्ध होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एक ऐसे हैं कि जिनको आवारण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है- वर देखें अथवा शाप देवें-वैसे ही हो जाता है और स्वरूप का साक्षात्कार उनको नहीं हुआ पर शुभकर्म उनमें प्रत्यक्ष मिलते हैं तो शुभकर्म ही वर और शाप के कारण हुए, तुम कैसे कहते हो कि निरावरण पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है वही चित्धातु कहाती है। उस

www.tantrikastrologer.in

चित्तधातु में जो आभास फुरना है वही संवेदन कहाता है । वह संवेदन जब फुरता है तब जीव जानता है कि `मैं ब्रह्म हूँ', तो संवेदन ने ही आपको जगत् का पितामह जाना और उसी ने आगे मनोराज कल्पा तब पञ्चभूतों का ज्ञान हुआ कि शून्यरूप आकाश स्पन्दरूप, वायु, उष्णरूप अग्नि, द्रवतारूप जल और कठोररूप पृथ्वी है, फिर उसी से देश और काल की कल्पना हुई और स्थावर जंगम पदार्थ की कल्पना से वेद, शास्त्र, धर्म, अधर्म का फुरना हुआ जिससे यह निश्चय हुआ कि यह तपस्वी है और इसने तप किया है इसके कहे से वर पर स्वरूप के साक्षात्कार से रहित है तो भी इसका कहा हो यह तप का फूल है । आदि संकल्प ऐसे हुआ है तो वर और शाप का कर्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है जिससे आदि संकल्प फुरा है हे रामजी! वर और शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदन से फुरा है । और संवेदन आत्मा का आभास है तो मैं कारण और कार्य क्या कहूँ? और जगत् क्या कहूँ? आत्मा का आभास संवेदन ब्रह्मा है जिसने आगे संकल्पपुर सृष्टि रची है और हम तुम आदि सब उसके संकल्प में हैं । वह ब्रह्मा निराकार निराधार और निरालम्ब स्थित है कुछ आकार को नहीं प्राप्त हुए, इससे उसका विश्व भी वही रूप जानो । हे रामजी! जैसे उसका स्पन्द हुआ है तैसे ही स्थित है, अन्यथा नहीं होता जो वही विपर्यय करे तो हो और नहीं होता । अग्नि में उष्णता, वायु में स्पन्दता इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने अपने स्वभाव में स्थित हैं और हमको सब ब्रह्मरूप हैं । जैसे शरीर में हाड़ माँस से भिन्न नहीं होता तैसे ही हमको ब्रह्म से भिन्न नहीं भासता । जैसे घट में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं होता और काष्ठ की पुतली को काष्ठ से भिन्न चेष्टा नहीं होती तैसे ही जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं होता । हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो ब्रह्म ही है । ब्रह्म ही फुरने से नाना प्रकार जगत् हो भासता है । जैसे समुद्र से तरंग, बुद्बुदे, फेन हो हो भासता है, तैसे ही ब्रह्म संवेदन से जगत्रूप हो भासता है पर ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जैसे पर्वत से जल गिरता है सो कणके हो भासता है और जब गिरकर ठहर जाता है तब समुद्ररूप होता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं होता, तैसे ही जब चित्त फुरता है तब नाना प्रकार का जगत् हो भासता है और जब ठहर जाता है तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है पर ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं होता, ब्रह्म ही स्थावर जंगमरूप हो भासता है । जहाँ पुर्यष्टक का सम्बन्ध नहीं भासता सो अजंगम कहाता है और जहाँ पुर्यष्टका का सम्बन्ध होता है वह जंगमरूप भासता है परन्तु आत्मा में उभय तुल्य हैं । जैसे एक ही हाथ की अँगुली है जिसको उष्णता अथवा शीतलता का संयोग होता है सो फुरने लगती है और जिसको शीत उष्ण का संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती, तैसे ही जिस आकार को पुर्यष्टक का संयोग है सो फुरता है और चैतन्यता भासती है और जिसको पुर्यष्टका का नहीं होता उसमें जड़ता भासती है जड़ भी दो प्रकार के हैं-एक को पुर्यष्टका का संयोग है और जड़ है और दूसरे को पुर्यष्टका का संयोग नहीं और जड़ है । वृक्ष और पर्वतों की पुर्यष्टका का संयोग है परन्तु घनसुषुप्ति जड़ता में स्थित हैं इस कारण जड़ भासते हैं और मृतका पुर्यष्टका से रहित है इस कारण जड़ है परन्तु वास्तव में स्था वर, जंगम, इष्ट, अनिष्ट, वर, शाप, देश, काल, पदार्थ, सब ही ब्रह्मरूप है और ब्रह्मसत्ता ही ऐसे स्थित हुई है जैसे अपने अनुभव में संकल्प नगर नाना प्रकार का भासता है परन्तु संकल्परूप है-संकल्प से भिन्न कुछ नहीं और मृत्तिका की सेना अनेक प्रकार की होती है परन्तु मृत्तिकारूप है-मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही सर्व अर्थ के धारनेवाली चैतन्यधातु नाना प्रकार के आकार को प्राप्त होती है परन्तु चैतन्यता से भिन्न कुछ नहीं होती । हे रामजी! धातु उसको कहते हैं जो अर्थ को धारे । जितने पदार्थ तुमको भासते हैं सो सब अर्थरूप हैं और वस्तुरूप जो धातु है सो आत्मसत्ता है उसने दो अर्थ धारे हैं-एक स्वप्न अर्थ और दूसरा बोध अर्थ-स्वप्न

www.tantrikastrologer.in

अर्थ में तो नानात्व भासती है और बोध अर्थ में एक अद्वैत सत्ता भासती है । जैसे एक ही धातु मिलने और बिछुड़ने से दो अर्थ धारती है सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं परन्तु एक ही ने धारे हैं, तैसे ही स्वप्ने और बोध अर्थ इन दोनों को आत्मसत्ता ने धारा है जैसे तरंग और बुद्बुदे जलरूप हैं, तैसे ही जगत् ब्रह्मरूप है । जो ज्ञानवान् हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासता है और अज्ञानी को नानात्व भासता है । इससे तुम स्वभाव में निश्चय होकर देखो सब ब्रह्मरूप है-भिन्न कुछ नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनसप्ततितमस्सर्गः ||269||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जीवसंसार वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म ही है तो नेति क्या है और नाना प्रकार के पदार्थ क्यों भासते हैं । तुम कहते हो कि जगत् संकल्प से रचित है तो हे भगवन्! ये जो पदार्थ असंख्यरूप हैं कि उनकी संज्ञा की नहीं जाती और इन पदार्थों का स्वभाव एक-एक का अचलरूप होकर कैसे स्थित है? सर्व देवताओं में सूर्य का प्रकाश क्यों अधिक है और एक ही सूर्य में दिन और रात्रि छोटे छोटे बड़े क्यों होते हैं, यह विचित्रता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रसत्ता में अकस्मात् से जो आभास फुरा है उस आभास का नाम नेति है और सृष्टि भी आभासमात्र है किसी कारण करके नहीं उपजी । जिसके आश्रय आभास फुरता है वही वस्तु अधिष्ठान होती है, इससे जगत् सब ब्रह्मरूप है और चिन्मात्रसत्ता अपने आप स्थित है, न उदय होती है और न अस्त होती है वह परिणाम से रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है और उसमें न जाग्रत् है, न स्वप्ना है और न सुषुप्ति है, तीनों अवस्था आभासमात्र हैं पर चैतन्यसत्ता में इनसे द्वैत नहीं बना, यह तीनों इसी का स्वभाव प्रकाशरूप है-इससे भिन्न कुछ नहीं । जैसे आकाश और शून्यता, वायु और निस्स्पन्द, अग्नि और उष्णता और कर्पूर और सुगन्ध में भेद नहीं , तैसे ही जाग्रदादिक जगत् और ब्रह्म में भेद नहीं । हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चित्तभाव हुआ है उसमें चैतन्य आभास फुरा है और उसमें जैसा संकल्प फुरा है तैसे ही स्थित हुआ है कि यह इस प्रकार हो और इतने काल रहे, उसी संकल्प निश्चय का नाम नेति है । जैसे आदि संकल्प दृढ़ हुआ है, तैसे ही अबतक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने अपने भाव में स्थित हैं और अपने स्वभाव को नहीं त्यागते जबतक उनकी नेति है तब तक तैसे ही जगत् सत्ता में स्थित है । हे रामजी! इसका नाम नेति है । जैसे आदि संकल्प धारा है तैसे ही स्थित है और वास्तव में आभासरूप है । अकस्मात् से यह आभास फुरा है सो किसी सूक्ष्म अणु में फुरा है । जैसे समुद्र के किसी स्थान में तरंग बुद्बुदे फुरते हैं, सम्पूर्ण समुद्र में नहीं फुरते, तैसे ही जहाँ संवेदन रूप जैसा फुरना होता है तैसे ही स्थित होता है सो नेति है । जैसे तरंग और बुद्बुदे समुद्र से भिन्न नहीं, तैसे ही नेति आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे द्रवता से समुद्र में तरंग फुरते हैं , तैसे ही आत्मा में संवेदन करके नेति और जगत् जो फुरते हैं सो वही रूप है-आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसे किसी ने कहा कि चन्द्रमा का प्रकाश है सो चन्द्रमा और प्रकाश में भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । यह विश्व आत्मा का स्वभाव है जैसे एक ही काल का दिन, पक्ष, बार, मास, वर्ष, युग, कल्प इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं परन्तु काल एक ही है, तैसे ही भिन्न भिन्न जगत् के नाम हैं सो सब ब्रह्म ही है । हे रामजी! जब संवेदन चित्तरूप होती है तब प्रथम शब्द तन्मात्रा फुरती है और उससे आकाश उपजता है जिसका स्वभाव शून्यता है, फिर जब उसने स्पर्शतन्मात्रा को चेता तब उससे इसमें वायु फुरा और वायु का स्पन्दस्वभाव है । फिर रूप तन्मात्रा को चेता तब उससे अग्नि प्रकट हुई जिसका उष्ण स्वभाव है । फिर रसतन्मात्रा को चेता तब उससे जल प्रकट हुआ जिसका द्रव स्वभाव है । फिर गन्ध तन्मात्रा को चेता तब उससे पृथ्वी प्रकट हुई जिसका स्थिर स्वभाव है । इस प्रकार पञ्चभूत फुर आये । हे रामजी! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है सो जितने कुछ शब्दसमूह हैं उनका बीज है सब उसी से उत्पन्न हुए हैं । पदार्थ, वाक्य, वेद, शास्त्र, पुराण सब उसी से फुरे हैं इसी प्रकार पृथ्वी, अपू, तेज, वायु, आकाश इनका जो कार्य हे सो उन सबका बीज तन्मात्रा है और उस तन्मात्रा का बीज वह संवित्् सत्ता है । हे रामजी! अब इन तत्त्वों की खानि सुनो । पृथ्वी सो अणु भी होती है और एक और एकदला भी होती हैं सो पृथ्वी तो एक है और

www.tantrik-astologer.in

अणु भी वही है, तैसे ही सर्व तत्त्वों को समझ देखना । पृथ्वी की खानि भू पीठ है जो सम्पूर्ण भूतजात को धारती हैं जल की खानि समुद्र है जो सर्वपदार्थों में रसरूप होकर स्थित है, अग्नि का तेज जो प्रकाश है उसकी समष्टिता सूर्य है, सर्वस्पन्द की समष्टिता पवन है और सम्पूर्ण शून्य पदार्थों की खानि आकाश है । इस प्रकार ये पाँचो तत्त्व संकल्प से उपजे हैं । जैसे बीज से अंकुर उपजता है तैसे ही यह भूतसंकल्प से उपजे हैं । संकल्प संवेदन से फुरा है और संवेदन आत्मा का अभ्यास है जो अद्वैत, अच्युत, निर्विकल्प और सर्वदा अपने आपमें स्थित है । उसी के आश्रय संवेदन आभास फुरा है, फिर संवेदन से संकल्प फुरा है और संकल्प से जगत् बन गया है । जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं और लीन होते हैं, तैसे ही संकल्प से जगत् उपजा है और फिर संकल्प ही में लीन होता है । जैसे तरंग जलरूप है, तैसे ही पृथ्वी, जल, तेल, वायु, आकाश सब चैतन्यरूप हैं । सर्वपदार्थ जो देखने सुनने में आते हैं और नहीं आते सो सब चैतन्यरूप हैं, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, वही आत्मा इस प्रकार होता है । स्वप्ने में अपना अनुभव ही पदार्थ हो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं। नाना प्रकार भासता है तो भी अनाना है तैसे ही जगत् नाना प्रकार भासता है तो भी कुछ बना नहीं । जैसे एक निद्रा के दो रूप है-एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति-जब फुरना होता है तब स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जब फुरना निवृत्त हो जाता है तब सुषुप्ति होती है और जैसे वायु के दो रूप हैं, जब स्पन्द होती है तब भासती है और जब निस्पन्द होती है तब नहीं भासती, तैसे ही जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है और जब नहीं फुरती तब जगत् भी नहीं भासता -इसी का नाम महाप्रलय है-पर दोनों आत्मा के आभास हैं । हे रामजी! संकल्परूप ब्रह्मा ने आत्मा में आकाश; पृथ्वी, नक्षत्र चक्र इत्यादि क्रम से रचे हैं जैसे बालक अपने में संकल्प रचे, तैसे ही ब्रह्मा ने रचा है । उसने एक भूगोल रचा है जिस पर नक्षत्रचक्र रचा और उस चक्र के दो भाग किये हैं जो अन्योन्य सम्मुख स्थित हैं । जब सूर्य उसके सन्मुख होता है तब साठ घड़ी दिन और रात्रि का प्रमाण होता है । जब सूर्य उस नक्षत्रचक्र के ऊर्ध्व और उदय होता है तब दिन बड़े होते हैं और जब अधः की ओर उदय होता है तब दिन छोटे हो जाते हैं निदान ज्यों ज्यों सूर्य क्रम करके ऊर्ध्वः से अधः की ओर उदय होता है त्यों त्यों दिन छोटे होते जाते हैं और रात्रि बढ़ती जाती है और जब षट्मास के उपरान्त पौषत्रयोदशी से सूर्य क्रम करके ऊर्ध्व करके ऊर्ध्व को उदय होता है तब दिन बढ़ता जाता है । आषाढ़ की द्वादशी से लेकर पौषत्रयोदशी पर्यन्त रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है और फिर रात्रि घटती जाती है और दिन बढ़ता जाता है । जब सूर्य उस चक्र के मध्य उदय होता है तब दिन और रात्रि समान हो जाते हैं परन्तु संवेदनरूप ब्रह्मा का सब संकल्प विलास है । जैसे शिल्पी शिला में पुतलियाँ कल्पता है और चेष्टा करता है पर बना कुछ नहीं शिला ही अपने घनस्वभाव में स्थित होती है, तैसे ही चित्तरूपी शिला आत्मारूपी शिला में जगत्‌रूपी पुतलियाँ कल्पता है परन्तु बना कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही सदा अपने आपमें स्थित है । संवेदन फुरने से जब उसे रूप देखने की इच्छा होती है तब चक्षु इन्द्रियाँ बन जाती है जो रूप को ग्रहण करती हैं, जब स्पर्श की इच्छा होती तब त्वचा इन्द्रिय बन जाती है जो स्पर्श को ग्रहण करती है, जब गन्ध की इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बनकर गन्ध ग्रहण करती है, जब शब्द सुनने की इच्छा होती है तब श्रवण इन्द्रियाँ बन जाती है जो शब्द आदि विषयों को ग्रहण करती हैं और जब रस की इच्छा होती है तब रसना इन्द्रिय प्रकट होकर स्वाद ग्रहण करती है । जब अपने और वायु देखने की ओर चेतती है तब अपने साथ वायु देखती है और उस वायु में प्राण फुरते देखती है । हे रामजी! देखना, सुनना, रस, स्पर्श करना, बोलना और गन्ध लेना जहाँ जहाँ इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती गईं सो देश है, जिस विषय को ग्रहण करने लगती हैं सो पदार्थ हैं

www.tantrik-astrologer.in

और जिस समय ग्रहण करने लगती हैं सो काल है इस प्रकार देश, काल और पदार्थ हुए हैं और फिर क्रम से शुभ अशुभ कर्म भासने लगे । हे रामजी! इस प्रकार संवेदन ने फुर कर जगत् को रचा है शरीर को रचकर इष्ट अनिष्ट को ग्रहण करती है । जो तुम कहो कि इन्द्रियाँ तो भिन्न भिन्न हैं और अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं सर्व के इष्ट अनिष्ट इस जीव को कैसे होते हैं तो इसका दृष्टान्त सुनो । हे रामजी! जैसे तुम एक हो और माला के दाने बहुत हैं पर सब का आश्रय सूत्र है, तैसे ही अहंकाररूपी सूत्र में सर्व इन्द्रियरूपी दाने हैं, इस कारण अहंकाररूप जीव इन्द्रियों के सुख से सुखी होता है और दुःख से दुःखी होता है । इन्द्रियाँ आप ही से कार्य करने को समर्थ नहीं होती, अहंकार (जीव) की सत्ता से चेष्टा करती है । जैसे शंख को आपसे बजने की सामर्थ्य नहीं पर जब पुरुष बजाता है तो शब्द करता है, तैसे ही इन्द्रियों की चेष्टा अहंकार और जीव से होती है । हे रामजी! वास्तव में न कोई इन्द्रियाँ हैं, न इनके विषय हैं और न मन का फुरना है सर्व आभासमात्र है । जब संवेदन फुरती है तब इतनी संज्ञा धारती है और जब संवेदन निर्वाण होती है तब सर्व कल्पना मिट जाती हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवसंसारवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः ||270|

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

सर्वब्रह्मरूप प्रतिपादन

कहा है जितना कुछ जगत् देखते हो सो संवेदनरूप है । शुद्ध चिन्मात्र सत्ता का आदि आभास और चैतन्यता का लक्षण चित्त अहं जो अस्मि है उसका नाम संवेदन है और उसके इतने पर्याय हुए हैं कि कोई तो ब्रह्म कहते हैं, कोई विष्णु कहते हैं, कोई प्रजापति कहते हैं और कोई शिव आदि नाम लेते हैं । उस संवेदन ने आगे संकल्प फुरके विश्व रचा जो अकारण है किसी कारण से नहीं बनी काकतालीयवत् अकस्मात् आभास फुरा है और आकार सहित दृष्टि आती है परन्तु अन्तवाहक और व्यवहार सहित दृष्टि आती है परन्तु अव्यवहार है । हे रामजी! संवेदन जो अन्तवाहकरूप है उसने आगे विश्व रचा है सो भी अन्तवाहक रूप है परन्तु अज्ञानी को संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक रूप हो भासती है । जैसे संकल्प से भिन्न नहीं और संकल्प की दृढ़ता से ही आकाररूप पहाड़, नदियाँ, घट, पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं परन्तु बने कुछ नहीं शून्यरूप हैं, तैसे ही यह जगत् निराकार शून्यरूप है । हे रामजी! आदि अन्तवाहकरूप संवेदन ही बहिर्मुख फुरने से देश काल, पदार्थरूप होकर स्थित हुई है । जब बहिर्मुख फुरना मिट जाता है तब जगत् आभास भी मिट जाता है । जैसे स्वप्ने का आभास जगत् तबतक भासता है जबतक निद्रा में सोया होता है पर जब जागता है तब स्वप्ने का जगत् मिट जाता है और एक अद्वैतरूप अपना आप ही भासता है, तैसे ही यह जगत् अज्ञान के निवृत्त हुए लीन हो जाता है । सब जगत् निराकार है पर संकल्प की दृढ़ता से आकार भासते हैं । हे रामजी! संवेदन में जो संकल्प फुरता है वही अन्तःकरण चतुष्टय होके भासता है । पदार्थ के चितवने से इसका नाम चित्त होता है, संकल्प से इसका नाम मन होता है, ज्यों का त्यों निश्चय करने से इसका नाम बुद्धि होता है और वासना के समूह मिलने से पुर्यष्टका कहाती है पर सब संकल्पमात्र है और उनसे जगत् उपजा है वह भी संकल्परूप है । जैसे इन्द्रजाल की बाजी और स्वप्ने का नगर संकल्प की दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं परन्तु सब आकाशरूप हैं, तैसे ही यह जगत् आकाशरूप है-आत्मा से भिन्न कुछ है नहीं । जो तुम कहो कि भासता क्यों है? तो जिसमें भासता है उसे वही रूप जानो और देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्म से आदि कीट पर्यन्त जो स्थावर-जंगमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है और वेद, शास्त्र, जगत्, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं वे भी सब ब्रह्मरूप हैं । वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन से जगत्‌रूप हो भासती है । जैसे स्वप्ने में अपना ही अनुभव सृष्टिरूप हो भासता है, तैसे ही अपना ही अनुभव यह जगत् हो भासता है और जैसे समुद्र द्रवता से तरंग हो भासता है पर जल ही जल है तैसे ही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से जगत् आभास फुरती है सो ब्रह्म ही ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं । हे रामजी! जो कुछ तुमको भासता है सो सब अच्युत और अनन्तरूप अपने आपमें स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मरूपप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः ||271||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विद्यावादबोधोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब दृष्टा दृश्यरुप को चेतता है तब विश्व होता है सो विश्व सब अन्तवाहकरूप है । निराकार संकल्प को अन्तवाहक कहते हैं । जब दृश्य में अहंभाव से चैतन्यता रहती हे तब अन्तवाहक से आधिभौतिक शरीर हो जाता है । आदि जो ब्रह्म संवेदन फुरा है सो अन्तवाहक शरीर हुआ है और जब उसने बारम्बार अपने शरीर को देखा तब वह भी चतुष्टयमुख आधिभौतिक हो गया । उसने ओंकार का उच्चारण करके वेद और वेद के क्रम को रचा और संकल्प से विश्व रचा । जैसे कोई बालक मनोराज से बगीचा रचे और उसमें नाना प्रकार के वृक्ष, फल, फूल, टास और पत्र रचे, तैसे ही ब्रह्माजी ने रचा और अन्तवाहक जीव उपजे और जब जीवों को शरीर में दृढ़ अभ्यास हुआ तब वे अन्तवाहक से आधिभौतिक हो गये । रामजी! ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तो निराकार थी उसको शरीर का संयोग कैसे हुआ है और उससे आधिभौतिकता कैसे हो गई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई शरीर है और न किसी को शरीर का संयोग हुआ है केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें जो चैतन्य संवेदन फुरी है वही संवेदन दृश्य को चेतती रहती है । वही जगत्‌रूप होकर स्थित हुई है । जब संकल्प की दृढ़ता हुई तब अपने साथ शरीर और आकारभासने लगे परन्तु सब आकाश ही रूप हैं-कुछ बने नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि को उपजी कहिये तो उपजी नीं और उनका कारण भी कोई नहीं केवल आकाशरूप है और कोई पदार्थ उपजा नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरण से आकार भासते हैं, तैसे ही यह शरीर और जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है और असंभावना की दृढ़ता से प्रत्यक्ष भासता है । जब स्वरूप का विचार करके देखोगे तब शान्त हो जावोगे । हे रामजी! अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं । जैसे स्वप्ने के पदार्थ अविद्यमान होते हैं और विद्यमान भासते हैं पर जब जागता है तब अविद्यमान हो जाते हैं, तैसे ही यह जगत् अविचारसिद्ध है विचार किये से शान्त हो जाता है । जब चिचार करके देखोगे तब सर्वात्मा ही भासेगा हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है अर्थात् सत्तामात्र है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता और अच्युत है अर्थात् सदा ज्यों का त्यों है अपने भाव को कदाचित् नहीं त्यागता इसलिये जो उससे भिन्न भासे उसे भ्रममात्र जानो । हे रामजी! विचार करके जब दृश्यभ्रम शान्त होता है तब मोक्ष प्राप्त होता है । आत्मसत्ता ज्ञानरूप और निराकार सदा अपने आपमें स्थित है । जब सम्यक् ज्ञान का बोध होता है तब जगत्भ्रम नष्ट होता है । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! सम्यक् ज्ञान और बोध किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनुभव ही बोध कहाता है और उसको ज्यों का त्यों जानना सम्यक् ज्ञान है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! केवल बोध और केवल ज्ञान किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! दृश्य से रहित जो चिन्मात्र है उसको तुम केवल बोध जानो-उसमें वाणी की गम नहीं । इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ता को ज्यों का त्यों जानना ही केवल ज्ञान है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो उसमें जगत्भ्रम क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चिन्मात्र जो दृष्टारूप है उसमें जब संवेदन चेतना फुरती है तब वही चेतना चैतरूप दृश्य हो भासती है । जैसे स्पन्द से रहित वायु निलक्षरूप होती है और जब स्पन्दरूप होती है तब स्पर्श से भासती है, तैसे ही संवेदन से जो दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो दृष्टा दृश्यरूप भासती है तो दृश्य बाहर क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! इसी कारण भ्रम कहा है कि अपने भीतर है और बाहर भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने ही अन्तर होती है वास्तव से न भीतर है और न बाहर है, आत्मसत्ता ही अपने

www.tantrik-astrologer.in

आप में स्थित है, तैसे ही अब भी ज्यों की त्यों स्थित है, भीतर और बाहर भ्रम से भासती है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्यभ्रम से भासती है तो शशे के सींग भी भ्रममात्र हैं वे क्यों नहीं भासते और अहं और त्वं क्यों भासते हैं? भूतों की चेष्टा तो प्रत्यक्ष भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! अहं त्वमादिक जगत् भी कल्पनामात्र है । जैसे शशे के सींग कल्पनामात्र हैं और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है, तैसे ही यह जगत् भी भ्रममात्र है । जैसे मृगतृष्णा का जल और संकल्पनगर भ्रममात्र है, तैसे ही यह जगत् भ्रममात्र है, किसी कारण से नहीं उपजा ।जैसे स्वप्ने में शशे के सींग नहीं भासते हैं और जगत् भासता है, तैसे ही यह भ्रम है । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में जगत् की स्मृति अनुभव से जानते हैं और कारण-कार्य भाव पाते हैं- तो तुम भ्रममात्र कैसे कहते हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं यह कहता हूअ कि जो कारण से कार्य होता है सो सत्य होता है । तुम कहो कि जगत् का कारण क्या है अर्थात् जैसे बीज से वट होता है, तैसे ही इसका कारण कौन है? रामजी! बोले, हे भगवन्! जगत् सूक्ष्म अणु से उपजता है और लीन भी सूक्ष्मतत्त्व के अणु में ही होता है । वशिष्ठजी ने पूछा, हे रामजी! सूक्ष्म अणु किसमें रहते हैं? रामजी बोले, हे मुनीश्वर! महा प्रलय में शुद्ध चिन्मात्र सत्ता शेष रहती है और उसी में अणु रहते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महाप्रलय किसको कहते हैं? जहाँ सर्व शब्द और अर्थ का अभाव है उसका नाम महाप्रलय है । वहाँ तो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है जिसमें वाणी की गम नहीं तो उसमें सूक्ष्म अणु कैसे हों और कारण-कार्यभाव कैसे हो? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता ही रहती है तो उसमें जगत् कैसे निकल आता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विश्व कुछ उपजा हो तो मैं तुमसे कहूँ कि इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति होती है पर जो जगत् कुछ उपजा ही नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूँ? जब चिन्मात्र में चैतन्यता फुरती है तब जगत् अहं त्वमादिक भासता है सो फुरना ही रूप है और कुछ उपजा नहीं-वही रूप है । हे रामजी! ज्ञान का जो दृश्य भ्रम से मिलाप है सो ही बन्धन का कारण है और उसका अभाव होना मोक्ष है । रामजी! ने पूछा, हे भगवन् ज्ञान के हुए जगत् का अभाव कैसे होता है? यह तो दृढ़ हो रहा है इसको शान्ति कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सम्यक्ृज्ञान से जो बोध होता है उस बोध से दृश्य का सम्बन्ध निवृत्त होता है । वह बोध निराकार और शीतल रूप है उसी से मोक्ष में प्रवर्तता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बोध तो केवलरूप है, सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं जिससे यह जीव बन्धन मुक्त होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस ज्ञान से ज्ञेय दृश्य का संयोग नहीं होता उसको ज्ञानी अविनाशीरूप कहते हैं । जब ज्ञेय का अभाव होता है तब सम्यक्ृज्ञान कहाता है । जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान से ज्ञेय भिन्न है अथवा अभिन्न है और ज्ञान क्यों कर उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोधगया का नाम ज्ञान है और उससे ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं रामजी ने पूछा कि हे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के जाननेवाले! जो शशे के सींग की नाईं ज्ञेय असत्य है तो भिन्न होकर क्यों भासती है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रान्ति से भासता है, उसका सद्भाव नहीं है और न भीतर जगत् है, न बाहर जगत् है, अर्थ से रहित भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अहं त्वमादिक तो प्रत्यक्ष भासते हैं और इनका अर्थ सहित अनुभव होता है तुम कैसे अभाव कहते हो? वशिष्ठजौ बोले, हे रामजी! यह सर्व जगत् विराट् पुरुष का वपु है सो आदि विराट् ही उपजा नहीं, तो और की उत्पत्ति कैसे कहिये? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जगत् का सद्भाव तो तीनों कालों में पाया जाता है पर तुम कहते हो कि उपजा ही नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे स्वप्ने में जगत् के सब

www.tantrik-astrologer.in

पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर कुछ उपजे नहीं और जैसे मृगतृष्णा का जल आकाश में द्वितीय चन्द्रमा और संकल्पनगर भ्रम से भासता है, तैसे ही अहं त्वमादिक जगत् भ्रम से भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् अहंत्वमादिक जगत् दृढ़ भासता है तो कैसे जानिये कि उपजा नहीं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पदार्थ कारण से उपजता है वह निश्चय सत्य जाना जाता है । जब महाप्रलय होती है तब कारण कार्य कुछ नहीं रहता सब शान्तरूप होता है और फिर उस महाप्रलय से जगत् फुर आता है । इसी से जाना जाता है कि सब आभासमात्र है । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होता है तब अज और अविनाशी सत्ता शेष रहती है, इससे जाना जाता है कि वही जगत् का कारण है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसा कारण होता है तैसा ही उसका कार्य होता है उससे विपर्यय नहीं होता । जो आत्मसत्ता अद्वैत और आकाश रूप है तो जगत् भी वही रूप है । घट से पट की नाईं और तो कुछ नहीं उपजता? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है तब जगत् सूक्ष्मरूप होकर स्थित होता है और उसी से फिर प्रवृत्ति होती है । वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! महाप्रलय में जो तुमने सृष्टिका अनुभव किया सो क्या रूप होती है? रामजी बोले, हे भगवन्! ज्ञप्तिरूप सत्ता ही वहाँ स्थित होती है और तुम जैसों ने अनुभव भी किया है कि चिदाकाश रूप है । सत्य और असत्य शब्द से नहीं कहा जाता । वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जो ऐसे हुआ तो भी जगत् ज्ञप्तिरूप हुआ इससे जन्म मरण से रहित शुद्ध ज्ञानरूप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्र है सो भ्रम कहाँ से आया है? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से भासता है जैसे जैसे चित्त फुरता है तैसे भासता है इसका और कोई कारण नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो यह चित्त के फुरने से भासता है तो परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं कि अग्नि को जल नष्ट करता है और जल को अग्नि नष्ट करती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो द्रष्टा पुरुष है सो दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता और ऐसी कुछ वस्तु नहीं । भावरूप आत्मा ही चैतन्यघन सर्वरूप हो भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! चिन्मात्रतत्त्व आदि अन्त से रहित है और जब वह जगत् को चैतता है तब होता है पर तो भी तो कुछ हुआ? जगत्‌रूप चैत को असंभव कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसका कारण कोई नहीं, इससे चैत का असंभव है । चैतन्य सदा मुक्त और अवाच्यपद है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो इस प्रकार है तो जगत् और तत्त्व कैसे फुरते हैं और अहं त्वं आदिक द्वैत कहाँ से आये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कारण के अभाव से यह जगत् कुछ आदि से उपजा नहीं सर्वशान्तरूप है और नाना भासता है सो भ्रममात्र है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! निर्मलतत्त्व जो सर्वदा प्रकाशरूप है सो निरुल्लेख और अचलरूप है उसमें भ्रान्ति कैसे है और किसको है वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कारण के अभाव से निश्चय करके जानो कि भ्रान्ति कुछ वस्तु नहीं । अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामय सत्ता स्थित है । रामजी ने पूछा हे ब्राह्मण! मैं भ्रम को प्राप्त हुआ हूँ इससे और अधिक पूछना नहीं चाहता - और अत्यन्त प्रबुद्ध भी नहीं तो अब क्या पूछूँ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह प्रश्न करो कि कारण बिना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? जब विचार करके कारण का अभाव जानोगे तब परम स्वभाव अशब्दपद में विश्रान्ति पावोगे । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं यह जानता हूँ कि कारण के अभाव से जगत् कुछ उपजा नहीं परन्तु चैत का फुरना भ्रम कैसे हुआ । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी कारण के अभाव से सर्वत्र शान्तिरूप है भ्रम की कुछ दूसरी वस्तु नहीं । जब तक आत्मपद में अभ्यास नहीं होता तब तक भ्रम भासता है और शान्ति नहीं होती पर जब अभ्यास करके केवल तत्त्व में विश्रान्ति पावोगे तब भ्रम मिट जावेगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अभ्यास और अनभ्यास कैसे होता है और एक अद्वैत में अभ्यास

www.tantrik-astrologer.in

अनभ्यास भ्रान्ति कैसे होती है । वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! अनन्ततत्त्व में शान्ति भी कुछ वस्तु नहीं और जो आभास शान्ति भासती है सो महाचिद्घन अविनाशरूप है । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! उपदेश के अधिकारी ये जो भिन्न भिन्न शब्द है सो सर्व आत्मा में कैसे भासते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उपदेश और उपदेश के योग्य ये शब्द भी ब्रह्म में कल्पित हैं । शुद्ध बोध में बन्ध और मोक्ष दोनों का अभाव है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आदि में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो देश, काल क्रिया और द्रव्य के भेद कैसे भासते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी देश, काल, क्रिया और द्रव्य के जो भेद हैं सो संवेदन दृश्य में हैं और अज्ञान मात्र भासते हैं-अज्ञानमात्र से कुछ भिन्न नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बोध को दृश्य की प्राप्ति कैसे हुई । जहाँ द्वैत और एकता का अभाव है वहाँ दृश्यभ्रम कैसे है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोध को दृश्य की प्राप्ति और द्वैत एक का भ्रम मूर्ख का विषय है, हम जैसों का विषय नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अनन्ततत्त्व जो केवल बोधरूप है तो अहं त्वं हमारे में कैसे होता है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! शुद्ध बोध सत्ता में जो बोध का जानना है सो अहं त्वं करके कहाता है । जैसे पवन में फुरना है तैसे ही उसमें चेतना फुरती है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे निर्मल अचल समुद्र में तरंग और बुद्बुदे होते हैं सो कुछ जल से भिन्न नहीं, तैसे ही बोध में बोधसत्ता से भिन्न कुछ नहीं जो अपने आप में स्थित है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जो ऐसे है तो किसका किसको दुःख हो । एक अनन्ततत्त्व अपने आप में स्थित और पूर्ण है । रामजी ने फूछा, हे भगवन्! जो वह एक और निर्मल है तो अहं त्वं आदिक कलना कहाँ से आई और दृढ़ हुई कि भोक्ता की नाईं भोगता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञेय जो चिद्सत्ता है उसका जानना बन्धन नहीं क्योंकि ज्ञान ही सर्व अर्थरूप होकर स्थित हुआ है तो बन्ध और मोक्ष कैसे हो? रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञप्ति जो वाह्य अर्थ को देखती है- जैसे आकाश में नीलता और स्वप्ने में पदार्थ सो असत्यरूप सत्य हो भासते हैं, तैसे ही यह वाह्य अर्थ भी असत्य ही सत्य हो भासते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कारण से रहित जो बाह्य अर्थ भासते हैं सो भ्रममात्र हैं-भिन्न कुछ नहीं, रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थों के सुखदुःख होते हैं चाहे वे सत्य हों अथवा असत्य हों तैसे ही इस जगत् में सुख दुःख होता है परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो इस प्रकार है कि जगत् स्वप्न की नाईं है तो यह सब पिण्डाकार भ्रममात्र से भासता है और सर्व अर्थ शान्तरूप है नानात्व कुछ नहीं । रामजी ने पूछा , हे भगवन्! स्वप्न और जाग्रत् में पिण्डाकार और पर अपररूप कैसे उत्पन्न होते हैं और कैसे शांत होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पूर्व अपर का विचार कीजिये कि जगत् आदि में क्या रूप था और अन्त में क्या रूप होता है, जब ऐसा विचार होगा तब शान्ति हो जावेगी । जैसे स्वप्न में स्थूल पदार्थ पिण्डरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप है, तैसे ही जाग्रत पदार्थ भी आकाशरूप हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब भिन्नभाव की भावना प्राप्त होती है तब जगत् को कैसे देखता है और संस्कार शान्त कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो निवासी पुरुष है उसके हृदय से जगत् का सद्भाव उठ जाता है जैसे संकल्पनगर और कागज की मूर्ति असत् भासती है तैसे ही उसको जगत् असत् भासता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जब वासना से रहित पिण्डदान शान्त हुए जगत् को स्वप्नवत् जानता है तो उसके उपरान्त क्या अवस्था होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् को जीव जब संकल्परूप जानता है तब वासना निर्वाण हो जाती है और पञ्चतत्त्वों का क्रम उप जना और विनाश लीन हो जाता है । तब केवल परमतत्त्व भासता है और सब आकाशरूप हो जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अनेक जन्म की जो वासना दृढ़ हो रही है और अनेक शाखा हो कर फैली है इसलिये

www.tantrikastrologer.in

संसार का कारण घोरवासना ही है सो कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब यथा भूतार्थज्ञान होता है तब आत्मा में भ्रान्ति रूप जगत् स्थित हुआ शान्त होता है । जब पिण्डाकार पदार्थों का अभाव हो जाता है । तब कर्मरूप दृश्यचक्र भी शान्त हो जाता है जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में नष्ट हो जाते हैं, तैसे ही आत्मतत्त्व के बोध से सब वासना नष्ट हो जाती हैं । रामजी ने पूछा हे मुनीश्वर! जब पिण्डग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्त होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब पिण्डग्रहण भ्रम शान्त होता है तब जीव निर्मल होकर क्षोभ से रहित होता है, जगत् की आस्था शान्त हो जाती है और चित्त परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थित है? जो संकल्परूप है तो इसके जो पदार्थ हैं उनके नष्ट हुए इस को दुःख क्यों प्राप्त होता है और इस जगत् आस्था कैसे शान्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है उसको नष्ट करने में दुःख नहीं होता और जो पूर्व अपर विचार करके चित्त से रचा जानिये तो भ्रम शान्त हो जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! चित्त कैसा है और उससे कैसे रचा जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है उसी को संकल्परूप चित्त कहते हैं उससे रहित सत् के विचारने से वासना शान्त हो जाती है । रामजी बोले, हे ब्रह्मन्! चैत्य से रहित चित्त कैसे होता है और चित्त से उदय हुआ जगत् निर्वाण कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोता ही द्वैत भासता है-कुछ है नहीं । रामजी बोले, हे भगवन्! जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है, जो उपजा ही नहीं तो इसका अनुभव कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी को जो जगत् भासता है सो सत्य नहीं और ज्ञानवान् को जो भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है! रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अज्ञानी को तीनों जगत् कैसे भासते हैं और ज्ञानवान् को कैसे भासते हैं सो कहने में नहीं आते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी को द्वैत सघन दृढ़ भासता है और ज्ञानवान् को सघन द्वैत नहीं भासता, क्योंकि आदि तो उपजा नहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो आदि उपजा नहीं तो अनुभव भी न हो पर यह तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, इसे असत्य कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! असत्य ही सत्य की नाईं हो भासता है इसी से कारण रहित भासता है । जैसे स्वप्न में पदार्थ का अनुभव होता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं, तैसे ही यह असत्य ही अनुभव होता है । रामजी बोले, हे भगवन्! स्वप्ने में संकल्प से जो दृश्य का अनुभव होता है सो जाग्रत् के संस्कारों से होता है और कुछ नहीं । वशिष्ठजी ने पूछा, हे रामजी! स्वप्ना और संकल्प संस्कार से होता है सो जाग्रत् के संस्कार से कैसे होता है? वही रूप है अथवा जाग्रत् से अन्य है? रामजीं बोले, हे भगवन्! स्वप्ने के पदार्थ और मनोराज जाग्रत् के संस्काररूप भ्रम से जाग्रत् की नाईं भासते हैं । वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! जो स्वप्ने में जाग्रत् संस्कार से जगत् जाग्रत् की नाईं भासता है कि स्वप्ने में किसी का घर लुट गया अथवा जल के प्रवाह में बह गया-तो जाग्रत् में तो कुछ हुआ नहीं, क्योंकि प्रातःकाल उठकर देखता है तब ज्यों का त्यों भासता है-तो संसार भी कुछ न हुआ सब कल्पनामात्र जानना । रामजी बोले, हे भगवन्! अब मैंने जाना कि यह सब ब्रह्म ही है, न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है और न अस्त है, सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उससे भिन्न जो कुछ भासता है सो भ्रममात्र है और भ्रम भी कुछ वस्तु नहीं, सर्वचिदाकाश ब्रह्मरूप है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जो कुछ भासता है सो सब ब्रह्म ही का प्रकाश है । वही अपने आपमें प्रकाशता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्ग के आदि में देह चित्तादिक कैसे फुर आये हैं और आत्मा का प्रकाशरूप जगत् कैसे है?

www.tantrik-astrologer.in

प्रकाश भी उसका होता है जो साकार रूप होता है परब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वब्रह्मरूप है । प्रकाश और प्रकाश का भेद भी कुछ नहीं और दूसरी वस्तु भी कुछ नहीं वही अपने आपमें स्थित है-इसी से स्वप्रकाश कहा है । सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटी से भासता है सो भी उसके आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रय होकर सूर्य जगत् को प्रकाशता है ।आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञान घन है उसमें जो चित्तसंवेदन फुरी है वही जगत्‌रूप होकर स्थित हुई है । आत्मसत्ता और जगत् में कुछ भेद नहीं । जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं-वही इस प्रकार हुए की नाईं स्थित हुआ है । हे रामजी! निराकार ही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है । इस जगत् के आदि अद्वैत अचिन्मात्रसत्ता थी उसी से जो नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया सो वही रूप हुआ और कारण तो कोई नहीं जैसे स्वप्न के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सो भी वही रूप हुए पर प्रकट भासते भी हैं, तैसे ही इस जगत् को भी अकारण और निराकार जानो । हे रामजी! न कोई जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है सब आभासमात्र है वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । हमको तो वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासती है जैसे दर्पण में अपना मुख भासता है, तैसे ही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रान्तिरूप जगत् भासता है । जैसे वृक्ष के ठूँठ में दूर से भ्रान्ति करके पुरुष भासता है, तैसे ही अज्ञानी को जगत् भासता है । हे रामजी! न कोई दृष्टा है और न दृश्य है । दृष्टा तो तब कहिये जो दृश्य हो और दृश्य तब कहिये जो दृष्टा हो, जो दृश्य नहीं तो दृष्टा किसका और जो दृष्टा ही नहीं तो दृश्य किसका? इससे निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो आकार भी भासते हैं तो भी निराकार है-आत्मसत्ता ही संवेदन करके आकाररूप हो भासती है और जैसे थम्भ में चितेरा पुतलियाँ कल्पता है कि इतनी पुतलियाँ थम्भे में निकलेंगी तो उसको खोदे बिना ही प्रत्यक्ष भासती हैं, तैसे ही खोदे बिना ब्रह्मरूपी थम्भे में मनरूपी चितेरा ये पुतलियाँ देखता है सो हुआ कुछ नहीं । हे रामजी! इन मेरे वचनों को तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टान्त से देखो कि अनुभवरूप ही आकार हो भासता है-अनुभव से भिन्न कुछ नहीं! इस मेरे वचनरूपी उपदेश को हृदय में धारो और अज्ञानियों के वचन को त्याग दो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विशताधिक द्विसप्ततितमस्सर्गः ||272||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

रामविश्रान्ति वर्णन

रामजी बोले, हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि हम अज्ञान से जगत् को देखते थे । जगत् तो कुछ वस्तु नहीं सर्वब्रह्म ही है और अपने आप में स्थित है । यह जगत् भ्रम से भासता है । अब मैंने जाना कि यह जगत् वास्तव में न पीछे था और न आगे होवेगा, सर्व शान्त निरालम्ब विज्ञान घनसत्ता है और भ्रान्ति भी कुछ नहीं ब्रह्म ही अपने आप में स्थित है जो निर्विकार और शान्तरूप है । जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न, और संकल्परूप पुर के आदि अद्वैत चिन्मात्र सत्ता होती है और उसका आभास संवेदन है भिन्न कुछ सत् नहीं, तैसे ही यह जगत् अनुभवरूप है । हे प्रभो! अब मैंने तुम्हारी कृपा से ऐसे निश्चय किया है कि जगत् अविचारसिद्ध है और विचार किये से निवृत्त हो जाता है । जैसे शशे के सींग और आकाश के फूल असत्य होते हैं, तैसे ही जगत असत्य है । बड़ा आश्चर्य है कि असत्यरूप अविद्या ने जगत् को मोहित किया था । अब मैंने जाना कि अविद्या कुछ वस्तु नहीं अपनी कल्पना ही आपको बन्धन करती है । जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूत कल्पता है और आप ही भय पाता है, तैसे ही अपनी कल्पना ही अविद्यारूप भासती है पर जब तक विचार प्राप्त हुआ तभी तक भासती है विचार किये से उसका अत्यन्त अभाव हो जाता है । जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरी के जानने से सर्प का अत्यन्त अभाव हो जाता है । जैसे किसी स्थान में भ्रम से मनुष्य भासता है, तैसे ही आत्मा में भ्रम से अविद्यारूप जगत् भासता है । जैसे आकाश के फूल और शशे के सींग कुछ वस्तु नहीं, तैसे ही अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं । जैसे बन्ध्या का पुत्र भासे तो भी भ्रममात्र है और स्वप्ने में अपने मरने का अनुभव हो वह भी भ्रम है, तैसे ही अविद्यारूप जगत् भासता है तो भी असत्य है प्रमाणरूप नहीं । प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थ ज्ञान का साधक हो पर यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है सो यथार्थ नहीं क्योंकि वस्तुरूप आत्मा है सो ज्यों का त्यों नहीं भासता सीपी में रूपे के समान विपर्यय भासता है । यह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है तो भी असत्यरूप है-प्रमाणरूप क्योंकर जाने । हे भगवन्! यह जगत् और कुछ वस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे जैसे आत्मा में संकल्प दृढ़ होता है, तैसे ही तैसे जगत् भासता है । जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठा हो उसके हृदय में यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, क्योंकि भावना नरक की हो जाती है । हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है । आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्त में है । जैसे पत्थर की शिला में शिल्पी पुतलियाँ कल्पता है सो जैसी कल्पता है तैसे ही भासती हैं-शिला से भिन्न कुछ नहीं, तैसे ही आत्मा में चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे जैसे भावना करता है तैसे ही तैसे यह भासता है । आत्मा में जगत् न कुछ हुआ है और न आगे होगा । ब्रह्म सत्ता केवल अपने आपमें स्थित है जो स्वच्छ, अद्वैत, परम मौनरूप और द्वैत और एक कल्पना से रहित है और मुनीश्वरों से सेवने योग्य है । ऐसा जो पद है सो मैंने पाया है और अपने आपमें स्थित और सर्वदुःखों से रहित हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः ।।273।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

रामविश्रांतिवर्णन

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आदि अन्त और मध्य से रहित जो पद है और जिसका मुनियों को भी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैत की कल्पना जो शास्त्र और वेदों में कही है वह मेरी मिट गई है । अब मैं परमशान्त होकर निश्शंक हुआ हूँ और कोई दुःख मुझको नहीं रहा । सब जगत् मुझको आत्मरूप ही भासता है । हे भगवन् अब मैंने जाना कि न कोई अविद्या है, न विद्या है, न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूँ और पाने योग्य पद पाया है जो आगे भी प्राप्त था । जो कहते हैं कि हम उस पद को नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते । वह पद और किसी से नहीं जाना जाता अपने आप से जाना जाता है और ऐसे भी नहीं है कि किसी से जनाइये और जानने योग्य और हो वह तो आपही बोधरूप है और न कोई भ्रान्ति है, न जगत् है सर्व आत्मा ही है । हे मुनीश्वर! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे हैं जैसे स्वप्ने की सृष्टि हो । जैसे उसमें अन्धकार भासता है सो तब नाश होता है जब सूर्य उदय हो । जब स्वप्ने से जाग उठे तब न अन्धकार रहता है और न प्रकाश ही रहता है, तैसे ही आत्मपद में जागे से ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव हो जाता है और द्वितीय कल्पना मिट जाती है । जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परन्तु जगत् आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिला का अन्तर जड़ीभूत होता है, तैसे ही आत्मा का रूप जगत् है जैसे जल और तरंग में भेद नहीं, तैसे ही आत्मा और जगत् अभेद रूप हे । हे मुनीश्वर! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहंप्रतीति हुई है वह कार्य कर्ता दृष्टि आता है तो भी निश्चय से कुछ नहीं करता और अशान्तरूप दृष्टि आता है तो भी सदा शान्तरूप है । हे मुनीश्वर! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्य है और जगत् की सत्यतारूपी दिन है । जगत् का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरु स्थल है जिसमें अज्ञानी जीवरूपी पंथी हैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता । जो ज्ञानवान् स्वभाव में स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिन भासता है और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है । वे संसार की ओर से सो रहे हैं । ऐसी अद्वैतसत्ता उनको प्राप्त हुई है जहाँ सत्य और असत्य दोनों नहीं इस कारण उन्हें जगत् की कलना नहीं भासती । हे मुनीश्वर! अब मैं जागा हूँ और सब जगत् मुझको अपना आप ही दृष्टि आता है । मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभाव हूँ । अब कोई दुःख मुझको नहीं । हे मुनीश्वर! उस पद को मैंने पाया है जिसके पाने से तृष्णा कदाचित् नहीं उप जती । जैसे पाषाण की शिला में प्राण नहीं फुरते, तैसे ही मुझमें तृष्णा नहीं फुरती सर्व आत्मरूप ही मुझको भासता है । यह जो जीव है उसमें जीवत्व कुछ नहीं; जीवत्व भ्रान्ति सिद्ध है सब आत्मस्वरूप है । मुझको तो निरालम्बसत्ता अपनी आप भासती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिक चतुस्सप्ततितमस्सर्गः ।।274।।

अनुक्रम

www.aartrk-astrologer.in

रामविश्रान्तिवर्णन

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आत्मा में अनन्तसृष्टि फुरती है । जैसे मेघ की बूँदों की गिनती नहीं होती, तैसे ही परमात्मा में सृष्टियों की गिनती नहीं होती । जैसे एक रत्न की असंख्य किरणें होती हैं, तैसे ही परमात्मा में असंख्य सृष्टि हैं, कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलती परन्तु स्वरूप से एकरूप हैं । जैसे समुद्र में लहरे उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न भिन्न और ही प्रकार की उठती हैं, कई परस्पर ज्ञात होती हैं और कई नहीं होती और एक ही ज्वाला के बहुत दीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्पर मिलते हैं और पर स्वरूप से एक रूप है तैसे ही आत्मा में अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं यदि नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आया तो उसमें वही रूप हुआ और कारण तो कोई नहीं? जैसे शून्य के आदि निराकार सत्ता होती है और उसी से सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं सो भी वहीरूप हुए प्रकट भासते भी हैं परन्तु निराकार होते हैं, तैसे ही यह जगत् भी अकारण निराकार है । हे मुनीश्वर अब मैंने ज्यों का त्यों जाना है ।जैसे स्वप्ने में मुए डोलते हैं, जीते हुए मृतक दृष्टि आते हैं और सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं- परन्तु जब जाग उठे तब सब ज्यों के त्यों भासते हैं, तैसे ही मैं जाग उठा हूँ अब मुझ को विपर्यय नहीं भासता-यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्मा ही भासता है । हे मुनीश्वर! जो ज्ञानरूप पुरुष हैं वे परमसमाधि में स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूप से भिन्न नहीं भासता । ये व्यवहार करते दृष्टि आते हैं परन्तु व्यवहार से रहित हैं, क्योंकि उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती बिना अभिलाषा चेष्टा करते हैं और उनको हृदय से कुछ कर्तव्य का अभिमान नहीं फुरता । इसी का नाम परम समाधि है । जब बोध की प्राप्ति होती है तब तृष्णा कोई नहीं रहती और सब पदार्थ विरस हो जाते हैं, क्योंकि आत्मपद परमानन्दरूप है और तृष्णा से रहित है । उसी का नाम मोक्ष है और उसी का नाम निर्वाण है, जिसमें उत्थान कोई नहीं । हे मुनीश्वर! आत्मा नन्द ऐसा पद है जिसके आनन्द को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानों की वृत्ति सदा दौड़ती है और संसार के पदार्थों की ओर नहीं धावती । जिस पुरुष को शीतल स्थान प्राप्त हुआ है वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप को नहीं चाहता कि मरुस्थल में दौड़े, तैसे ही ज्ञानवान् की वृत्ति और आनन्द की ओर नहीं धावती । हे मुनीश्वर! मैंने निश्चय किया है कि तृष्णा का सा ताप कोई नहीं और अतृष्णा की सी शान्ति कोई नहीं । यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य को प्राप्त हुआ हो पर उसको हृदय में तृष्णा जलाती हो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदा का स्थान है और जो निर्धन दृष्टि आता हो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमेश्वर्य से सम्पन्न है और परम आपदा की मूर्ति है । जो बड़ा पण्डित हो परन्तु तृष्णासहित हो तो उसे परम मूर्ख जानिये, उसको बोध की प्राप्ति कदाचित् न होगी । जैसे मूर्ति की अग्नि शीत को निर्वाण नहीं करती, तैसे ही उसकी मूर्खता को पण्डित भी निर्वाण नहीं कर सकता । हे मुनीश्वर! सहस्त्रों में कोई बिरला पुरुष तृष्णा से रहित होता है । जैसे पिंजरे में पड़ा सिंह पिंजरे को तोड़कर निकले, तैसे ही कोई बिरला तृष्णा के जाल को तोड़कर निकलता है । जो पण्डित स्वरूप को विचार के वैतृष्ण नहीं होता और अतीत होकर वैतृष्ण नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं- ज्यों-ज्यों तृष्णा को घटावें त्यों त्यों जाग्रत्ूरूप बोध उदय होगा । जैसे ज्यों-ज्यों रात्रि की क्षीणता होती है, त्यों- त्यों दिन का प्रकाश होता है और ज्यों- ज्यों रात्रि की वृद्धि होती है त्यो-त्यों दिन की क्षीणता होती है, तैसे ही ज्यों- ज्यों तृष्णा बढ़ती� जावेगी त्यों त्यों बोध की प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्यों-त्यों बोध की प्राप्ति सुगम होगी । हे मुनीश्वर! अब मैं उस पद को प्राप्त हुआ हूँ जो अच्युत, निराकार और द्वैत-एक कलना से रहित है । उस पद को मैंने

www.tantrik-astrologer.in

आत्मरूप जाना है और अब मैं निश्शंक हुआ हूँ । जिस पद के पाये से कोई इच्छा नहीं रहती सो परमानन्द आत्मपद है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनं नाम द्विशताधिक पञ्चसप्ततितमस्सर्गः ||275||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

रामविश्रान्तिवर्णन

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! बड़ा कल्याण हुआ है कि तुम जागे हो । ऐसे परम पावन वचन तुमने कहे हैं कि जिनको सुनने से पाप का नाश होता है । ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य हैं और तन मन के ताप को नाशकर्ता चन्द्रमा की किरणें हैं । हे रामजी । जो पुरुष अपने स्वभाव में स्थित हैं उनको व्यवहार और समाधि में एक ही दशा है और वे अनेक प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चय में कर्तृत्व का अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परम ध्यान में स्थित हैं । जैसे पत्थर की शिला में स्पन्द कुछ नहीं फुरता, तैसे ही उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहीं फुरती, क्योंकि उनके हृदय में देहाभिमान निवृत्त हुआ है और चिन्मात्र स्वरूप में स्थिति हुई है । वह आत्मपद परम शान्तरूप, द्वैत कलना से रहित एक है । ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मता से जानता है, उसको निर्वाण कहते हैं और उसी को मोक्ष कहते हैं । हे रामजी! ऐसा जो पद है उसमें हम सद�� स्थित हैं और ब्रह्मा, विष्णु से आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे भी उसी पद में स्थित हैं । वे नाना प्रकार की चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु सदा शान्तरूप हैं और उनको क्रिया और समाधि में एक ही आत्मपद का निश्चय रहता है । जैसे वायु स्पन्द और निस्पन्द में एक ही है जल और तरंग ठहरने में एक ही है, तैसे ही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मुझको कोई कलना नहीं फुरती । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से आदि लेकर जो कुछ जगत् है सो सब आकाशरूप मुझको भासता है और सर्वदाकाल सर्वप्रकार मैं अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूप हूँ । मेरे में जगत् की कलना कोई नहीं, चित्तसंवेदन द्वारा मैं ही जगत्ूरूप हो भासता हूँ पर स्वरूप कदाचित् चलायमान नहीं होता । मैं अचैत चिन्मात्र स्वरूप हूँ और अपने आप से भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी मैं जानत�� हूँ कि तुम जागे हो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्न करो कि "यह जगत् है नहीं" तो भासता क्या है? रामजी बोले, हे भगवन्! मैं तुमसे तो सब पूछूँ जो मुझको जगत् का आकार भासता हो मुझको तो जगत् कुछ भासता ही नहीं । जैसे संकल्प के अभाव हुए संकल्प की चेष्टा भी नहीं भासती, जैसे बाजीगर की माया के अभाव हुए बाजी नहीं रहती , स्वप्ने के अभाव हुए स्वप्ने की सृष्टि नहीं भासती और भविष्य कथा के पुरुष नहीं भासते, तैसे ही मुझको जगत् नहीं भासता तो फिर मैं किसका संशय उठाऊँ? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट् पुरुष होकर स्थित हुई है और उसी ने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर-जंगम जगत् रचा है-उसी के समष्टि वपु का नाम विराट् है । जैसे स्वप्ने का पर्वत हो , तैसे ही यह विराट् पुरुष है जो आकाशरूप है । जो वह आप ही आकाशरूप है तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूँ? जैसे स्वप्नकी मृत्तिका आकाशरूप है अर्थात् जो उपजी ही अनउ��जी है तो उसके पात्रों को मैं क्यों पूछूँ? इसलिये न कोई विराट् है और न उसका जगत् है, मिथ्या ही विराट् है और मिथ्या ही उसकी चेष्टा है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है, न कोई जगत् है और न कोई उसका विराट् है । जैसे स्वप्ने का पर्वत आभासमात्र होता है तैसे ही यह जगत् आकार भासता है । जैसे बीज से वृक्ष होता है, तैसे ही ब्रह्म से जगत् प्रकट हुआ है । बल्कि, यह भी कैसे कहिये? बीज तो साकार होता है और उसमें वृक्ष का सद्भाव रहता है जो परिणाम से वृक्ष होता है और आत्मा ऐसे कैसे हो, वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है, क्योंकि वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेद है उसको जगत् का कारण कैसे कहिये? न कोई जाग्रत् है, न स्वप्ना है और न सुषुप्ति है, ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं । आत्मा परिणाम भाव को नहीं प्राप्त होता वह तो सदा

www.astrologer.in

अपने आप में स्थित है । हे मुनीश्वर! मैं तुम, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आ���ाशरूप है और अब मुझको सब आत्मा हो भासता है । हे मुनीश्वर! एक सविकल्पज्ञान है दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचैत चिन्मात्र है । जो दृश्य के सम्बन्ध से रहित है उसे आकाशवत् निर्मल जानो, वही निर्विकल्पज्ञान है । जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको दृश्य का संयोग है वे सविकल्प ज्ञानी हैं वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परन्तु तो भी भिन्न कुछ नहीं । जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग भासते हैं तो भी जल स्वरूप हैं, तैसे ही भिन्न- भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तो भी मुझको अपना आप ही भासता है । जैसे अवयवी को सब अंग अपने ही भासते हैं, तैसे ही सर्व जगत् मुझको अपना आप ही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत् की कलना कोई नहीं फुरती । जैसे स्वप्ने से जागे को स्वप्ने की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आप ही अद्वैत भासता है, तैसे ही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आप ही भासता है । हे मुनीश्वर! निगम से लेकर जो शास्त्र हैं उनसे उल्लंघनकर मैंने वचन कहे हैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है । जो कुछ हृदय में होता है वही बाहर से वाणी से कहा जाता है । जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज बिना अंकुर नहीं निकलता, तैसे ही जो कुछ मेरे हृदय में है सोई वाणी से कहता हूँ । यह विद्या सर्वप्रमाण से सिद्ध है । हे मुनीश्वर! जिसको यह दशा प्राप्त है वही जानता है और कोई नहीं जान सकता । जैसे जिसने मद्यपान किया है वही उन्मत्तता को जानता है और कोई नहीं जान सकता, तैसे ही जो ज्ञानवान् है वही आत्मरस को जानता है और कोई नहीं जानता उस आत्मरस के पाने से फिर कोई कल्पना नहीं रहती । हे मुनीश्वर! मैं आत्मा, अजन्मा, अविनाशी और परमशान्तरूप हूँ उभय एक की कल्पना से रहित अचेत चिन्मात्र हूँ और जगत्ूरूप हुए की नाईं भी मैं भासता हूँ पर निराभास हूँ, मेरे में आभास भी कोई वस्तु नहीं, क्योंकि निराकार हूँ । इस प्रकार मैंने अपने आपको यथार्थ चिन्मात्र जाना है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रान्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः ।।276।।

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

चिन्तामणिप्राप्ति

वाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज! इस प्रकार कहकर रामजी एक मुहूर्त पर्यन्त तूष्णीं हो गये अर्थात् उन्होंने परमात्मपद में विश्रान्ति पाई और इन्द्रियों और मन की वृत्ति आत्मपद में उपशम हुई। उसके उपरान्त जानकर भी कमलनयन रामजी ने लीला के निमित्त प्रश्न किया। हे संशयरूपी मेघ के नाश कर्त्ता शरत्‌काल! मुझको एक कोमल सा संशय हुआ है उसको दूर करो? हे मुनीश्वर! आत्मपद अव्यक्त और अचिन्त्य है अर्थात् इन्द्रियों और मन का विषय नहीं और मन की चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महा पुरुष हैं उनके कहने में भी नहीं आता तो ऐसा जो अचैत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्र से कैसे जाना जाता है? शास्त्र तो अविच्छेद प्रतियोगी करके कहते हैं सो सविकल्प है पर सविकल्प से निर्विकल्प पद कैसे जाना जाता है कि गुरु और शास्त्र से जानिये? विकल्परूप शास्त्र है उनमें भी सार अर्थ मिलता है परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो उसके साथ हैं उनसे सर्वात्मा क्योंकर जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह गुरु और शास्त्र से नहीं जाना जाता और गुरु और शास्त्र बिना भी नहीं जाना जाता। हे रामजी! नाना प्रकार के जो विकल्प शास्त्र हैं उनसे निर्विकल्परूप कैसे जानता है सो भी सुनो। हे रामजी! व्यवधान देश के एक किटक थे जो गृहस्थी में रहते थे, निदान उनको आपदा प्राप्त हुई और चिन्ता से दुर्बल होने लगे और भोजन भी न मिले जैसे बसन्तऋतु की मञ्जरी ज्येष्ठ आषाढ़ के धूप से सूख जाती है और जैसे जल से निकला कमल सूख जाता है, तैसे ही सम्पदारूपी जल से निकलकर आपदारूपी धूप से किटक सूख गये। तब उन्होंने विचार किया कि किसी प्रकार हमारा उदर पूर्ण हो इसलिये हम वन में जाकर लकड़ी चुनें कि हमारा कष्ट दूर हो। हे रामजी! ऐसे विचार करके वे वन में गये और लकड़ियों ले आये। इसी प्रकार वे लकड़ियाँ ले आवें और बाजार में बेचकर उदर पूर्ण करें। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एक ने चन्दन की लकड़ी पहिचानी और उनसे विशेष मोल पाया। इसी प्रकार एक को ढूँढ़ते-ढूढ़ते रत्न प्राप्त हुए और उनको विशेष ऐश्वर्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़ दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि रत्न से भी विशेष कुछ पाइये और वन कि पृथ्वी को खोदते-खोदते उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये उनको बड़ा ही ऐश्वर्य प्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा, इन्द्रादिक हैं तैसे ही हो गये। हे रामजी! जिन्होंने उद्यम करके वन की सेवना की थी उनको बड़ा सुख प्राप्त हुआ कि लकड़ियाँ उठाते-उठाते उनका उदर पूर्ण हुआ और दुःख निवृत्त हुआ, जिनको चन्दन की लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदर पूर्ण होने से और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्त हुई उनके सर्वसन्ताप मिट गये और वे परमैश्वर्यवान् हुए परन्तु सबको वन से प्राप्त हुआ जो वन के निकट उद्यम करने न गये घर ही बैठे रहे उन्होंने दुःखित होकर प्राणों को त्याग दिया परन्तु सुख न पाया।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिन्तामणिप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः ||277||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

गुरुशास्त्रोंपमा वर्णनं

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो किटक का वृत्तान्त कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछ न जाना । वे किटक कौन कौन थे, वह वन क्या था और आपदा क्या थी सो कृपा करके प्रकट कहो वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सर्वजीव जो तुम देखते हो सो सब किटक हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगी है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापों की चिन्ता से वे जलते हैं । आध्यात्मिक काम-क्रोधादिक मानसी दुःख हैं, आधिभौतिक देह के वात, पित्त, कफ आदिक दुःख हैं और आधिदैविक वे दुःख हैं जो ग्रहों से अनिच्छित प्राप्त होते हैं । हे रामजी! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी वन में गये हैं सो सुखी भये और जो अर्थ सुख के निमित्त शास्त्ररूपी वन को सेवते हैं उनको सत्यकर्मरूपी लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्ण का जो दुःख था सो निवृत्त होता है और स्वर्गरूपी सुख पाते हैं । फिर शास्त्ररूपी वन को सेवते-सेवते उपासनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उस से और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुख को पाते हैं जब अपने इष्टदेव को सेवता है तब स्वर्गादिक विशेष सुख पाता है और अपने स्थान को प्राप्त होता है । फिर जब शास्त्ररूपी वन को ढूँढ़ता है तब विचाररूपी रत्नविशेष पाता है जब सत्य-असत्य का विचार प्राप्त होता है तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं । यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्र से ही होता है । जैसे चन्दन और लकड़ियाँ आदि पदार्थ वन में प्रकट थे और चिन्तामणि गुप्त थी, तैसे ही और शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम प्रकट हैं और ज्ञान रूपी चिन्तामणि गुप्त है । जब दूसरे शास्त्र वन को वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिन्तामणि पाता है । हे रामजी! वन में ही उसने चिन्तामणि पाई थी, क्योंकि चिन्तामणि का वन था परन्तु जब अभ्यास किया था, तब पाई थी और उसी वन में पाई थी , तैसे ही गुरु और शास्त्र का भी जब मिट्टी के खोदने के समान अभ्यास करता है तब आप ही चिन्तामणिवत् आत्मप्रकाश होता है । जैसे मिट्टी के खोदने से चिन्ता मणि का प्रकाश नहीं उपजता, क्योंकि चिन्तामणि तो आगे ही प्रकाशरूप थी, खोदने से केवल आवरण दूर हुआ तब आप ही भासि आई, तैसे ही गुरु और शास्त्रों के वचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होता है तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आती है । गुरु और शास्त्र हृदय की मलिनता दूर करते हैं और जब मलीनता दूर होती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है । इससे गुरु और शास्त्रों से मलीनता दूर होती है परन्तु इनकी कल्पना भी द्वैत में होती है सो कल्पना द्वैत संसार को नाश करनेवाली है । परमार्थ की अपेक्षा से शास्त्र और गुरु भी द्वैत कल्पना है और अज्ञानी की अपेक्षा से गुरु और शास्त्र कृतार्थ करते हैं और इनके अभ्यास से आत्मपद पाता है । प्रथम अज्ञानी शास्त्र को भोग के निमित्त सेवते हैं और शास्त्र में भोग का अर्थ जानते हैं । जैसे लकड़ियों के निमित्त वे किटक वन को सेवते थे । शास्त्र में सब कुछ है, जैसे जिसको रुचि से अभ्यास होता है तैसे ही पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं । शास्त्र एक ही है परन्तु पदार्थों में भेद है । जैसे पौंड़े के रस से गुड़, शक्कर और मिश्री होती है, तैसे ही शास्त्र एक है उसमें पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं जिस जिस अर्थ के पाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसी को पावेगा-शास्त्र में भोग भी हैं और मोक्ष भी हैं । अज्ञानी भोग के निमित्त यत्न करते हैं परन्तु वे भी धन्य हैं, क्योंकि शास्त्र तो सेवने लगे, उन्हे सेवते-सेवते कभी किसी काल में आत्मपदरूपी चिन्तामणि भी प्राप्त होवेगी परन्तु आत्मपद पाने के निमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है । सुन सुनकर अभ्यास द्वारा आत्मपद प्राप्त होगा आत्मपद पाने से तब सर्व ओर से समभाव होगा । जैसे सूर्य के उदय हुए सब ओर से प्रकाश फैल जाता है, तैसे ही सब ओर से समता प्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाई स्थित

www.tantrik-astrologer.in

होगी अर्थात् द्वैत और कल्पना भी शान्त हो जावेगी और अनुभव अद्वैत में जाग्रत होगी परन्तु संतो के संग और शास्त्र के विचार अभ्यास द्वारा होगी । जो जन परोपकारी संसारसमुद्र से पार करनेवाले हों सो ही सन्तजन हैं, उनके संग से आत्म पद प्राप्त होगा । हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति-नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्मधर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं । जब अनात्मधर्म को त्याग करोगे तब आत्मत्त्व शेष रहेगा । उसको जान लोगे तो उसके जाने से और कुछ जानना नहीं रहता और उसके जानने में यत्न भी कुछ नहीं केवल आवरण दूर करने के निमित्त यत्न है जैसे सूर्य के आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूर करने का यत्न चाहिये, सूर्य के प्रकाश के निमित्त यत्न नहीं चाहिये । जब बादल दूर होते हैं तब स्वाभाविक ही सूर्य प्रकाशता है, तैसे ही गुरु और शास्त्र के यत्न से जब अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासि आता है सात्त्विकगुणी जो गुरु और शास्त्र है - उनसे जब रज और तमगुणों का अभाव होता है तब परम अनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है और जब वह प्रकाश हुआ तब उससे उन्मत्त हो जाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहीं रहती । जैसे सुन्दर स्त्री को देखकर कामी पुरुष उन्मत्त हो जाता है और संसार की सुरति भूल जाती है, तैसे ही ज्ञानी आत्मपद को पाकर उन्मत्त होता है और संसार की सुरति उसे भूल जाती है और परमैश्वर्यवान होता है उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है । वन के सेवने से चिन्तामणि पाने का जो दृष्टान्त कहा है सो जान लेना ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे गुरुशास्त्रोंपमावर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः ||278||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

विश्रामप्रकटीकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ सिद्धान्त सम्पूर्ण है सो मैंने तुमसे विस्तार पूर्वक कहा है उसके सुनने और बारम्बार विचारने से मूढ़ भी निवारण होंगे तो उत्तम पुरुष को निवारण होने में क्या आश्चर्य है? हे रामजी! यह मैं भी जानता हूँ कि तुम विदितवेद हुए हो प्रथम मैंने उत्पत्तिप्रकरण तुमसे कहा है कि जगत् की उत्पत्ति चित्तसंवेदन से हुई है फिर स्थितप्रकरण कहा है कि जगत् की स्थिति इस प्रकार हुई है । उत्पत्ति यह कि चित्तसंवेदन के फुरने से जगत् उपजा है और संवेदन फुरने की दृढ़ता से ही उसकी स्थिति हुई है । उसके उपरान्त उपशमप्रकरण कहा है कि मन इस प्रकार अफुर होता है । जब चित्त उपशम हुआ तब परम कल्याण हुआ । मन के फुरने का नाम संसार है । जब मन उपशम हो जाता है तब संसार की कल्पना मिट जाती है । यह सम्पूर्ण विस्तारपूर्वक कहा है परन्तु अब जानता हूँ कि तुम बोधवान् हुए हो । हे रामजी! मैंने तुमको प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहा है और जिनको ज्ञान प्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अब भी संक्षेप से कहता हूँ । प्रथम बाल अवस्था में सन्तजनों का संग करना चाहिये और सत्शास्त्रों को विचारना चाहिये । इस शुभ आचार से अभ्यास द्वारा जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होती है और सबको सुहृद हो जाती है । सुहृदता परमानन्द की जननी है जो सदा संग रहती है । जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होती है और प्राणका त्यागना भी अंगीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती, तैसे ही जिस ज्ञानवान् पुरुष की ब्रह्मलक्ष्मी से सुन्दर कान्ति है उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती, सदा उसके हृदय रूपी कण्ठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होता है वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता ओर जिसको सुन्दर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है । हे रामजी! समता तो द्विधारूपी अन्धकार का नाशकर्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णता के नाश करने को पूर्णमाशी का चन्द्रमा है सुहृदता और समता सौभाग्य रूपी जल का नीचा स्थान है । जैसे जल नीचे स्थान में स्वाभाविक ही चला जाता है, तैसे ही सुहृदता में सौभाग्यता स्वाभाविक होती है । जैसे चन्द्रमा की किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होता है, तैसे ही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृदतारूपी किरणों को पाकर ब्रह्मादिक चकोर तृप्त होकर आनन्दवान् होते हैं और जीते हैं । हे रामजी! वह ज्ञानवान् ऐसी कान्ति से पूर्ण है जो कदाचित् क्षीण नहीं होती । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में भी उपाधि दृष्टि आती है परन्तु ज्ञानवान् के मुख में तैसी ही उपाधि नहीं । जैसे उत्तम चिन्तामणि की कान्ति होती है, तैसे ही ज्ञानवान् की कान्ति होती है जो रागद्वेष से कदाचित् क्षीण नहीं होती । वह सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी! समता ही मानो सौभाग्यरूपी कमल की खानि है समदृष्टि पुरुष ऐसे आनन्द के लिये जगत् में विचरता है और प्राकृत आचार को करता है । वह भोजन करता है, ग्रहण करता है, वा कुछ लेता-देता है सब लोग उसके कर्तृत्व की स्तुति करते हैं । हे रामजी! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिक से भी पूजने योग्य है, सबही उसका मान करते हैं और सब उसके दर्शन की इच्छा करते हैं और दर्शन करके प्रसन्न होते हैं । जैसे सूर्य के उदय हुए सूर्य मुखी कमल खिल आते हैं और सर्वहुलास को प्राप्त होते है, तैसे ही उसका दर्शन करके सब हुलास को प्राप्त होते हैं । वह जो करता हे सो शुभ आचार ही करता है और जो कुछ और भी कर बैठता है तो भी उसकी निन्दा लोग नहीं करते क्योंकि जानते हैं कि यह समदर्शी है । समता से वह सबका सुहृद होता है और शत्रु भी उसके मित्र हो जाते हैं । जिनको समताभाव उदय हुआ

www.tantrik-astrologer.in

है उनको अग्नि जला नहीं सकता, जल डुबा नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता । वह जैसी इच्छा करे तैसे ही सिद्धि होती है । हे रामजी! जिसको समता प्राप्त हुई वह पुरुष अतोल हो जाता है और संसार की उपमा उसको कोई दे नहीं सकता जिसको समता नहीं प्राप्त हुई वह सबके संग सुहृदता का अभ्यास करे तो जो उसका शत्रु हो वह भी मित्र हो जाता है, क्योंकि अभ्यास की दृढ़ता से शत्रु भी मित्र भासने लगते हैं । जो सर्व में समता का अभ्यास करता है वही दृढ़ होता है और समता से चलायमान न हुआ ज्यों का त्यों रहा । एक पुरुष को उसकी पुत्री अति प्यारी थी और उसने किसी को दिया जिसने शत्रु को दी परन्तु वह ज्यों का त्यों रहा । एक और राजा था जिसको स्त्री अति प्यारी थी पर उसने उसका कुछ व्यभिचार सुना और मार डाला परन्तु समतारूप धर्म को न त्यागा । हे रामजी! जब राजा के गृह में मंगल होता है तब वह अपने नगर को भूषणों और वस्त्रों से सुन्दर करता है और प्रसन्न होता है सो अवस्था राजा जनक की देखी थी । एक समय उसने सर्वस्थान अति प्रज्वलित अग्नि से जलते देखे पर अपने समताभाव से चलायमान न हुआ । एक और राजा था उसने राज्य भी और को दे दिया और आप राज्य बिना विचरता रहा परन्तु समताभाव से चलायमान न हुआ । हे रामजी! एक दैत्य था उसको देवताओं का राज्य मिला और फिर राज्य नष्ट हो गया परन्तु दोनों भावों में वह सम ही रहा । एक बालक था उसने चन्द्रमा को लड्डू जानकर फूँक मारी परन्तु वह ज्यों का त्यों रहा । हे रामजी! इसी प्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक् आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है और वे सुख दुःख से चलायमान नहीं हुए । हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी का प्रारब्धभोग तुल्य है परन्तु अज्ञानी रागद्वेष से तपायमान होता है और ज्ञानी दृढ़ समझ के वश से तपायमान नहीं होता, सर्व अवस्थाओं में उसको समताभाव होता है । जो फल आत्मपद के साक्षात् होने से प्राप्त होता है तो तप, तीर्थ दान और यज्ञ से प्राप्त नहीं होता । जब अपना विचार उत्पन्न होता है तब सर्वभ्रान्ति निवृत्त हो जाती हैं और सर्वजगत् आत्मरूप ही भासता है । इसी दृष्टि को लिये ज्ञानी प्राकृत आचार में विचरते हैं परन्तु निश्चय में सदा निर्गुण हैं । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैतदृष्टिनिष्ठा जिनको प्राप्त हुई है उनको कर्मों के करने से क्या प्रयोजन है, वे त्याग क्यों नहीं करते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं उनसे त्याग-ग्रहण की भ्रान्ति चली जाती है और उस भ्रम से रहित होकर वे प्रारब्ध के अनुसार चेष्टा करते हैं । हे रामजी! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बन पड़ी है उसका वे त्याग नहीं करते । उसमें उनको ज्ञान प्राप्त हुआ है सो आचार करते हैं-और को ग्रहण नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते । हे रामजी! जिनको गृहस्थी ही में ज्ञान प्राप्त हुआ है वे गृहस्थी ही में विचरते हैं और उसका त्याग नहीं करते-जैसे हम स्थित हैं और जिनको राज्य में ज्ञान प्राप्त हुआ है सो राज्य ही में रहे हैं-जैसे तुम हो । जो ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त हुआ है वह ब्राह्मण को ज्ञान हुआ है वह ब्राह्मण ही के कर्मों में रहे और इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, जिस वर्णाश्रम में किसी को ज्ञान प्राप्त हुआ है वही कर्म करता है । हे रामजी! कई ज्ञानवान् गृहस्थी ही में रहे हैं, कई राज्य ही करते हैं, कई सन्यासी हो रहे हैं, कई वन में विचरते हैं, कई पर्वत-कन्दरा में ध्यान स्थित हो रहे हैं, कई नगरों में रहते रहे हैं, कई मथुरा, केदारनाथ, प्रयाग, जगन्नाथ इत्यादिक में रहे हैं, कई देवता का पूजन, कई कर्म, कई तीर्थ और अग्नि होत्र करते हैं और कई हमारी नाईं जप करते हैं । कई अस्ताचल पर्वत में, कई उदयाचल पर्वत में और कई मन्दराचल, हिमालय इत्यादिक पर्वत स्थानों में विचरते रहे हैं । कई शास्त्र विहित कर्म करते हैं, कई अवधूत हो रहे हैं, कई भिक्षा माँग-माँग भोजन करते रहें हैं, कई कठिन बोलते रहे, कई अज्ञानी की नाईं हुए विचरते रहे हैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नाना प्रकार की चेष्टा कर रहे हैं,

www.tantrik-astrologer.in

क्योंकि उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्त हुई, वे यत्न से कुछ नहीं करते । हे रामजी! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्म करें परन्तु कोई क्रिया उनको बन्धन नहीं करती और जो अज्ञानी हैं सो जैसे कर्म करेंगे तैसे ही फल को भोगेंगे । जो पुण्यकर्म करेंगे तो स्वर्ग सुख भोगेंगे और पाप से नरक दुःख भोगेंगे । जो कामना से रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा और सन्तों के संग और सत्शास्त्रों से शुद्धता को प्राप्त होगा । हे रामजी! जो अधर्मप्रबुद्ध हैं वे पाप करने लग जावें और आत्मअभ्यास त्याग दें तो वे दोनों मार्गों से भ्रष्ट हैं- न स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और न आत्मपद को प्राप्त होते हैं । तप, दान, तीर्थादिक सेवने से भी आत्मपद नहीं प्राप्त होता, जब विचार उपजता है और आत्मपद का अभ्यास होता है तभी आत्मपद मिलता है और जब आत्मपद प्राप्त होता है तब निश्शंक होता जाता है चेष्टाव्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसका चित्त शान्त हो जाता है । जैसे ताँबे को जब पारस का स्पर्श कीजिये तब वह सुवर्ण हो जाता है, आकार उसका तैसा ही रहता है परन्तु ताँबे का अभाव हो जाता है तैसे ही जब चित्त को आत्मपद का स्पर्श होता है तब चित्त शान्त हो जाता है परन्तु चेष्टा उसी प्रकार होती है और जगत् की सत्यता नष्ट हो जाती है । हे रामजी!अब तुम जागे हो और निश्शंक हुए हो । रागद्वेष तुम्हारा नष्ट हो गया है और तुम निर्विकार आत्मपद को प्राप्त हुए हो । जन्म, मृत्यु बढ़ना, घटना, युवा और वृद्ध, होना, इन सर्वविकारों से रहित आत्मपद को तुमने पाया है और सबका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चैतन्य है सो तुमको प्राप्त हुआ है । हे रामजी! जो कुछ मुझको कहना था सो कहा । यह सार का सार आत्मपद है और जो कुछ जानने योग्य था सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहा है और न कुछ जानना रहा है-यहीं तक कहना और जानना है । अब तुम निश्शंक होकर विचरो तुमको संशय कोई नहीं रहा और क्षय और अतिशय से रहित पद तुमने पाया है अर्थात् तुमने अवि नाशी और सबसे उत्तम पद पाया है । बाल्मीकिजी बोले, हे साधो! जब इस प्रकार मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी हो रहे तब सर्वसभा जो बैठी थी सो परम निर्विकल्पपद में स्थित हो गई और जैसे वायु से रहित कमल फूल पर भँवरे अचल होते हैं, तैसे ही चित्तरूपी भँवरे आत्मपदरूपी कमल के रस को लेते हुए स्थित हो रहे । सबके सब ब्रह्म को जानकर ब्रह्मरूप हुए और ब्रह्म ही में स्थित हुए । निकट जितने मृग थे वे भी तृण का खाना छोड़कर अचल हो गये, दूसरे पशु, पक्षी भी सुनकर निस्पन्द हो रहे और स्त्रियाँ जो बालकों संयुक्त चपल थीं वे सुनकर जड़वत् हो गई पूर्व जो मुक्तिवान् सिद्धों के गण मोक्ष के उपाय के श्रवण को आये थे और देवता और सिद्धों ने तमाल, कदम्ब, पारिजात कल्प वृक्ष इत्यादि दिव्य वृक्षों के फूलों की वर्षा की और नगाड़े, भेरी और शंख,बजने और वशिष्ठजी की स्तुति करने लगे । निदान बड़े शब्द हुए जिनसे दशों दिशा पूर्ण हो गई और ऊपर से देवताओं और सिद्धों के नगाड़ों के शब्द हुए जिनसे पर्वतों में शब्द भाव उठे और दिव्यफूलों की ऐसी सुगन्ध फैली-मानो पवन भी रहित हुआ है । तब सिद्धों ने कहा, हे वशिष्ठजी! हमने भी अनेक मोक्ष के उपाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहा है तैसा न आगे सुना है और न गाया है और न कहा है । जो तुम्हारे मुखारविन्द से श्रवण किया है उससे हम परम सिद्धान्त को जान गये हैं । इसके श्रवण से पशु, पक्षी और मृग भी कृतार्थ हुए हैं और मनुष्यों की तो क्या वार्ता कहिये वे तो कृतार्थ ही हुए हैं और निष्पाप ज्ञान को पाकर मुक्त होंगे । बाल्मीकिजी बोले, हे साधो! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलों की वर्षा की और वशिष्ठजौ को चन्दन का लेप किया । जब इस प्रकार वे पूजा कर चुके तब और जो निकट बैठे थे सो परम विस्मय को प्राप्त हुए कि ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजी ने किया । तब राजा दशरथ उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर वशिष्ठजी को नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से हम षडैश्वर्यों से

www.tantrikastrologer.in

सम्पन्न हुए हैं । हे भग वन् तुमने सम्पूर्ण शास्त्र सुनाया है जिसको सुनकर हम पूजन करने के योग्य हुए हैं, इसलिये हे देव! हम तुम्हारा पूजन किससे करें? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्टि आता जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो-सब पदार्थ कल्पित हैं और जो सत्य पदार्थ से पूजा करें तो सत्य तुमहीं से पाया है । इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजा के योग्य हो तथापि अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसी भी न करना । हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ, मेरे अन्तःपुर की सम्पूर्ण स्त्रियाँ, मेरे चारों पुत्र, मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजासहित जो कुछ मैंने लोक में यश किया और परलोक के निमित्त पुण्य किया है वह सर्व तुम्हारे चरणों के आगे निवेदन करता हूँ । हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजी के चरणों पर गिरे । तब वशिष्ठजी बोले, हे राजन् तुम धन्य हो, जिनको ऐसी श्रद्धा है परन्तु हमतो ब्राह्मण हैं हमको राज्य क्या करना है और हम राज्य का व्यहार क्या जानें । कभी ब्राह्मण ने राज्य किया है, राजा तो क्षत्रिय ही होते हैं, इसलिये तुमहीं से राज्य होगा । यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपना ही जानता हूँ और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानता हूँ । हम तो तुम्हारे प्रणाम से ही सन्तुष्ट हैं, यह राज्य का प्रसाद हमने तुमको ही दिया । फिर बाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने फिर कहा कि हे स्वामिन्! तुम्हारे लायक कोई पदार्थ नहीं । तुम ब्रह्माण्ड के ईश्वर हो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग्यता के निमित्त तुम्हारे आगे विनती की है कि मोक्ष उपाय-शास्त्र श्रवण किया है इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारा पूजन करें । तब वशिष्ठजी ने कहा, बैठो और राजा बैठ गया । फिर रामजी! ने निरभिमान होकर कहा, हे संशयरूपी तिमिर के नाशकर्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससे करें? कोई पदार्थ गृह में अपना नहीं । हे गुरुजी! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कार ही है । ऐसे कहकर वे चरणों पर गिरे और नेत्रों से जल चलने लगा वे बार बार उठें और आत्मानन्द प्राप्ति के उत्साह से फिर गिर पड़े । निदान जब वशिष्ठजी ने कहा बैठ जाओ तब रामजी बैठ गये । फिर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सब अर्घ्य-पाद्य से पूजने लगे और फूलों की वर्षा की जिससे वशिष्ठजी का शरीर भी ढक गया और जब वशिष्ठजी ने भुजा से फूल दूर किये तब मुख दृष्टि आने लगा । जैसे बादलों के दूर हुए चन्द्रमा दृष्टि आता है, तैसे ही मुख दीखने लगा । फिर वशिष्ठजी ने व्यास वामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठे थे उनसे कहा, हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्तों के वचन कहे हैं इनसे न्यून वा अधिक जो कुछ हो सो अब तुम कहो । जैसे जैसा स्वर्ण होता है तैसा ही अग्नि में दिखाई देता है, तैसे ही तुम कहो । तब सबने कहा, हे मुनीश्वर! ये तुमने परम सार वचन कहे हैं, जो तुम्हारे वचन को न्यून वा अधिक जानकर उनकी निन्दा करेगा वह महापतित होगा । ये वचन परमपद पाने के कारण हैं । हे मुनीश्वर! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म-जन्मान्तर का मैल था वह नष्ट हो गया । हम तो पूर्ण ज्ञानवान् थे परन्तु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्त में थी कि अमुक जन्म हमने इस प्रकार पाया था और अमुक जन्म इस प्रकार पाया था सो सर्वस्मृति अब नष्ट हुई है और जैसे अग्नि में डाला सुवर्ण शुद्ध होता है तैसे ही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआ है । अब हम जानते हैं कि न कोई जन्म था और न हमने कोई जन्म पाया है-हम अपने ही आपमें स्थित हैं । हे मुनीश्वर! तुम सम्पूर्ण विश्व के गुरु और ज्ञान अवतार हो इसलिए तुमको हमारा नमस्कार है । राजा दशरथ भी धन्य हैं जिनके संयोग से हमने मोक्ष-उपाय सुना है और ये रामजी विष्णु भगवान हैं । इतना कह फिर वाल्मीकिजी बोले कि इसी प्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर

www.tantrikastrologer.in

वशिष्ठजी को परमगुरु जानकर स्तुति करने लगे, रामजी को विष्णु भगवान जानकर उनकी भी स्तुति की और राजा दशरथ की भी स्तुति की जिनके गृह में विष्णु भगवान् ने अवतार लिया फिर वशिष्ठजी को अर्ध्य-पाद्य से पूजने लगे । आकाश के सिद्ध बोले, हे वशिष्टजी! तुमको हमारा नमस्कार है तुम गुरु के भी गुरु हो । हे प्रभो! जो कुछ तुमने उपदेश किया है और जो कुछ उसमें युक्ति कही है ऐसे वचन वागीश्वरी भी कहे । अथवा न कहे । तुमको बारम्बार नमस्कार है और राजा दशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कार है जिसके प्रसंग से हमने ज्ञान और युक्ति सुनी । ये रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्मा हैं इनको हमारा प्रणाम है ये चारो भाई ईश्वर हैं । जिनपर विष्णु भगवान् दया करते हैं और जीवन्मुक्त अवस्था को धारकर बैठे हैं । वशिष्ठजी परमगुरु हैं और विश्वामित्रतप की मूर्ति हैं । बाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब सिद्ध कह चुके तब वे फूलों की वर्षा करने लगे जैसे हिमालय पर्वत पर बरफ की वर्षा होती है और वह बरफ से पूर्ण हो जाता है, तैसे ही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्ण हुए । आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासी थे उन्होंने भी उनपर पुष्पों की वर्षा की और जो सभा में ब्रह्मर्षि आदि बैठे थे उनका भी यथायोग्य पूजन किया । इस प्रकार जब सिद्ध पूजन कर चुके तब कई ध्याननिष्ठ हो रहे, सबके चित्त शरत्काल के आकाशवत् निर्मल हो गये और अपने स्वभाव में स्थित हुए । जैसे स्वप्ने की सृष्टि का कौतुक देखकर कोई जाग उठे और हँसे, तैसे ही वे हँसने लगे । तब वशिष्ठजी ने रामजी कहा, हे रघुवंश के कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा! तुम अब किस दशा में स्थित हो और क्या जानते हो? रामजी बोले, हे भगवन्! सर्वज्ञान के समुद्र! तुम्हारी कृपा से मैं अब अपने आपमें स्थित हूँ और कोई कल्पना मुझे नहीं रही । अब मैं परमशान्ति मान् हुआ हूँ और मुझको शेष विशेष कोई नहीं भासता केवल अपना आपही पूर्ण भासता है–अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और इच्छा भी कुछ नहीं रही । मैंने अब परमनिर्विकल्प पद पाया है और कोई कल्पना मुझको नहीं फुरती । जैसे नील, पीतादिक उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशती है, तैसे ही मैं निरुपाधि स्थित हूँ और संकल्प-विकल्प उपाधि का अभाव हो गया है । अब मैं परम-शुद्धता को प्राप्त हुआ हूँ, मेरा चित्त शान्त हो गया है और मेरी चेष्टा पूर्ववत् होगी पर निश्चय में कुछ न फुरेगा । जैसे शिला में प्राण नहीं फुरते, तैसे ही मुझको द्वैत कल्पना कुछ नहीं फुरती । हे मुनीश्वर! अब मुझको आकाशरूप भासता है । मैं शान्तरूप होकर परम निर्वाण हूँ और भिन्नभाव जगत् मुझको कुछ नहीं भासता-सर्व अपना आपही भासता है । अब जो कुछ तुम कहो वही करूँ । अब मुझको शोक कोई नहीं रहा और राज्य करना, भोजन, छादन, बैठना, चलना, पान करना जैसे तुम कहो तैसे ही करूँ । तुम्हारे प्रसाद से मुझको सर्व समान हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामप्रकटीकरणं नाम द्विशताधीकैकोनाशीतितमस्सर्गः ||279||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

निर्वाणवर्णन

बाल्मीकिजी बोले , हे भरद्वाज! जब ऐसे रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बड़ा कल्याण हुआ कि तुम अपने आप में स्थित हुए हो । अब तुमने यथार्थ जाना है पर अब जो कुछ सुनने की इच्छा हो सो कहो । रामजी बोले, हे संशयरूपी अन्धकार के नाशकर्ता सूर्य और संशयरूपी वृक्षों के नाशकर्ता कुठार! अब तुम्हारे प्रसाद से मैं परम विश्रान्ति को प्राप्त हुआ हूँ और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति की कलना से रहित हूँ । जाग्रत् जगत भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है और श्रवण करने की इच्छा नहीं रही । अब परमध्यान मुझको प्राप्त हुआ है अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं भासती । मैं आत्मा, अज, अविनाशी, शान्तरूप और अनन्त, सदा अपने आप में स्थित हूँ । ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है । अब प्रलयकाल का पवन चले और समुद्र उछलें और नाना क्षोभ हों तो भी मेरा चित्त स्वरूप से चलायमान न होगा और जो त्रिलोकी का राज्य मुझको प्राप्त हो तो भी मेरे चित्त में हर्ष न उपजेगा मैं सत्ता समान में स्थित हूँ । बाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब मध्याह्न का सूर्य शिर पर उदय हुआ और राजा जो रत्न और मणियों के भूषण पहिनकर बैठे थे उन मणियों की कान्ति किरणों से अति विशेष हुई और सूर्य के साथ ही एक हो गई–मानों ऐसे वचन सुनकर नृत्य करती है । तब वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! अब हम जाते हैं क्योंकि मध्याह्न की उपासना का समय है, जो कुछ तुम्हें पूछना हो सो कल फिर पूछना । तब राजा दशरथ पुत्रोंसहित उठ खड़े हुए और वशिष्ठजी का बहुत पूजन किया । जो ऋषीश्वर मुनीश्वर और ब्राह्मण थे उनका भी यथायोग्य पूजन किया और मोती और हीरों की माला, मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र भूषण आदि जो ऐश्वर्य की सामग्री है उससे यथायोग्य पूजन किया । जो विरक्त सन्यासी थे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षि थे उनका भी पूजन किया । तब वशिष्ठजी उठ खड़े हुए और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगाड़े बजने लगे । तब श्रोता उठकर विचरने लगे । कोई चले जाते थे और कोई शीश हिलाते, कोई हाथ की अँगुली हिलाते, नेत्रों की भवें हिलाते परस्पर चर्चा करते जाते थे । इस प्रकार सब अपने स्थानों को गये । वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्व श्रोता विचारपूर्वक रात्रि को व्यतीतकर सूर्य की किरणों के निकलते ही आ पहुँचे । गगनचारी सप्तलोक के रहनेवाले, ऋषि और देवता, भूमिवासी राजर्षि और जो श्रोता थे सो सब आकर अपने अपने स्थान पर बैठ गये और सबने परस्पर नमस्कार किया तब रामजी हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए और बोले, हे भगवन्! अब जो कुछ मुझको सुनाना और जानना रहा है सो तुम ही कृपा करके कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ सुनने योग्य था सो तुमने सुना है । अब तुम कृतकृत्य हुए हो और सर्व रघुवंशियों का कुल तुमने तारा है और जो आगे होंगे सो सब तुमने कृतकृत्य किये हैं । अब तुम परमपद को प्राप्त हुए हो और जो कुछ तुमको पूछने की इच्छा है सो पूछ लो । हे रामजी! जो सत्तासमान में स्थित हुए हो तो विश्वामित्र के साथ जाकर इनका कार्य करो और जो कुछ पूछने की इच्छा हो सो पूछ लो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आगे मैं अपने आपको इस देह संयुक्त परिच्छिन्नरूप देखता था और अब अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता सब अपना आप ही भासता है । हे मुनीश्वर! अब इस शरीर से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं रहा । जैसे फूल से सुगन्ध लेकर पवन चला जाता है और फूल से उसका प्रयोजन नहीं रहता, तैसे ही इस देह में जो कुछ सार था सो मैं पाकर अपने आप में स्थित हूँ और शरीर के साथ मुझको प्रयोजन नहीं रहा । अब राज्य भोगने से कुछ सुख दुःख नहीं और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में

www.tantrik-astrologer.in

मुझको कुछ हर्ष शोक नहीं । मैं सबसे उत्तमपद को प्राप्त हुआ हूँ और सब कलना से रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्व से निरन्तर सदा अपने आपमें स्थित और निराकार और निर्विकार हूँ । जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और जो सुनने योग्य था सो सुना है और जो कुछ तुमको कहना था सो कहा है अब तुम्हारी वाणी सफल हुई है । जैसे कोई रोगी को औषध देता है तो उस औषध से उसका रोग जाता है और उसका कल्याण होता है, तैसे ही तुम्हारी वाणी से मेरा संशयरूप रोग गया है और अपने आपमें तृप्त हुआ हूँ । अब मैं निःशंक होकर अपने आपमे स्थित हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनंनाम द्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः ||280||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! तुम मेरे परम वचन सुनो दृढ़ अभ्यास के निमित्त मैं फिर कहता हूँ । जैसे आदर्श को ज्यों ज्यों मार्जन करते हैं त्यों त्यों उज्ज्वल होता है, तैसे ही बारम्बार सुनने से अभ्यास दृढ़ होता है । जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्दस्वरूप है । भासती भी वही वस्तु है जो आगे भानरूप होती है । वह भानरूप चेतन है इससे जो पदार्थ भासते हैं सो सब चेतनरूप हैं और जो भिन्न भिन्न पदार्थ द्वैत की कल्पना से भासते हैं सो भी वास्तव में भानरूप चेतन हैं । जैसे जो कुछ उच्चार करते हैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न भिन्न भासते हैं । जब अर्थ की कल्पना त्याग दीजे तब यही शब्द है और जो अर्थ कीजिये कि यह जल है, यह पृथ्वी है, यह अग्नि है इनसे आदि लेकर अनेक शब्द और अर्थ होते हैं और अर्थ रहित शब्द एक ही है, तैसे ही यह सब चेतन है पर चित्त की कल्पना से भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसी का आभास है । हे रामजी आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है ज्ञान में भेद है पर स्वरूप ज्ञान में भी भेद नहीं जिससे अर्थ भासते हैं । ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है, इसमें जिस अर्थ का आभास होता है उसी को जानता है । जैसे एक ही रस्सी है उसमें सर्प का भ्रम करे तो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सी ही है , तैसे ही अर्थ ग्रहण कीजिये तो भेद है नहीं तो ज्ञान ही है सर्व पदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूप ही हैं और कुछ बना नहीं । हे रामजी! स्वप्न का दृष्टान्त मैंने तुमको जताने के निमित्त कहा है, वास्तव में स्वप्ना भी कोई नहीं, अद्वैतसत्ता ही अपने आपमें स्थित है । जैसे समुद्र सदा जलरूप है पर द्रवता से तरंग बुद्बुदे भासते हैं सो नानारूप नहीं और नाना हो भासता है, तैसे ही सर्व जगत् अनाना रूप है और नाना हो भासता है । तुम अपने स्वप्न को विचारकर देखो कि तुम्हारा अनुभव ही नाना प्रकार हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं तैसे ही यह जाग्रत जगत् भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं । सदा निराकार, निर्विकार और आकाशरूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो अद्वैतसत्ता निराकार निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थित है तो पृथ्वी कहाँ से उपजी है जल कैसे उपजा है और अग्नि , वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाश में कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोध के निमित्त कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुम कहो कि स्वप्ने में पृथ्वी कहाँ से उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल, पदार्थ कहाँ से उपजते हैं? रामजी बोले, हे मुनीश्वर! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देश, काल, पदार्थ भासते हैं तो सब आत्मरूप होते हैं और आत्म सत्ता ही ज्यों की त्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओं को ज्यों की त्यों भासती है और जो असम्यक्‍दर्शी हैं उनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं । भासना दोनों का तुल्य होता है परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ को ग्रहण करती है उसको ज्यों का त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूप हो भासती है । हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थित है । जब कठोररूप की संवेदन फुरती है तब पृथ्वी और पहाड़ रूप हो भासती है, जब द्रवता का स्पन्द फुरता है तब जलरूप हो भासती है और उष्णरूप की संवेदन फुरती है तब अग्नि भासती है, इसी प्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों में जैसे फुरना होता है तैसे ही हो भासता है । जैसे जल तरंगरूप हो भासता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं, जल ही रूप है तैसे ही आत्मसत्ता जगत्‍रूप हो भासती है और वही रुप है जगत् कुछ वस्तु नहीं । यह गुण और क्रिया सब आकाश में है वास्तव में कुछ नहीं, क्योंकि कारणरहित असत्यरूप है यह

www.tantrik-astrologer.in

अहं त्वं से आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बना नहीं, आत्म सत्ता अपने आपमें स्थित है और कोई आकार नहीं है । अद्वैतसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और नानारूप हो भासती है । जब चित्त संवेदन फुरती है तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, काल हो भासता है । कहीं सर्व आत्मा का ज्ञान फुरता है और कहीं परिच्छिन्नता भासती है परन्तु वास्तव में कुछ बना नहीं वही वस्तु है, जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसा ही हो भासता है । अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है जिसमें आकाश भी आकाशरूप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्गः ||281||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

जगद्भाववर्णन

रामजी बोले, हे भगवन्! अब यह प्रश्न है कि जो जाग्रत् और स्वप्ने में कुछ भेद नहीं और परम आकाशरूप है तो उस सत्ता को जाग्रत् और स्वप्ने के शरीर से कैसे संयोग है, वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं और आकाश में आकाश ही स्थित है सर्ग के आदि में आकार का अभाव था सो ही अब भी जानो कि उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपने आपमें स्थित है । जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्र में चित्त किञ्चन होता है तब वही सत्ता आकार की नाईं भासती परन्तु कुछ हुआ नहीं, आकाश ही रूप है । जैसे स्वप्ने में शरीरों का अनुभव करता है पर वे कुछ आकार तो नहीं होते केवल आकाशरूप होते हैं, तैसे ही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरने से आकार हो भासता है । जिन तत्त्वों से शरीर होता है सो तत्त्व ही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसे कहूँ? हे रामजी! और जगत् कुछ उपजा नहीं ब्रह्म ही किञ्चन से जगत्‌रूप हो भासता है । जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेद नहीं, तैसे ही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । संवेदन में अर्थसंकेत है और जब संवेदन न फुरे तब अर्थसंकेत न हो । भिन्न-भिन्न वस्तु एक ही सत्ता के नाम हैं । भिन्न-भिन्न नाम तब भासते है जब वेदना फुरती है, नहीं तो शब्द कल्पित जल के तुल्य है-वस्तु में भेद नहीं । जैसे वायु और स्पन्द में भेद नहीं, स्पन्द भासता है निस्पन्द नहीं भासती परन्तु दोनों रूप वायु के ही हैं, तैसे ही स्पन्द से ब्रह्म में किञ्चन जगत् भासता है और जब संवेदन नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनों रूप ब्रह्म के ही हैं । ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं । जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं-एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति-परन्तु दोनों एक, निद्रा के ही पर्याय हैं तैसे ही जगत् का होना और न भासना एक ब्रह्म की दोनों संज्ञा हैं, चाहे ब्रह्म कहो और चाहे जगत् कहो, ब्रह्म और जगत् में भेद कुछ नहीं ब्रह्म ही जगत्‌रूप हौ भासता है । जैसे निर्मल अनुभव से स्वप्ने में शिला भासि आती है पर वह शिला तो स्वप्ने में कुछ उपजी नहीं, अपना अनुभव ही शिलारूप हो भासता है, तैसे ही ये सर्व आकार जो भासते हैं सो आकाशरूप हैं और आत्मसत्ता ही आकाशरूप जगत् हो भासती है । जगत् कुछ उपजा नहीं और न सत्य है, न असत्य है, न आता है, न जाता केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आगे तुमने मुझसे अनेक सृष्टि कही हैं कि कई जल में, कई अग्नि में; कई वायु मे; कई पहाड़ और पत्थरों में और कई आकाश में पक्षीवत् इत्यादिक नाना प्रकार की सृष्टि तुम ने कही हैं तो अब यह प्रश्न है कि हमारी सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम तो वही प्रश्न करते हो जो अपूर्व होता है और जो आगे देखा और सुना न हो और जगत् में जाना भी न हो । इस जगत् की उत्पत्ति वेदपुराण तो यों ही कहते हैं और लोक में भी प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा से हुई है पर वास्तव में चिदाकाशरूप है कुछ उपजी नहीं । ये दोनों प्रकार मैंने तुमसे कहे हैं पर उनको तुम जानकर भी प्रश्न करते हो इसलिये तुम्हारा प्रश्न ही नहीं बनता । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! यह सृष्टि कितनी है, कहाँ तक चली जाती है और कितने कालपर्यन्त रहेगी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितनी सृष्टि तुम जानते हौ वह है नहीं-ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है-और सृष्टि बहुत है परन्तु वास्तव में कुछ हुई नहीं और आदि, अन्त और मध्य से रहित हैं वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और यह जितनी सृष्टि हैं सो आभासमात्र हैं । ब्रह्म जो आदि, अन्त और मध्य से रहित है उसका आभास भी तैसा ही है । जैसे जितना वृक्ष होता है उतनी ही छाया होती है, तैसे ही ब्रह्म का आभास सृष्टि है और वास्तव में पूछो तो

www.tantrik-astrologer.in

आभास भी कोई नहीं ब्रह्म ही अपने आपमें स्थित है और वही जगत् आपको देखता है-ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने के पुर में पर्वत, नदी, आयुध आदि नाना प्रकार के व्यवहार के रूप धारकर आत्मसत्ता ही स्थित होती है और कुछ नहीं बना और जैसे संकल्पनगर भासता है, तैसे ही इस जगत् को भी जानो, क्योंकि और कुछ बना नहीं आत्मसत्ता ही जगत्‌रूप हो भासती है । जगत् यदि किसी कारण से उपजा होता तो सत् होता पर इसका कारण कोई नहीं पाया जाता इसलिये असत् है, इसका न कोई निमित्त कारण पाया जाता है । हे रामजी! जो किसी कारण से न उपजा हो और भासे उसको स्वप्नपुरवत् आकाशमात्र जानो । जिसमें आभास भासती है सो अधिष्ठान सत्ता है । जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो सर्प कुछ नहीं रस्सी ही सर्परूप होकर भासती है, तैसे ही जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सत्य है और शुद्ध, निरदुःख, अच्युत, विज्ञान सदा अपने आपमें स्थित है । वही सत्ता जगत्‌रूप हो भासती है । जैसे जल ही तरंगरूप हो भासता है तैसे ही ब्रह्म जगत्‌रूप हो भासता है । हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म का हृदय है अर्थात् उसी का स्वभाव है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । ज्ञानी को सर्वदा ऐसे ही भासता है । जैसे स्वप्ने से जागकर सब अपना आप ही भासता है, तैसे ही यह जगत् अपना आप है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकररणे जगद्भाववर्णनं नाम द्विशताधिकद्वय्शीतितमस्सर्गः ||282||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

प्रश्नवर्णन

वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जगत् का कारण कोई नहीं । जो जगत् ही नहीं तो कारण कैसे हो और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो? इससे सर्व ब्रह्म ही है । इसी पर एक उपाख्यान है सो सुनो । हे रामजी! कुशद्वीप के पूर्व और पश्चिम दिशा के मध्य में सुवर्ण की ऐलवती नगरी महा उज्ज्वलरूप है और उसमें बड़े बड़े ऊँचे थम्भ बने हैं मानो पृथ्वी और आकाश को उन्होंने ही पूर्ण किया है । उस नगरी का एक प्रगपती राजा है । एक काल में मैं आकाश से शीघ्र वेग से उसके गृह में आया और उसने भली प्रकार अर्ध्य -पाद्य से प्रीतिपूर्वक मेरा पूजन किया और सिंहासन पर बैठाकर मुझसे एक महाप्रश्न किया कि जिस प्रश्न से अधिक कोई प्रश्न नहीं । राजा बोले, हे भगवन्! तुम संशयरूपी तम के नाशकर्ता सूर्य हो । मुझको एक संशय है सो दूर करो । हे मुनीश्वर! प्रथम तो यह प्रश्न है कि जब महाप्रलय होता है तब कार्य, कारण और सर्वशब्द की कल्पना का अभाव हो जाता है । उसके पीछे महाआकाशसत्ता शेष रहती है जिसमें वाणी की भी गम नहीं अवाच्य पद है तो उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? वहाँ उपादानकारण और निमित्तकारण तो कोई नहीं रहता तो सृष्टि कैसे होती है? श्रुति और पुराणों में सुनता हूँ कि महा प्रलय से फिर सृष्टि उत्पन्न होती है । दूसरा यह प्रश्न है कि जम्बूद्वीप में कोई मृतक हुआ अथवा किसी और ठौर गया हुआ मृतक हुआ तो उसका वह शरीर तो वहीं भस्म हो जाता है और परलोक में पुण्य पाप का फल दुःख सुख भोगता है तो जिस शरीर से भोगता है उस शरीर का शरीर का कारण तो कोई नहीं? जो तुम कहो कि पुण्य और पाप ही उस शरीर का कारण है तो पुण्य पाप तो आप ही निराकार हैं उनसे साररूप शरीर कैसे उपजे और जो तुम कहो परलोक कोई नहीं और पुण्य पाप भी कोई नहीं तो श्रुति और पुराणों के वचनों से विरोध होता है, क्योंकि सब ही वर्णन करते हैं कि मरकर परलोक जाता है और जैसे कर्म किये हैं तैसे भोगता है? जिस शरीर से भोगता है उसका कारण तो कोई नहीं और न कोई पिता है, न माता है? वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ? तीसरा प्रश्न यह है कि जब यह पर लोक में जाता है- सो उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं उनका फल उसको कैसे प्राप्त होता है? चतुर्थ प्रश्न यह है कि महाप्रलय के पश्चात् जो ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ? जो महाप्रलय में न उपजा हो और अपने आप ही उपजे वह स्वयंभू कहाता है पर महाप्रलय में तो शेष अद्वैत रहा था उससे जो उत्पन्न हुआ उसे स्वयंभू कैसे कहिये? जो कहो स्वयंभू अपने आपसे उपजता है तो अपना आप आत्मा है जो सबका अपना आप है, अब क्यों नहीं उससे ब्रह्मा उत्पन्न होता है? पाचवाँ प्रश्न यह है कि एक पुरुष था जिसका एक मित्र था और एक शत्रु था और उन दोनों ने प्रयागक्षेत्र में जाकर करवट लिया जो इसका मित्र था, उसने वाच्छा की कि मेरा मित्र चिरकाल जीता रहे और चिरंजीवी हो और दूसरे ने यह संकल्प धारा कि मेरा शत्रु इसी काल में मर जावे । हे मुनीश्वर! एक ही काल में दो अवस्था कैसे होवेंगी? छठा प्रश्न यह है कि सहस्त्रों मनुष्य ध्यान लगाये बैठे हैं कि हम इसी आकाश के चन्द्रमा हों सो एक ही आकाश में सहस्त्रों चन्द्रमा कैसे होंगे । सप्तम प्रश्न यह है कि सहस्त्रों पुरुष यही ध्यान लगाये हैं बैठे कि एक सुन्दर स्त्री जो बैठी थी वह हमको मिले पर वह स्त्री पतिव्रता है उसके सहस्त्र भर्ता एक काल में कैसे होंगे? अष्टम प्रश्न यह है कि एक पुरुष था उसको किसी ने वर दिया कि तुम जाकर मृतक हो और सप्तद्वीप का राज्य करो और किसी ने शाप दिया कि तेरा जीव अपने ही गृह में रहेगा और मृतक हो बाहर न जावेगा तो ये दोनों एक ही काल में कैसे होंगे? नवम प्रश्न यह है कि एक काष्ठ का थम्भा था उसको एक ने कहा कि यह सुवर्ण का हो जावेगा और वह सुवर्ण का हो

www.tantrik-astrologer.in

गया तो सुवर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? उसका कारण कोई न था-कारण बिना कार्य कैसे उत्पन्न हुआ? जैसा अन्न का बीज बोते हैं तैसा ही अन्न उत्पन्न होता है और नहीं उगता तो काष्ठ से स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ? जो कहो संकल्प से उपजा तो हम भी संकल्प करते हैं कि अमुक कार्य ऐसे हो पर वह क्यों नहीं होता । इसलिये जाना जाता है कि संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता हे मुनीश्वर! जिस प्रकार यह वृत्तान्त है सो कहो । एक कहते हैं कि आगे असत् ही था तो असत् से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई? यह मुझको संशय है उसको दूर करो । जो कोई सन्त के निकट आता है सो निष्फल नहीं जाता इसलिये कृपा करके कहो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नवर्णनंनाम द्विशताधिकत्र्यशीतितमस्सर्गः ।।283।।

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

प्रश्नोत्तरवर्णन

वशिष्ठजी बोले कि हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे अपने संशयो का समूह कहा तब मैंने उससे कहा, हे राजन्! ये सर्व संशय जो तुझको हैं सो मैं सब दूर करूँगा । जैसे सम्पूर्ण अन्धकार को सूर्य नाश करता है । हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है सो ब्रह्मरूप है और सदा अपने आपमें स्थित है । जब उसमें चित्त फुरता है तब वही चित्त संवेदन जगत्ृरूप हो भासता है, इससे जो कुछ आकार भासते हैं सो सब चिन्मात्र हैं, न कोई कार्य है और न कारण है, और जो तुम प्रत्यक्ष प्रमाण से संशय करो कि सब चिन्मात्ररूप है तो जब वह शरीर मृतक हो जाता है तब चेतता क्यों नहीं, चाहिये कि उस काल में भी उसमें ज्ञान हो । हे राजन्! जब जाग्रत् का अन्त होता है पर स्वप्ना नहीं आया तब शुद्ध चिन्मात्र रहता है । फिर जब उसमें स्वप्ने की सृष्टि भासि आती है तो उस सृष्टि में कई चेतन भासते हैं, कई मृतक भासते हैं और स्थावर जंगम नाना प्रकार की सृष्टि भासती हैं परन्तु और तो कुछ नहीं वही चिन्मात्र स्वरूप है जो अनुभवरूप हो भासती है । कहीं चेतन बोलते और चलते भासते हैं परन्तु वही है? जो चेतनता न होती तो कैसे भासते? जिससे भासते हैं तिससे सब चेतन हैं । तैसे ही इस जगत् में भी कहीं बोलते चलते भासते हैं और कहीं शव भासते हैं परन्तु वही चिन्मात्रसत्ता है, जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसा तैसा हो भासता है । हे राजन् जैसे प्रथम प्रलय से सृष्टि उत्पन्न हुई थी तैसे ही उत्पन्न होती है । यह सृष्टि किसी का कार्य नहीं और किसी का कारण भी नहीं-बिना कारण उपजी भासती है । हे राजन्! जो महाप्रलय में शेष रहता है सो चिन्मात्र है । उस चिन्मात्रसत्ता से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है सो ब्रह्मा विराट्ृरूप होकर स्थित हुई और उसी ने जगत् की कल्पना की है । उसमें उसने नेति भी रची है कि यह पदार्थ इस प्रकार हो तैसे ही चित्त संवेदन में दृढ़ होकर भासित हुआ है उसका नाम जगत् है । वही आत्मसत्ता किञ्चनरूप होकर जगत्ृरूप भासती है । हे राजन् जैसे तेरे संकल्प और स्वप्ने के सृष्टि आदि की शुद्ध आत्मसत्ता थी और वही फुरने से पदार्थरूप हो भासती है, तैसे ही इसे भी जानो, वास्तव में न कोई कार्य है न कोई कारण है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अकारण होती है, तैसे ही यह जगत् भी अकारण है और आदि- अन्त के विचार से रहित है । जो वर्तमान प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं उनको कार्य और कारण प्रत्यक्ष भासते हैं और उनके वचन भी निरर्थक हैं । जैसे अन्धे कूप के दर्दु र शब्द करते हैं, तैसे ही वे भी निरर्थक प्रत्यक्ष प्रमाण से कार्यकारण के वाद करते हैं । उनको हमारे वचन सुनने का अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनने योग्य नहीं हे राजन्! जिस शास्त्र के सुनने और जिस गुरु के मिलने से सम्पूर्ण संशय निवृत्त न हों उस शास्त्र और गुरु का कहना भी अन्धकूप के दर्दुरवत् व्यर्थ है । जो परमार्थ सत्ता से विमुख हुए हैं उनको यह भ्रम अपने में भासता है और शरीर के मृतक हुए आपको मरता जानता है और फिर वासना के अनुसार शरीर उपजता और जीता है तब मानते हैं कि अब हम उपजे हैं । फिर अपने पुण्य या पाप कर्म का अनुभव करते हैं । जैसे स्वप्ने में कोई अपने साथ शरीर देखता है तैसे ही परलोक में जीव को अपने साथ शरीर भासि आता है और तैसे ही यह शरीर भी भासि आया है । न कोई इसका कारण है, न पाञ्चभौतिक है न इसका कारण है, न पाञ्चभौतिक है न इसका शरीर है और न किसी कारण से भूत उपजे हैं, अपनी ही कल्पना आकाररूप होकर भासती है, और आकार कोई नहीं केवल ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है और जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होता है तैसा पदार्थ भासि आता है । हे राजन्! जो तू इस जगत् को सत्य मानता है तो सब कुछ सिद्ध होता है, शरीर भी है परलोक भी है और नरक

www.tantrik-astrologer.in

स्वर्ग भी है । जैसा यह लोक है तैसा ही परलोक है, जो यह लोक निश्चय में सत्य है तो वह लोक भी सत्य भासेगा । और जैसा कर्म करेगा तैसा फल भोगेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोत्तरवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुरशीतितमस्सर्गः ||284||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले कि हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है सो सब संकल्पमात्र है । जैसे कोई बालक अपने मन में वृक्ष और उसमें फूल, फल और टास कल्पे सो संकल्प मात्र है, तैसे ही यह जगत् भी संवेदनरूपी ब्रह्मा ने कल्पा है और उसके मन में फुरता है सो संकल्परूप है जैसे उसने संकल्प किया तैसे ही स्थित है और जैसे उसमें क्रम रचा है कि इस प्रकार यह पदार्थ होगा सो तैसे ही स्थित हुआ है और देश, काल, पदार्थ भी तैसे ही स्थित हैं । इसका नाम नेति है । हे राजन्! तूने प्रश्न किया था कि जो पुरुष अरूप है और दूर है यदि उसके अर्थ किसी ने दिया तो उसको कैसे पहुँचता है और अरूप और स्वरूप का कैसे संयोग है? जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष है उसको सब पदार्थ निकट भासते हैं और जो कोई पुरुष मनोराज कल्पता है और उसमें बड़ा देश रचता है सो दूर से दूर मार्ग है तो जो उस देश के वासी हैं उनको देश की अपेक्षा से दूसरा देश दूर से दूर है परन्तु जिनका मनोराज है उसको तो सब निकट है और अपना आप ही रूप है । इस प्रकार जो शुद्धसंवेदनरूप है उसके अर्थ जो कोई देता है-ईश्वर अर्थ अथवा देवता के अर्थ हो-उसको निकट सब अपने में भासता है । आदिनेति इसी प्रकार हुई है कि शुद्धसंवेदन को सब अपने निकट से निकट ही भासता है, क्योंकि सब संकल्प है और जैसी रचना संकल्प में रचती है तैसे ही होती है-संकल्प में क्या नहीं होता? थम्भे का प्रश्न जो तूने किया है कि काष्ठ का था सुवर्ण का कैसे हो गया, सो भी सुनो । हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है उसने मनोराज में नेति की है तपादिक से वर और शाप सिद्ध होता है । उसके कहे से जो काष्ठ का थम्भा स्वर्ण का हो गया तो तू विचारकर देख कि किस कारण से काष्ठ का सुवर्ण हुआ । वह केवलमात्र है, जो संकल्प से भिन्न कुछ भी होता तो काष्ठ का सुवर्ण न होता । यह सर्व विश्व संकल्परूप है, जैसा संकल्पदृढ़ होता है, तैसा ही हो भासता है । जैसे तू अपने मनोराज में संकल्प करे है कि यह ऐसे रहे और जो उससे और प्रकार करे तो भी हो जावे सो होता है, तैसे ही वर और शाप भी और प्रकार हो जाते हैं । न और कोई जगत् है, न कार्य है और न कारण है वही आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है, जैसा संकल्प जिसमें फुरता है तैसा हो भासता है तू पूछता है कि असत्य से फिर जगत् कैसे उत्पन्न होता है जो आप ही न हो तो उसमें जगत् कैसे प्रकटे? हे राजन्! असत्य इसी का नाम है कि जो जगत् असत्य था इसलिये श्रुति ने उसे असत्य कहा । जो आदि असत्य था इसलिये असत्यता जगत् की कही है पर आत्मा तो असत्य नहीं होता? सबका शेषभूत आत्मा है, जब उसमें संवेदन फुरती है तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप हो जाता है परन्तु उस संवेदन के फुरने और मिटने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है उसका अभाव नही होता । जैसे जल में तरंग उपजता है और फिर लीन हो जाता है परन्तु उसके उपजने और मिटने में जल ज्यों का त्यों है और तरंग उसके आभास फुरते हैं । जैसे तू मनोराज से एक नगर कल्पे और फिर संकल्प छोड़ दे तब संकल्परूप नगर का अभाव हो जाता है परन्तु सदा अविनाशी रहता है जैसे स्वप्ने की सृष्टि उपजती भी है और लीन भी हो जाती है परन्तु अधिष्ठान ज्यों का त्यों है और जैसे रत्नों का प्रकाश उठता है और लीन भी हो जाता है परन्तु रत्न ज्यों का त्यों होता है, तैसे ही आत्मा विश्व के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है पर उसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है । उपजता है तब उत्पत्ति भासती है और जब मिटता है तब प्रलय हो जाती है परन्तु उभय आभास हैं । जैसे वायु फुरती है तब भासती है और ठहर जाती है तब नहीं भासती परन्तु वायु एक है तैसे ही आत्मा एक ही है फुरने का नाम उत्पत्ति है और न फुरने का नाम जगत् की प्रलय है सो सर्व किंचनरूप है ।

www.tantrik-astrologer.in

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकपञ्चाशीतितमस्सर्गः ||285||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

राजप्रश्नो0वर्णन

वशिष्ठजी बोले कि हे राजन्! तूने प्रयाग के जो दो पुरुषों का प्रश्न किया है उसका उत्तर सुन । जो उसका शत्रु बन गया था सो तो उसका पाप था और जो उसका मित्र बन गया था सो उसका पुण्य था । प्रयाग तीर्थ धर्मक्षेत्र था । हे राजन्! पापरूप वासना के अनुसार मृत्यु भासती है पर पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रु को रोकता है और पुण्यरूपी तीर्थ के बल से हृदय से अल्परूपी पाप वेग से भासता है जब मृत्यु आती है तब वह आपको मरता जानता है और भाईजन कुटुम्बी रुदन करते हैं पर जब अपनी और देखता है तब जानता है कि मैं तो मुआ नहीं । जब मृतक सर्ग की ओर देखता है तब आपको मुआ जानता है और भाईजन रूदन करते हैं । इस प्रकार उसको मरना भासता है, और यह देखता है कि भाईजन जलाने चले हैं , उन्होंने अग्नि में मुझको डाला है और मैं जलता हूँ । जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि मैं मुआ नहीं जीता हूँ और फिर पाप की ओर देखता है तब जानता है कि मैं मुआ हूँ और मुझको यमदूत ले चले हैं, यह परलोक है और यहाँ मैं सुख दुःख भोगता हूँ । जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि मैं मुआ नहीं, जीता हूँ, यह मेरे भाई बैठे हैं और वहाँ मेरा व्यवहार चेष्टा है इस प्रकार उभय अवस्था को पुरुष देखता है । जैसे संकल्पपुर और स्वप्ननगर में उभय अवस्था देखे और एक ही पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा देखता है । कहीं जीता देखता है, कहीं मृतक देखता है, कहीं व्यवहार देखता है और कहीं निर्व्या पार इत्यादिक नाना प्रकार की चेष्टा एक ही पुरुष में होती है, तैसे ही एक ही पुरुष को पुण्य पाप की वासना से जीना मरना भासता है । हे राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसा ही रूप हो भासता है । परलोक जानना भी अपने वासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त पुत्र बान्धव देते हैं सो पुत्र बान्धव भी उसकी पुण्य पाप वासना में स्थित हुए हैं । वे जो कुछ इसके निमित्त करते हैं उनसे यह सुख, दुःख , नरक, स्वर्ग भोगता है पर वास्तव में कोई बान्धव और पुत्र नहीं- उनकी वासना ही नाना प्रकार के आकार को धारकर स्थित हुई है । हे राजन्! सहस्त्र चन्द्रमा को जो तूने प्रश्न किया है उसका उत्तर सुनो सहस्त्र भी इसी आकाश में स्थित होते हैं और अपनी-अपनी वासना से कलासंयुक्त चन्द्रमा हो विराजते हैं परन्तु एक को दूसरा नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं-जो अन्तवाहक दृष्टि से देखे उसको भासते हैं । हे राजन्! जो कोई ऐसी भावना करे कि मैं उनके मण्डल को प्राप्त होऊँ तो तत्काल ही जो प्राप्त होता है । जैसे एकही मन्दिर में बहुत मनुष्य सोये हों तो उनको अपने स्वप्न की सृष्टि भासती है और अन्योन्य विलक्षण है-एक की सृष्टि को दूसरा नहीं जानता, तैसे ही एक आकाश में सहस्त्र चन्द्रमा बनते हैं । जैसे इन्द्र ब्राह्मण के दशपुत्र दशब्रह्मा हो बैठे थे तैसे ही जिसकी कोई तीव्र भावना करता है वही हो जाता है । जो कोई भावना करे कि हम इसी मन्दिर में सप्तद्वीप का राज्य करें तो वैसा ही हो जाता है, क्योंकि अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है उसमें जैसी तीव्रभावना होती है, तैसे ही हो भासती है । वर के वश से उस पुरुष को सप्तद्वीप का राज्य प्राप्त हुआ और शाप के वश से उसका जीव उसी मन्दिर में रहकर द्वीप का राज्य करता रहा । जैसे स्वप्ने में राज्य करे हैं तैसे ही अपने मन्दिर में अपनी संवेदन ही सृष्टिरूप होकर भासती है । इसी प्रकार जो एक स्त्री की भावना करके सहस्त्र पुरुष ध्यान लगाये बैठे थे कि हम उसके भर्ता हों सो भी हो जाते हैं । हे राजन्! उनको जो तीव्रभावना है वही स्त्री का रूप धारकर उनको प्राप्त होगी वे जानेंगे कि वही स्त्री हमको प्राप्त हुई है । यह जगत् केवल संकल्पमात्र है, संकल्प से भिन्न कुछ वस्तु नहीं और सब चिदाकाशरूप है अपने ही अनुभव से

www.tantrik-astrologer.in

प्रकाशता है और जैसे उसमें संकल्प फुरता है तैसे हो भासता है । पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं आत्मसत्ता ही इस प्रकार स्थित है जो परम शान्त, निराकार, निर्विकार और अद्वैतरूप है । राजा बोले, हे मुनीश्वर! जगत् के आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देह में स्थित थी देह बिना तो स्थित नहीं होती? जैसे आधार बिना दीपक नहीं रहता आधार होता है तब उसमें जागता है- तैसे ही आत्मसत्ता किसमें स्थित थी? वशिष्ठजी ने कहा, हे राजन्! जितने आकार तुझको भासते हैं और जिनको देखकर तूने प्रश्न उठाया है सो है नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है । जिन भूतों से बना देह भासता है सो भूत भी मृगतृष्णा के जलवत् हैं । जैसे रस्सी में सर्प, सीपी में रूपा, आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र हैं, क्योंकि इनका अत्यन्त अभाव है, तैसे ही यह भूताकार ब्रह्म में भ्रम से भासते है- ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । तूने पूछा था कि जो स्वयंभू अपने आपसे उपजता है तो अब क्यों नहीं होता सो हे राजन्! कोई उसके सदृश उत्पन्न होते हैं पर वास्तव में कुछ उपजा नहीं और नाना प्रकार भासता है परन्तु नाना प्रकार नहीं हुआ । जैसे स्वप्ने में सदा तू देखता है कि अद्वैत अपना आप ही नानारूप हो भासता है और पर्वत पर दौड़ता फिरता है सो किस शरीर से दौड़ता है और क्या रूप होता है? जैसे वह पर्वत और शरीर आकाशरूप होता है और भ्रम से पिण्डाकार भासता है, तैसे ही यह जगत् भी आकाशरूप है भ्रम से पिण्डाकार भासता है । हे राजन्! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख कि यह सब जगत् तेरा अनुभव आकाश है स्वप्न का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे चेतने के निमित्त कहा है । स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है जब उसमें आभास संवेदन फुरती है तब वही जगत्‌रूप हो भासती है और जब आभास संकल्प मिट जाता है तब प्रलयकाल भासता है । वास्तव में न कोई उत्पन्न होता है और न प्रलय होता है ज्यों की त्यों आत्मसत्ता स्थित है । जैसे एक निद्रा के दो रूप होते हैं -एक स्वप्ना और दूसरा सुषुप्ति पर जाग्रत् में यह दोनों आकाशमात्र होती हैं, तैसे ही आभास की दो संज्ञा होती हैं-एक जगत् और दूसरी महाप्रलय पर आत्मारूपी जाग्रत् में दोनों का अभाव हो जाता है । हे राजन्! तू स्वरूप में जागकर और कलना को त्यागकर देख कि सब आत्मरूप है-और कुछ नहीं । हे रामजी! इस प्रकार मैं राजा को कहकर उठ खड़ा हुआ तब उसने भली प्रकार प्रीतिसंयुक्त मेरा पूजन किया और जब वह पूजन कर चुका तब मैं जिस कार्य के लिये आया था सो कार्य करके स्वर्ग को चला गया ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे राजप्रश्नो0वर्णनं नाम द्विशताधिकषडशीतितमस्सर्गः ||286||

अनुक्रम

www.tantrikastrologer.in

www.tantrik-astrologer.in

निर्वाण प्रकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जगत् सब चिदाकाशरूप है और दूसरा कुछ बना नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुम कहते हो कि सब चिदाकाश है बना कुछ नहीं तो सिद्ध, साधु, विद्याधर, लोकपाल, देवता इत्यादिक जो भासते हैं, कुछ बने क्यों नहीं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो सिद्ध, साधु, विद्याधर, देवता, लोकपाल हैं सो वास्तव में कुछ उपजे नहीं, ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है और ये जो प्रत्यक्ष भासते हैं सो शुद्ध संकल्प से रचे हुए हैं परन्तु वास्तव में कुछ बने नहीं , भ्रम से इनकी सत्यता भासती है । जैसे मृगतृष्णा की नदी, रस्सी में सर्प, सीपी में रूपा और संकल्प नगर है, तैसे ही आत्मा में यह जगत् है । हे रामजी! जैसे स्वप्ने में नाना प्रकार की रचना भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं, तैसे ही यह जगत् है । जो पुरुष इसको देखकर सत्य मानता है वह असम्यक्ृदर्शी है और जो आत्मा को देखता है वही देखता है और वही सम्यक्दर्शी है । हे रामजी! ये लोक और लोकपाल जगत्सत्ता में ज्यों के त्यों हैं और जैसे स्थित हैं तैसे ही हैं परन्तु परमार्थ से कुछ उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ही संवेदन से दृश्यरूप हो भासती है और दृष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं हुआ । जैसे आकाश और शून्यता और अग्नि और उष्णता में भेद नहीं तैसे ही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । हे रामजी! अब एक और वृत्तान्त तुम सुनो । स्वप्ने में जैसे अब हम हैं तैसे ही एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुई थी । पूर्व एक कल्प में तुम और हम हुए थे । तुम मेरे शिष्य थे और मैं तुम्हारा गुरु था । तूने एक वन में मुझसे प्रश्न किया था कि हे भगवन्! एक मुझको संशय है सो नाश करो । महा प्रलय में नाश क्या होता है और अविनाशी क्या रहता है? तब मैंने कहा था, हे तात् जितना शेष विशेषरूप जगत् है सो सब नाश हो जाता है- जैसे स्वप्ने का नगर सुषुप्ति में लीन हो जाता है और निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है । क्रिया, काल, कर्म, आकाश, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, पहाड़, नदियाँ और इनसे लेकर जो कुछ जगत् क्रिया , काल और द्रव्य संयुक्त है वह सब नाश हो जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र ये जो कार्य के कारण हैं उनका नाम भी नहीं रहता । संवेदन शक्ति जो चैतन्य का लक्षणरूप है सो भी नहीं रहती, केवल अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाश ही शेष रहता है । शिष्य बोले, हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य होती है उसका नाश नहीं होता और जो असत्य होती है सो आभासरूप है पर यह जगत् तो विद्यमान भासता है सो महाप्रलय में कहाँ जावेगा? गुरु बोले, हे तात! जो सत्य है उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो असत्य है उसका भाव नहीं, इसलिये जितना कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब भ्रममात्र है इसमें कोई वस्तु भी सत्य नहीं भासती है परन्तु जैसे मृगतृष्णा का जल स्थित नहीं होता और दूसरा चन्द्रमा व आकाश में तरुवरे भ्रममात्र हैं, तैसे ही यह जगत् भी जो भासता है सो भ्रममात्र है । जैसे स्वप्ने का नगर प्रत्यक्ष भी भासता है परन्तु भ्रम मात्र है, तैसे ही यह जगत् भी भ्रममात्र जानो । हे तात! आत्मसत्ता सर्वदाकाल सर्वत्र अपने आपमें स्थित है । जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का अभाव होता है और जाग्रत् में स्वप्ने का अभाव होता है तो सृष्टि कहाँ जाती है? जैसे जाग्रत् में स्वप्ने की सृष्टि का अभाव हो जाता है, तैसे ही महाप्रलय में इसका अभाव हो जाता है । शिष्य बोले, हे भगवन्! यह जो भासता है सो क्या है और जो नहीं भासता सो क्या है? इसका रूप क्या है और चिदाकाश से कैसे हुआ है? गुरु बोले, हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाश में किञ्चन संवेदन फुरती है तब जगत्ृरूप हो भासती है इससे इसका रूप भी चिदाकाश ही है-चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं सृष्टि और प्रलय दोनों उसी के रूप हैं जब संवेदन फुरती है तब सृष्टि हो भासती है और जब

www.tantrik-astrologer.in

अफुर होती है तब प्रलय रूप हो भासती है पर दोनों उसके रूप हैं । जैसे एक ही वपु में दो स्वरूप हैं- दन्तों से शुक्ल लगता है और केशों से तृष्ण लगता है, तैसे ही आत्मा में सर्ग और प्रलय दो रूप होते हैं पर दोनों आत्मरूप हैं । जैसे एक ही निद्रा की दो अवस्था होती हैं- एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति, पर जाग्रत् में उभय नहीं, तैसे ही निद्रारूप संवेदन में सर्ग और प्रलय भासती है पर जाग्रत्ूरूप आत्मा में दोनों का अभाव है । हे तात! जो कुछ तुमको भासता है सो सब चिदाकाशरूप है-और कुछ नहीं ब्रह्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है । जैसे स्वप्न में अपना अनुभव ही जगत् रूप हो भासता है, तैसे आत्मा में जगत् भासता है । शिष्य बोले, हे भगवन्! जो इसी प्रकार है कि दृष्टा ही दृश्यरूप हो भासता है तो और जगत् तो कुछ न हुआ सब वही है? गुरु बोले, हे तात! इसी प्रकार है । जगत् कुछ वस्तु नहीं चिदाकाश ही जगत्ूरूप हो भासता है और आत्मसत्ता ही इस प्रकार भासता है और कुछ नहीं, क्योंकि सब उसी का किञ्चन है और सर्व में सर्वदाकाल सर्व प्रकार वही सृष्टि होकर फुरती है और किसी प्रकार कुछ हुआ नहीं आत्म सत्ता ही अपने आपमें स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है उसे वही रूप जानो । जिसको तू सर्ग और प्रलय कहता है सो सब आत्मसत्ता के नाम हैं वहीं सर्व में सर्वदाकाल सर्व प्रकार स्थित है । एक ही जो परमदेव है वही घट पटरूप हुआ है । पर्वत, पट, जल, तृण अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्थावर, जंगम, अस्ति, नास्ति, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्ति, अमूर्ति, बन्ध और मोक्ष आदि सर्व शब्द अर्थ से जो पदार्थ सिद्ध होते हैं सो सर्व आत्मरूप है और सर्व में सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मा ही है और जिसमें सर्वदा काल सर्व प्रकार नहीं वह भी आत्मा ही है जो सदा ज्यों का त्यों ही हैं । जैसे स्वप्ने में जो कुछ भासता है सो सब आत्मसत्ता ही है और दूसरा कुछ बना नहीं । हे तात! तृण ही कर्ता है, तृण ही भोक्ता है और तृण ही सर्वेश्वर है घट कर्ता है, घट भोक्ता है और घट ही सर्व ईश्वर है । पट कर्ता है, पट भोक्ता है और पट ही परमेश्वर है । नर कर्ता है, नर भोक्ता है और नर ही सर्व का ईश्वर है । इसी प्रकार एक-एक वस्तु नाम से जो वस्तु है सो कर्ता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है और क्षय, उदय, भीतर, बाहर, कर्त्ता, भोक्ता सब ईश्वर है सो विज्ञानमात्र है । कर्त्ता-भोक्ता वही है और न कर्त्ता है, न भोक्ता भी वही है । विधिमुख करके भी वही है और निषेध भी वही है । शुद्ध दृष्टि से सब चिदात्मा ही भासता है जो सर्व दुःख से रहित है । जिनको आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उनको भिन्न-भिन्न जगत् भासता है जो अनुभव से भिन्न नहीं है । ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित हो रहो । हे रामजी! इस प्रकार मैंने तुमसे कहा था परन्तु उससे तुमको अभ्यास की न्यूनता से बोध न हुआ इसलिये वही संस्कार अब तुमको प्राप्त हुआ है और इसी कारण से अब तुम जागे हो । हे रामजी! अब तुम अपने स्वरूप में स्थित होकर कृतकृत्य हुए हो इसलिये अपनी राजलक्ष्मी को भोगो , प्रजा की पालना करो और हृदय से आकाशवत् निर्लेप रहो । इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः ||287|| वाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज! जब वशिष्ठजी इस प्रकार रामजी से कह चुके तब आकाश में जो सिद्ध और देवता स्थित थे फूलों की वर्षा करने लगे-मानो मेघ बरफ की वर्षा करते हैं अथवा आकाश कम्पायमान हुआ है उससे तारे गिरते हैं-जब वे पुष्पों की वर्षा कर चुके तब राजा दशरथ उठ खड़े हुए और अर्ध्य पाद्य दे और पूजन कर हाथ जोड़ के कहने लगे कि हे मुनीश्वर! बड़ा कल्याण और बड़ा हर्ष हुआ जो तुम्हारे प्रसाद से हम आत्म पद को प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए । चित्त का वियोग हुआ है इससे दृश्य फुरने का भी अभाव हुआ है और हम अचित्, चिन्मात्र हैं । अब हम परमपद को प्राप्त हुए हैं और हमारे सबसन्ताप मिट गये । संसाररूपी जो अन्धमार्ग था उससे

थके हुए अब हम विश्रान्ति को प्राप्त हुए हैं । अब मैं पहाड़ की नाईं अचल हुआ हूँ, सब आपदा से तर गया हूँ और जो कुछ जानना था सो जान रहा हूँ । हे मुनीश्वर! तुमको बहुत युक्ति से दृष्टान्त देकर जगाया है अर्थात् शून्य के दृष्टान्त, सीपी में रूपा, मृगतृष्णा का जल, रस्सी में सर्प आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नाव पर नदी के किनारों का चलते भासना जल में तरंग, स्वर्ण में भूषण, वायु का फुरना, गन्धर्वनगर , संकल्पपुर आदि दृष्टान्त कहे हैं जिनसे हमने तुम्हारी कृपा से जाना है कि आत्मसत्ता से कुछ भिन्न नहीं । वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार दशरथ कह चुके तब रामजी उठे और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे कि हे मुनीश्वर! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ है । अब मैं परम पद को प्राप्त हुआ हूँ, किसी में मुझको न राग है और न द्वैष है और परम शान्ति को प्राप्त हुआ हूँ । न अब मुझे किसी के करने से अर्थ है और न करने में कुछ अनर्थ है-मैं परमशान्तपद को प्राप्त हुआ हूँ । हे मुनीश्वर! तुम्हारे वचनों को स्मरण करके मैं आश्चर्य को प्राप्त होकर हर्षित होता हूँ । मेरे सब सन्देह नष्ट हो गये हैं और अब मुझको और नहीं भासता सर्व ब्रह्म ही भासता है । लक्ष्मण बोले, हे भगवन् । मैं सन्तों के वचन इकट्ठे करता रहा था और सम्पूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो अब इकट्ठे हुए थे जिन सबका फल अब उदय हुआ है । तुम्हारी कृपा से अब मैं सर्वसंशयों से रहित होकर परम पद को प्राप्त हुआ हूँ । तुम्हारे वचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं किन्तु उनसे भी अधिक हैं इससे मैंने परम शान्ति पाई है और मेरे दुःख सन्ताप सब नष्ट हुए हैं । शत्रुघ्न बोले, हे मुनीश्वर! जगत् और मृत्यु का जो भय था वह तुमने दूर किया है और अपने अमृतरूपी वचनों का सुधापान कराया है । अब हमारे संशय सब नष्ट हुए हैं और हम आत्मपद को प्राप्त हुए हैं हमारे जो चिरकाल के पुण्य थे उनका फल आज पाया है । विश्वामित्र बोले, हे मुनीश्वर! सर्व तीर्थों के स्नान करने और दूसरे कर्मों से भी मनुष्य ऐसा पवित्र नहीं होता जैसे तुम्हारे वचनों से हम पवित्र हुए हैं । आज हमारे श्रवण पवित्र हुए हैं । नारदजी बोले, हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्ष उपाय मैंने देवताओं और सिद्धों के स्थान में भी नहीं सुना और ब्रह्मा के मुख से भी नहीं सुना जैसा कि तुमने उपदेश किया है । इसके श्रवण किये से फिर संशय नहीं रहता । फिर दशरथ बोले, हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान ऐसी सम्पदा कोई नहीं इससे तुमने परम सम्पदा हमको दी है जिसके पाये से फिर किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रही । अब तो हम अपने स्वभाव में स्थित हुए हैं और सम्पूर्ण कर्म हमको छोड़ गये हैं । हमारे बहुत जन्मों के पुण्य इकट्ठे हुए थे उनके फल से ये तुम्हारे पावन वचन सुने हैं । रामजी बोले, हे मुनीश्वर! बड़ा हर्ष हुआ कि सर्वसम्पदा का अधिष्ठान प्राप्त हुआ है और सर्व आपदा का अन्त हुआ है । ज्ञान से रहित जो अज्ञानी हैं वे बड़े अभागी हैं । जो आत्मपद को त्यागकर अनात्मपदार्थकी ओर धावते हैं वे भी यत्न करके प्राप्त होते हैं पर उनसे विमुख हो तब आत्मपद प्राप्त होता है उसी आत्मपद को पाकर मैं शान्तिमान् होकर हर्षशोक से रहित हुआ हूँ और मैंने अचलपद पाया है और अजित अविनाशी सदा अपने आप में स्थित हूँ । तुम्हारी कृपा से आप को ऐसा जानता हूँ । लक्ष्मण बोले, हे मुनीश्वर! सहस्त्र सूर्य एकत्र उदय हो तो भी हृदय के तम को दूर नहीं कर सकते पर वह तम तुमने दूर किया है, और सहस्त्र चन्द्रमा इकट्ठे उदय हों तो भी हृदय की तपन निवृत्त नहीं कर सकते पर तुमने सम्पूर्ण तपन निवृत्त की है । हम निःसंताप पद को प्राप्त हुए हैं । वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! जब इस प्रकार सब कह चुके तब वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! इस मोक्षोपाय कथा को सुनकर सर्वब्राह्मों का यथायोग्य पूजन करो और दान करो और जो इतर जीव हैं वे भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजन करते हैं । तुम तो राजा हो । जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथ ने उठकर सहस्त्र मथुरावासी विद्यावान् ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा, वस्त्र,

www.tantrikastrologer.in

भूषण, घोड़े, गाँव आदिक दिये और यथायोग्य पूजन किया । निदान बड़ा उत्साह हुआ, अंगना नृत्य करने लगी और नगाड़े, शहनाई आदि बाजन बजने लगे और चक्रवर्ती राजा होकर दशरथ ने उत्साह किया । इस प्रकार सात दिन तक ब्राह्मणों, अतिथियों और निर्धनों को द्रव्य देकर राजा ने पूजन किया और अन्न और वस्त्र आदिक से सबको प्रसन्न किया ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्विशताधिककाष्टाशीतितमस्सर्गः ||288||

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in

मोक्षोपायवर्णन

बाल्मीकिजी बोले कि हे भरद्वाज! इस प्रकार वशिष्ठमुनि के वचन सुनकर सब रघुवंशी कृतकृत्य हुए जैसे रामजी सुनकर संशयरहित जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, तैसे ही तुम भी विचरो । यह मोक्ष उपाय ऐसा है कि जो अज्ञानी श्रवण करे तो वह भी परमपद को प्राप्त हो । तुम्हारी क्या बात है तुम तो आगे से भी बुद्धिमान हो । जिस प्रकार मुझसे ब्रह्माजी ने कहा था सो मैंने तुमको सुनाया है । जैसे रामजी आदिक कुमार और दशरथ आदिक राजा जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, तैसे ही तुम भी विचरो । उनमें मोह भी दृष्टि आता था परन्तु वे स्वरूप से चलायमान नहीं हुए । ज्ञान जैसा सुख और कोई नहीं और अज्ञान जैसा दुःख भी कोई नहीं । इससे अधिक कैसे कहिये । यह जो मोक्ष उपाय मैंने तुमसे कहा है सो परमपावन है, संसारसमुद्र से पार करनेवाला है, दुःखरूपी अन्धकार को नाशकर्ता सूर्यरूप है और सुखरूपी कमल की खानि का ताल है । जो पुरुष इसका बारम्बार विचार करे वह यदि महामूर्ख हो तो भी शान्तपद को प्राप्त हो जो कोई इस मोक्ष उपाय को पढ़ेगा, कहेगा, सुनेगा, लिखेगा अथवा लिखकर पुस्तक देगा उसके हृदय में जो कामना होगी वह पूर्ण होगी, ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा और वह राजसूययज्ञ का फल पावेगा और फिर विचारकर ज्ञान पाकर मुक्त होगा । हे अंग! यह जो मोक्षउपाय है सो बड़ा शास्त्र है, इसमें बड़ी कथा है और नाना प्रकार की युक्ति हैं जिन कथाओं और युक्तियों से वशिष्ठजी ने रामजी को जगाया था सो मैंने तुझको सुनाया है अपने उपदेश से उन्होंने उनको जीवन्मुक्त किया था और कहा था कि तुम राजलक्ष्मी भोगो । वही मैंने भी तुमसे कहा है कि जीवन्मुक्त होकर अपने तपकर्म में सावधान हो रहो और निश्चय आत्मसत्ता में रखना । जिस उपदेश से रघुवंशी कृतकृत्य हुए हैं सो मैंने तुमसे ज्यों का त्यों कहा है । इस निश्चय को धारकर कृतकत्य हो रहो इसमें जितने इतिहास और कथा हैं उनके भिन्न भिन्न नाम सुनो । वैराग्यप्रकरण में सम्पूर्ण रामजी के प्रश्न हैं, मुमुक्षुप्रकरण में शुकनिर्वाण ही कहा है, उत्पत्ति प्रकरण में ये आठ आख्यान कहे हैं, एक आकाशज का, दूसरा लीला का, तीसरा सूची का, चतुर्थ इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों का, पञ्चम कृत्रिम इन्द्र और अहल्या का, षष्ठ चितोपाख्यान, सप्तम वाल्मीकि की कथा और अष्टम साम्बर का आख्यान, स्थितप्रकरण में चार आख्यान हैं, एक भृगु के सुत का, दूसरा दामव्याल और कष्ट का, तीसरा भीम भास, दटका और चतुर्थ दासुर का । उपशमप्रकरण में एकादश आख्यान कहे हैं, एक जनक की सिद्धगीता, दूसरा पुण्यपावन, तीसरा बलिको विज्ञान की प्राप्ति का वृत्तान्त, चतुर्थ प्रह्लादविश्रान्ति, पञ्चम गाधि का वृत्तान्त, षष्ठ उद्यालकनिर्वाण, सप्तम स्वर्गनिश्चय, अष्टम परिघनिश्चय, नवम भास, दशम विलाससंवाद और एकादश बीतव । निर्वाणप्रकरण में सप्तविंशति आख्यान कहे हैं , भुशुण्डि और वशिष्ठ का, महेश और वशिष्ठ का, शिलाकाश का उपदेश अर्जुनगीता, स्वप्नसत्यरुद्र, वैताल का, भगीरथ का, गंगा अवतार, शिखरध्वज का, वृहस्पतिकचप्रबोध, मिथ्यापुरुष का, श्रृंगीगण का , इक्ष्वाकु, निर्वाण, मृगव्याध दृष्टान्त, बलबृहस्पति, मंकीनिर्वाण, विद्याधर का, हरिणोपाख्यान, आख्यानोपाख्यान, विपश्चित् की कथा, शिवि का, शिला का, इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों का, कुन्ददन्त का, महाप्रश्न उत्तरवाक्य, शिष्या गुरु महोत्सव और ग्रन्थप्रशंसाफल चतुष्टयप्रकरणों में सब पचास आख्यान वर्णन किये हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे महारामायणे वशिष्ठरामचन्द्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोननवतितमस्सर्गः ||289||

****

www.tantrik-astrologer.in

समाप्तोयं श्रीयोगवाशिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्धः ।

--: इति :--

****

अनुक्रम

www.tantrik-astrologer.in